॥ हरि:ॐ ॥

पूज्य श्रीमोटा-एक संत

(जीवन और कार्य)

: लेखक :

डॉ. विद्यासागर लक्ष्मण कांबळे

: संपादक :

रजनीभाई बर्मावाला 'हरि:ॐ'

हरि:ॐ आश्रम प्रकाशन, सुरत

- **प्रकाशक :**
  (पूज्य श्रीमोटा) हरि:ॐ आश्रम, कुरुक्षेत्र, जहाँगीरपुरा,
  सुरत-३९५००५, दूरभाष : ०२६१-२७६५५६४/२७७१०४६
  Email : hariommota1@gmail.com
  Website : www.hariommota.org

© सर्वाधिकार - प्रकाशकाधीन

- प्रथम संस्करण : १९९७ (वसंत पंचमी)
  द्वितीय संस्करण : २००७ (गुरुपूर्णिमा)
  तृतीय संस्करण : २०१५ (नूतन वर्ष, सं. २०७२)
- प्रत : १०००
- पृष्ठ संख्या : १६+३५०=३६६
- मूल्य : रु. ५०/-
- प्राप्तिस्थान :
  (१) हरि:ॐ आश्रम, नडियाद
  पोस्ट बॉक्स नं. ७४, पिन-३८७००१
  (२) हरि:ॐ आश्रम, सुरत
  कुरुक्षेत्र, जहाँगीरपुरा, सुरत-३९५००५
- टाइपसेटिंग : अर्थ कॉम्प्यूटर
  २०३, मौर्य कोम्प्लेक्ष, सी.यु.शाह कॉलेज के सामने,
  इन्कमटैक्स, अमदावाद-३८००१४, मो. : ९३२७०३६४१४
- मुद्रक:
  साहित्य मुद्रणालय प्रा. लि.
  सिटी मिल कम्पाउन्ड, कांकरिया रोड, अमदावाद-३८००२२
  फोन: (०७९) २५४६९१०१

॥ हरिःॐ ॥

समर्पणांजलि

गाँव : चम्बा एवं जिला : चम्बा, हिमाचल प्रदेश में स्थायी दंपती मनोचिकित्सक डॉ. श्री एवं स्त्रीरोग विशेषज्ञ (गाईनकालजिस्ट) श्रीमतीजी सा. पूज्य श्रीमोटा से मिलन होना ही पूर्वजन्म निमित्त का प्रागट्य है। वरना कहाँ गुजरात की तपोभूमि और कहाँ हिमाचल प्रदेश की शिवभूमि ? पूज्य श्रीमोटा अपने संवाद में व्यक्त हुए है की 'अनुभवी पुरुष का निमित्त समस्त ब्रह्मांड में व्याप्त है ।' श्रीमोटाजी ने यह भी कहा है कि 'आप जहाँ भी जाओ मैं आपको अपने बाहु में लेकर ही रहूँगा । आप मेरे पास आओगे, आओगे और अवश्य आओगे । ब्रह्माजी भी यह संबंध विच्छेद नहीं कर सकते ।'

हिमाचल प्रदेश के पीछडे जिले में सेवा करते हुए भी आपने अपने जीवन को मौन साधना में उन्नत रखा । हरिःॐ आश्रम, नडियाद एवं सुरत के मौनमंदिर में वैठकर अपने आनेवाले जन्म की पूँजी जमा कर ली । समाज में जानेमाने हुए, अत्यंत परोपकारी, जीनव की अति विषम स्थिति में भी पूज्य श्रीमोटा के प्रति अटूट श्रद्धा बांटनेवाले, परम आदरणीय आप दोनों

श्रीमान डॉ. कैलाश कौशल

एवं आपकी धर्मपत्नी

श्रीमती डॉ. इन्दिरा कौशल को

पू. श्रीमोटा एक संत पुस्तक का तृतीय संस्करण बड़े मान-सन्मान और आदरभाव के साथ समर्पण करते हुए हम आनंद व्यक्त करते हैं।

दिनांक : १२-११-२०१५ **ट्रस्टीमंडल**
नूतन वर्ष, सं. २०७२ हरिःॐ आश्रम, सुरत

॥ हरिःॐ ॥

निमंत्रण

एक 'जीव'
गरीबी का उत्तराधिकार लेकर जिसने जन्म लिया,
कर्मप्रवणता और अथक परिश्रम यह जिसकी 'प्रकृति' थी,
देशसेवा, कारावास और कर्म इन्हें जिसने 'साधना' बनाया,
सद्‌गुरु के परिस्पर्श के बाद अथक पुरुषार्थ से
जो जीव 'शिव' बना,
सद्‌गुरु के आदेशानुसार जिसने साधनाहेतु
मौनमंदिर स्थापित किये,
और समाज से एक करोड़ रुपये लेकर जीवनकाल
दरमियान समाज को ही मौलिक कार्यों के लिए लौटा दिये,
समाज में 'गुण' और 'भाव' के विकास के लिए
अंतिम साँसतक जो प्राणपूर्वक प्रयत्नशील रहा,
उत्स्फूर्त और उत्कृष्ट अध्यात्म ग्रंथ-गद्य-पद्य साहित्य
इनकी जिसने निर्मित किया,
गुरुवाद, आश्रम और संन्यास इनसे जो अस्पर्शित था,
साक्षी, अभय, करुणा, नम्रता, भाव, प्रार्थना
जिसमें पूर्णरूप में प्रगट हुए थे,
'मुझे समाज को बैठा करना है'
यह जिसका स्वप्न था ऐसे
गुजरात की भूमि में जन्में हुए, और
'मैं सर्वत्र विद्यमान हूँ' यह घोषणा कर के
'इच्छामरण' स्वीकार करनेवाले एक निष्काम कर्मयोगी
श्रीमोटा का
यह जीवनचरित्र आपको आमंत्रित करता है,
उसका रसास्वादन करने को, अनुभव करने को ।
डॉ. विद्यासागर लक्ष्मण कांबळे

॥ अर्घ्य ॥

संतचरित्र यानी कुछ कथा-कादंबरी होती नहीं है। सत्य की उपेक्षा न करते हुए, अल्पोक्ति-अत्युक्ति न होने पाये इसका ध्यान रखकर, घटी हुई घटनाओं को प्रामाणिकता से और क्रमशः पिरोकर, उन घटनारूपी पुष्पों का एक सुंदर सुगंधित पुष्पहार बनाकर, वह वाचकों को अपने इष्ट को अर्पण करने के लिए प्रेमपूर्वक और भावपूर्वक सौंपना यही लेखक का काम होता है।

इसमें लिखाई के जितना संपादन का भी महत्त्व होता है। लिखाई करते समय कभी-कभी घटनाओं के बीच रही हुई खाली जगह अपनी कल्पनाशक्ति से भरकर, वह घटना अखंडित करने की जिम्मेदारी का बड़ा कठिन काम भी लेखक को ही करना पड़ता है।

एक दिन रात में मौनमंदिर में सो जाने से पहले मैंने पूज्य श्रीमोटा को हृदयपूर्वक आर्त प्रार्थना की 'आपके चरित्र का अनुवाद हो ऐसी आंतरिक इच्छा है । मराठी जाननेवालों को भी आपकी प्रखर कर्मसाधना की, पुरुषार्थ की, हरि:ॐ आश्रमों की वैसे ही समाजोत्थान के लिए आपने बहती करायी दानगंगा की जानकारी हो, यह भी भाव है। लेकिन आपकी कृपा और शक्ति से ही यह संभव है। अगर यह योग्य है, तो वैसा स्पष्टरूप से संकेत दें तो ही कलम हाथ में लेना उचित है, सार्थक है।'

सुबह उठा और मानो चमत्कार ही घटित हुआ। हरि:ॐ आश्रम के व्यवस्थापक डॉ. हरिशभाई ने डॉ. विनोदचंद्र काशीभाई अमीन का एक चैक ला दिया। श्री अमीन, पूज्य श्रीमोटा के एक पुराने और सेवाभावी भक्त हैं। उन्होंने जो चैक दिया, वह आया था अमरीका से। उनके सुपुत्र डॉ. अश्विनभाई की धर्मपत्नी डॉ. सौ. शमाबहन ने वह दो हजार डॉलर्स का चैक (भारतीय चलन में करीब सत्तर हजार रुपये) स्वेच्छा से और अंत:प्रेरणा से भेजा था। चैक पर नीचे कोने में उन्होंने एक सूचना भी की थी-'For Translation of Books' वह चैक दिखाने को ही डॉ. हरिशभाई आये थे।

रात में की हुई प्रार्थना का सुबह छ-सात बजे ही उत्तर प्राप्त हो गया, और वह भी एकदम स्पष्ट रूप से, इस आनंद में मुझे तो नाचना ही बाकी रह गया !

फिर तो निराले ही आनंद-स्फूर्ति से काम शुरू हो गया और जारी रहा । इस चरित्रलेखन के संदर्भ में पूज्य श्रीमोटा के कुछ आंतरिक अनुभव भी प्राप्त हुए, लेकिन उनका साक्षी न होने से उन्हें अपने हृदय में ही अनमोल संपदा की तरह छिपाया रखना उचित हैं ।

उन अनुभूतियों ने मुझे नि:संदेह रूप से आत्मविश्वास दिया, शक्ति दी, स्फूर्ति दी, प्राणों में उस चित्शक्ति की प्रेरणाओं का और भावनाओं का संचार कराया। उन अनुभूतियों ने मुझे कहा, 'तू सिर्फ़ कलम हाथ में रखना, रिक्त होना, खुला होना, जो-जो होता रहेगा वह होने देना, तू बाधाएँ खड़ी न करना, सब कुछ सहजता से हो जाएगा, तुझसे करवा लिया जाएगा।'

उन अनुभवों ने मुझे असीम सामर्थ्य प्रदान किया और जो कठिन था, नामुमकिन जैसा था, उसे सहज और मुमकिन बनाया, पूज्य श्रीमोटा की शक्ति ने और सद्‌गुरु श्रीअनंतस्वामी पेंढारकर महाराज (पू. श्रीवासुदेवानंद सरस्वती महाराज के सद्‌शिष्य) की शक्ति ने !.. और केवल एक महीने की अवधि में ही मराठी चरित्र का कार्य संपन्न हो गया।

पूज्य श्रीमोटा के चरित्रलेखन का काम करते समय प्रथम, उनके जीवन की घटनाओं का संकलन कर के उसका अभ्यास करना पड़ा। बाद में उन्हें सुसूत्रता से रखकर उनमें एक अखंडितता लाने के लिए ध्यान दिया। यह पूर्ण होते ही मन में एक नक्शा अंकित हुआ, जिसमें व्यक्ति, घटना, परिस्थिति इनका समावेश था, वैसे ही पूज्य श्रीमोटा और बाकी व्यक्तियों के प्रसंगानुरूप और परिस्थितिनुरूप बोल-विचार-मनोभाव और सूक्ष्म तरंग भी थे।

अंत में इस अंकित हो गयी हुई श्रीमोटा की जीवनी को शब्दसमूहरूप देकर उसे वाचकों के सामने रखते हुए बुद्धि को और मन को बोझिल लगनेवाला 'रसहीन वृत्तांत' न हो, इसके प्रति सजग

रहना भी आवश्यक था। सहजता, प्रवाहिता और रसमाधुर्य इनका त्रिवेणीसंगम न हो, तब तक यह संभव नहीं है और अर्थात् यह प्रयत्नसाध्य नहीं है, पुरुषार्थ से प्राप्त किया जा सकता नहीं है।

जिस प्रकार से फूल सहजता से खिलता है, आकाश में इंद्रधनुष अवचित् प्रगट होता है, उसी सहजता से वह 'अंतर से प्रगटीकरण' हो, तो ही उसका मूल्य है और वह घटता है केवल संतकृपा से, गुरुकृपा से और ईश्वरकृपा से ! यहाँ ऐसा कुछ घटा है या नहीं इसका निर्णय करना तो वाचकों पर ही निर्भर है।

चरित्र लिपिबद्ध करते समय अगर रंजकता को ही प्राधान्य और महत्त्व दिया जाता, तो कई बार समझौता करना पड़ता, काट-छाँट करनी पड़ती या सत्य की उपेक्षा करनी पड़ती । लोकप्रियता की कसौटी पर शायद वह यशस्वी भी हो जाता, तो भी सत्य की उपेक्षा करने का अक्षम्य गुनाह हो जाता । इसलिए पूज्य श्रीमोटा के और बाकी व्यक्तियों के घटनाओं के संदर्भ में जो-जो प्रत्यक्ष शब्द-भाव-विचार-सूक्ष्म तरंग उपलब्ध थे, उन्हें कुछ भी समझौता किये बिना, जैसे-हैं-वैसे ही स्वीकार करने का निश्चय किया । इससे चरित्र में शायद कहीं क्लिष्टता आ जाने का दोष निर्माण होना संभव था । लेकिन वह अनिवार्य और अटल था। जिज्ञासु, मुमुक्षु साधकों की दृष्टि से तो कस्तुरीमृग की नाभि में रही हुई कस्तुरी के समान इस सत्य का महत्त्व ही अधिक है और रंजकता को गौण स्थान है।

फिर भी, बहुतांश सर्वसाधारण वाचकवर्ग का विचार कर के उन्हें यह जीवनचरित्र क्लिष्ट और बोझिल न लगे इस उद्देश्य से उसके दो विभाग किये।

पहले खंड में पूज्य श्रीमोटा की जीवनी का समावेश है और दूसरे खंड में उनका बहुरंगी व्यक्तित्व, उनके शब्दों में ही श्रीसद्गुरु और साधना के बारे में संक्षिप्त जानकारी, उनके कुछ अमृतवचन, साधनामर्म, उनकी स्वरचित आरती, हरिःॐ आश्रमों की जानकारी, दानगंगा इत्यादि का समावेश है।

पूज्य श्रीमोटा के जीवनकाल के उपलब्ध पहलुओं में से करीब-करीब सभी का संक्षेप में प्रगटीकरण, इस चरित्रगंथ में है।

सद्भाग्य से पूज्य श्रीमोटाने अपनी उपस्थिति में ही भक्तजनोंको और आप्तजनों को अपने जीवन के बहुतांश प्रसंग विस्तार से लिखे थे। यह सब हरिःॐ आश्रम द्वारा प्रकाशित 'जीवनदर्शन' आदि ग्रंथों में शब्दबद्ध हैं।

उसी तरह पूज्य श्रीमोटा ने लिखे हुए ख़त, उनके लिखित बाकी ग्रंथ, उनके बोल इत्यादि पर आधारित तथा संकलन किये हुए 'पूज्य श्रीमोटा-जीवन अने कार्य' इस संदर्भग्रंथ से भी उनके बारे में विस्तारपूर्वक जानकारी प्राप्त होती है । पूज्य श्रीमोटा ने यह संदर्भग्रंथ स्वयं पढ़कर 'वह सत्याधिष्ठित है' ऐसा अनुमोदन दिया था।

श्रीमोटा के सब से छोटे बंधु स्वर्गीय श्री. सोमाभाई भावसार जिन्होंने सीधी-सादी भाषा में तरलता से और भावपूर्णता से 'तरणामांथी मेरु' नामक श्रीमोटा का चरित्र लिखा है। उनकी लिखाई से 'प्रवाही और प्रासादिक लेखन कैसा हो' इसका मार्गदर्शन मुझे प्राप्त हुआ। इस चरित्र का लेखन करते समय 'तरणामांथी मेरु' से कई भावपूर्ण अंशों का अनुवाद करने का सद्भाग्य मुझे प्राप्त हुआ। इसका मुझे गर्व है। उनका ऋणनिर्देश कर के उनके ऋण में रहने में ही मैं अपनेआप को अहोभागी मानता हूँ।

चरित्रलेखन करते समय 'जीवनदर्शन', 'श्रीमोटा-जीवन अने कार्य' और 'तरणामांथी मेरु' इन तीन ग्रंथों को सविशेष रूप में केंद्रिभूत रखा है।

मराठी में पूज्य श्रीमोटा का यह चरित्र प्रकाशित होने के बाद तुरंत ही मुझे आश्रम से निर्देशित किया गया कि, 'इस चरित्र का हिंदी अनुवाद भी आप ही करें।' उनके शब्द यह पूज्य श्रीमोटाकी ही प्रेरणा-आज्ञा मानकर अगले मौन में मैंने यह काम शुरू किया।

उससे पहले गुरुतुल्य सिद्ध महात्मा पूज्य दासानुदासजी दयानंदतीर्थजी के दर्शन कर के उनके भी आशीर्वाद इस कार्य के

लिए पा लिये थे । पूज्य दासानुदासजी का पूज्य श्रीमोटा से गहरा प्रेमसंबंध था और मराठी में पूज्य श्रीमोटा का चरित्र प्रकाशित होने पर उन्होंने अपना आनंद प्रगट किया था ।

मराठी चरित्र का भावार्थ हिंदी अनुवाद का काम शुरू हुआ और देखते-देखते केवल बारह दिनों में ही वह पूर्ण भी हो गया । न मैं हिंदी भाषी हूँ और न ही मैंने हिंदी का अभ्यास किया है, फिर भी यह कार्य सुसंपन्न हो सका, इसके पीछे भी निश्चित रूप से केवल कृपा ही है । पूज्य श्रीमोटा के जन्मदिन पर यानी भाद्रपद वद्यचतुर्थी, ३०-९-९५ के रोज ही यह काम पूर्ण हुआ यह एक अजीब इत्तफ़ाक़ है ।

हिंदी चरित्र की लिखाई करते समय खंड एक के कुछ दो-तीन प्रकरण थोड़े विस्तारित रूप में लिखे हैं और खंड दो में पूज्य श्रीमोटा ने स्वजन भगिनी को लिखे हुए एक ख़त का समावेश किया है, जिससे उनकी लेखनशैली का स्वतंत्र और विशिष्ट ढंग का सब को ख्याल आ जाएगा और साधक व्यक्तियों को साधना का बहुमूल्य मार्गदर्शन भी प्राप्त होगा । खंड दो में साधना, प्रार्थना, ध्यान, सेवाकार्य और दानगंगा, पूज्य श्रीमोटा का साहित्य और पद्यलिखाई इनके बारे में भी अधिकतर उनके ही शब्दों में लिखना और व्यक्त करना यह गागर में सागर भरने का प्रयत्न करने जैसा ही है, इसमें कोई शंका नहीं । फिर भी 'कण से मन की परीक्षा' इस न्याय से उनके सद्‌भुत, तेजस्वी और बहुआयामी व्यक्तित्व का किंचित् अनुभव भी अगर हमें प्राप्त हो सका, अपने हृदय को छूकर किंचित् अनुभव भी अगर हमें प्राप्त हो सका, तो भी लिखाई का हेतु साध्य हो गया है, ऐसा मैं मानूँगा । **वैसे तो खुद संत बने बिना संत को पहचानना असंभव है । यह सब जानते हैं ।** पूज्य श्रीमोटा के बारे में तो उन्हें जानना और भी कठिन था । उनके पास कोई आडंबर नहीं था, प्रचार उन्हें पसंद नहीं था, कोई गुरुगिरी भी नहीं थी । साधारण जन की भाँति ही उनकी रहनी-सहनी थी । अपना स्वरूप छिपा रखने की विशिष्ट क्षमता उनमें थी और जिन्होंने अंतरंग साधना कर के उनके चित्‌स्वरूप तक पहुँचने

का पुरुषार्थ ईश्वरकृपा से किया, उन्हें ही उनकी कुछ झलक प्राप्त हुई, किंचित् अनुभव प्राप्त हुआ । संत जितना दिखाते हैं और बताते हैं, उतना ही संसारी जीव उन्हें समझ पाते हैं, इसलिए अपने अंदर विराट चेतना का असीम समुद्र छिपाकर एक साधारण व्यक्ति की तरह रहनेवाले पूज्य श्रीमोटा को पूर्णतः समझ पाना भी आमजन के लिए अतिशय कठिन था या तो कहो कि करीब-करीब नामुमकिन था ।

उन्हें समझ पाने की जिज्ञासा अगर जागृत हो जाए, वह स्फुल्लिंग अगर हमें प्राप्त हो जाए और 'लगनी' निर्माण होकर सुपात्र बनकर, पुरुषार्थ कर के, उससे उनकी कृपा प्राप्त कर के हम ईश्वरगामी बन सकें, तो ही लिखाई का हेतु साध्य होगा ।

बूँद-बूँद मधु इकट्ठा कर के तैयार हो गया हुआ यह रसभरित चरित्ररूपी मधुघट रसास्वादन करने के लिए आपके होथों में सौंपते हुए मैं पुलक और आनंद अनुभव कर रहा हूँ ।

यह सब 'किया हुआ' नहीं बल्कि 'करवाया गया' कार्य है । इसलिए जीवनसाधना कर के आनंदप्राप्ति के जीवनहेतु के एकमेव लक्ष्य के पथपर मार्गक्रमण करने को पूज्यश्री की शक्ति उद्युत करेगी, बल-प्रेरणा-स्फूर्ति देगी और यह कीमिया कर के ही रहेगी, ऐसी मेरी दृढ़ श्रद्धा है ।

लिखाई में निश्चितरूप से कुछ त्रुटियाँ, कुछ दोष रह गये होंगे । वे दोष कलम हाथ में ठीक से न पकड़नेवाले के-अर्थात् मेरे हैं । पूज्य श्रीमोटा और आप सब उनकी ओर क्षमाशील दृष्टि से देखें यही प्रार्थना ।

'कलम का निमित्त बनने की कृपा' का दान करनेवाली गुरुशक्ति को यह चरित्र ग्रंथ नम्र भाव से समर्पित करता हूँ ।

डॉ. विद्यासागर लक्ष्मण कांबळे
एम.बी.बी.एस. (मुंबाई)
जाधव मार्केट, मु.पो. कुळगांव
जि. ठाणे, महाराष्ट्र, पिन : ४२१५०३

❑

॥ हरि:ॐ ॥

निवेदन

(तृतीय आवृत्ति)

पूज्य श्रीमोटा–एक संत पुस्तक की रचना कर के लेखक डॉ. विद्यासागर लक्ष्मण कांबळेजी ने अपने जीवन का अति महत्त्वपूर्ण कार्य संपन्न किया है । पूज्य श्रीमोटा का साहित्य गुजराती में उपलब्ध है । किन्तु हिन्दीभाषी साधकों को पूज्यश्री के जीवनवृत्तांत की माहिती उपलब्ध नहीं थी । इससे इस पुस्तक के माध्यम से पूज्य श्रीमोटा का जीवन एवं कार्य सरल भाषा में उपलब्ध हुआ है ।

उमदा सर्जन के लिए हरि:ॐ आश्रम, सुरत का ट्रस्टीमंडल डॉ. कांबळेजी का अंत:करणपूर्वक आभार व्यक्त करता है । इस पुस्तक के प्रथम–द्वितीय संस्करण में जो–जो क्षतियाँ थी, वह सभी क्षतियाँ दिल्ही स्थित श्री नोगेन्द्र जैन साहब ने बड़े परिश्रम से सही की है । इससे इस पुस्तक की पूर्णता (Perfection) बढ़ी है । श्री नागेन्द्रजी के यह अति महत्त्वपूर्ण योगदान बदल हम उनके आभारी हैं ।

अहमदाबाद स्थित मे. साहित्य मुद्रणालय लि. (प्रिन्टींग प्रेस) के श्री श्रेयसकुमार विष्णुप्रसाद पंड्या, पूज्य श्रीमोटा के प्रति भक्तिभाव से प्रिन्टींग की नि:स्वार्थ सेवा प्रदान कर रहे हैं । उनके सहयोग से ही हम पूज्य श्रीमोटा का पूरा साहित्य अत्यंत वाजिब कीमत से उपलब्ध करवा सकते हैं । हम श्रीश्रेयसभाई के अत्यंत आभारी हैं ।

भारतवर्ष की प्रजा पूज्य श्रीमटा के जीवनवृत्तांत में से अपने–अपने जीवन का लक्ष्य प्राप्त करेगी इस शुभेच्छा के साथ यह पुस्तक हम समाज के चरणों में समर्पित करते हैं ।

ता. १२–११–२०१५ **ट्रस्टीमंडल,**
नूतन वर्ष, सं. २०७२ हरि:ॐ आश्रम, सुरत

अनुक्रमणिका

खंड एक : पूज्य श्रीमोटा का जीवनचरित्र

क्रम	विषय	पृष्ठ संख्या
(१)	जीवनरंगरेज़ – एक ध्रुवतारा	१
(२)	श्रीमोटा का जन्म	३
(३)	अनजान ब्राह्मण	४
(४)	गरीबी का उत्तराधिकार	६
(५)	कड़ी मजदूरी	७
(६)	चातुर्य	११
(७)	चोरी	१४
(८)	स्वसमर्थन	१६
(९)	असहायता	१८
(१०)	मानी कुटुंब	२०
(११)	साधु की भविष्यवाणी	२२
(१२)	दंडुकेशाही	२५
(१३)	ज्वालामुखी का विस्फोट	३०
(१४)	प्राणीप्रेम	३१
(१५)	पितृप्रेम	३४
(१६)	लत से छुटकारा	३७
(१७)	सत्यप्रियता	३८
(१८)	आगे की पढ़ाई के लिए पेटलाद	४१
(१९)	पितृवियोग	४४
(२०)	सेवा का अनमोल मोल	४६
(२१)	शौक मिटा	५०
(२२)	'मैट्रिक तो हुए, आगे क्या ?'	५३
(२३)	संगदोष	५६
(२४)	वडोदरा कॉलेज छोड़ा	५८

क्रम	विषय	पृष्ठ संख्या
(२५)	स्वावलंबन से उच्च शिक्षा	६०
(२६)	गांधीजी का बुलावा	६४
(२७)	'बच्चे यानी क्या भेड़-बकरियाँ ?'	६८
(२८)	उपद्रवी बच्चों को सबक	७०
(२९)	जाति बाहर ?	७३
(३०)	सेवाव्रत	७५
(३१)	'हरि को भजते...'	७७
(३२)	जीवनदान	८२
(३३)	श्रीबालयोगी महाराज से प्रथम मुलाकात	८८
(३४)	'बंगला, एकांत और जलाशय !'	९२
(३५)	दीक्षा	९५
(३६)	स्मशानवास	९९
(३७)	बोकड	१००
(३८)	श्रीधूनीवाले दादा-पूज्य श्रीकेशवानंदजी महाराज	१०१
(३९)	सत्संग से सद्गति	११०
(४०)	'मुझे एक मगरमच्छ देखनेकु ले चल !'	११२
(४१)	'नर्मदे मात की जय !'	११७
(४२)	'यहाँ तेरा आश्रम होगा !	१२१
(४३)	'तुज चरणे !'	१२४
(४४)	ब्याह	१२५
(४५)	'जब तक तू मुझे देखता नहीं, तब तक सब व्यर्थ !'	१३०
(४६)	शाप या वरदान ?	१३३
(४७)	अवधूत का समागम	१३७
(४८)	भजन एक - परिणाम दो	१४४
(४९)	साकोरी में श्रीउपासनी महाराज के सान्निध्य में !	१४७
(५०)	लाठीमार में कसौटी	१५१
(५१)	'तू त्राटक कर !'	१५३

क्रम	विषय	पृष्ठ संख्या
(५२)	जेलयात्रा-जीवनसाधना	१५६
(५३)	एकमेव लक्ष्य-साधना	१५७
(५४)	सेवाभाव	१५८
(५५)	कलंक से रक्षण	१६०
(५६)	श्रीसद्गुरु का स्थूल देह में पुनरागमन	१६३
(५७)	'योगक्षेमं वहाम्यहम्'	१६७
(५८)	एकांत साधना	१७१
(५९)	चित्रकूट का तांत्रिक ब्राह्मण	१७२
(६०)	हृदय जीता	१७४
(६१)	धुआँधार	१७८
(६२)	हिमालय में अघोरी बाबा के पास	१८०
(६३)	ब्रह्मचर्य के लिए अग्निसाधना	१८८
(६४)	श्रीकृष्ण दर्शन-सगुण साक्षात्कार	१९१
(६५)	अभयप्राप्ति की कसौटी-गिरनार में	१९३
(६६)	प्रभाबा की सदेह पुनर्भेंट	१९४
(६७)	सेवानिवृत्ति और कराची को प्रयाण	१९६
(६८)	कराचीवाले बाबा - एक औलिया	१९८
(६९)	'परधर्मो भयावहः!'	२०६
(७०)	अद्वैत का साक्षात्कार	२०९
(७१)	गहनों की चोरी	२११
(७२)	'पैदाईश के दिन कराची जाना !'	२१६
(७३)	'वचनपूर्ति !'	२१९
(७४)	माँ का पुनर्जन्म	२२३
(७५)	शिरडी में...	२२७
(७६)	मूक सत्याग्रह	२२८
(७७)	समदृष्टि	२३२
(७८)	'अभी भी तेरा अहं गया नहीं ?'	२३५

क्रम	विषय	पृष्ठ संख्या
(७९)	'समुंदर में चला जा !'	२३८
(८०)	'महबूब का हुक्म !'	२४०
(८१)	श्रीसद्गुरु की प्रेमप्रसादी	२४६
(८२)	गुरुदक्षिणा	२४९
(८३)	अनाग्रही और अनासक्त श्रीमोटा	२५०
(८४)	'तुझ पर समाज का ऋण है !'	२५२
(८५)	'मुझे समाज को बैठा करना है !'	२५५
(८६)	प्रेमस्पर्श	२५८
(८७)	प्रेमी संत	२६०
(८८)	वापसी की तैयारी	२६४
(८९)	देहत्याग	२६९
(९०)	'अग्नये स्वाहा !...'	२७५

खंड दो : परिशिष्ट

(१)	श्रीसद्गुरु के बारे में-पूज्य श्रीमोटा के शब्दों में	२८१
(२)	साधना के बारे में-पूज्य श्रीमोटा के शब्दों में	२९०
(३)	प्रार्थना-पूज्य श्रीमोटा के शब्दों में	२९९
(४)	ध्यान-पूज्य श्रीमोटा के शब्दों में	३०२
(५)	पूज्य श्रीमोटा-एक बहुरंगी व्यक्तित्व	३०५
(६)	पूज्य श्रीमोटा का साहित्य और पद्यलिखाई	३१२
(७)	पूज्य श्रीमोटा का एक ख़त	३१६
(८)	हरि:ॐ आश्रम	३२४
(९)	अमृतबिंदु	३३०
(१०)	साधनामर्म	३३९
(११)	'ॐ शरण चरण लेजो'-आरती	३४२
(१२)	सेवाकार्य और दानगंगा	३४४
(१३)	पूज्य श्रीमोटा के जीवन की महत्त्वपूर्ण तिथियाँ	३४७

॥ हरि:ॐ ॥

खंड एक

पूज्य श्रीमोटा का जीवनचरित्र

'मैं सर्वत्र विद्यमान हूँ !'

\- मोटा

॥ हरिःॐ ॥

१. जीवनरंगरेज़ - एक ध्रुवतारा

रंगरेज़ कुटुंब में जन्म हुआ एक लड़का, थी जिसके पास लगन, दृढ निष्ठा, पुरुषार्थ, सीख रहा था जो कठोर परिश्रम करते हुए कड़ी गरीबी में भी। माँ-बाप का सपना था कि वह बड़ा होकर, कोई अफ़सर बनकर, गरीबी को छिन्नभिन्न कर के उन्हें सुखचैन की और ऐशोआराम की जिंदगी देगा । लेकिन वह तो प्रभावित हुआ गांधीजी के व्यक्तित्व से, उनके आचार-विचारों से। उनकी ललकार हृदय में धारण कर के उसने तो कसम खा ली दीन-दुःखीजन और हरिजनों की सेवा की। डिग्री का मोह त्यागकर उस निष्काम सेवा में वह जुड़ गया मन-प्राण से । सब का विरोध सहन कर के हर तरह का हलाहल प्राशन कर के भी वह डटा ही रहा अपने कार्य में ।

शुरू में देशसेवा-हरिजनसेवा यह मात्र उसका ध्येय था, लेकिन नियति के मन में तो कुछ और ही था । इस त्यागी, पुरुषार्थी जीव को उसने ईश्वरप्राप्ति के पथ पर खींच लिया और कर्मयोगी की भूमिका उसे प्रदान की । फिर तो सेवा और प्राप्त होनेवाला हर एक कर्म-सब कुछ ही उसके लिए जीवनसाधना रूप बन गया।

फिर, दिन में यह कर्मयोग और रात में स्मशान में एकांतवास में भक्तियोग, ऐसी उग्र साधना शुरू हुई । पक्षियों से खुद को बचाने के लिए पेड़ अपने फलों को पत्तों से ढक लेते हैं, उसी गुप्तता से उसकी साधना चलती रही, अखंडितता से ।

समय बहता गया और किसी एक मंगलक्षण में उसकी तपश्चर्या की पूर्णाहुति हो गई। ईश्वरीय चेतना में वह पूर्णतः पिघल गया, समा गया। उच्चतम दिव्यलोक के दरवाजे उसके लिए खुल

गये और शांति तथा आनंद की खोज में संसार में भटकनेवाले पीड़ित जीवों को दिशा दिखाने की क्षमता उसे प्राप्त हो गयी । शांति-आनंद प्रदान करने की यह सर्वोच्च सेवा वह नम्रता से, निरहंकारिता से करने लगा ।

बापदादों का कपड़ा रंगने का काम उसने किया ही नहीं, लेकिन लोगों के मैले हृदयों को धोकर उनके जीवन में ईश्वरप्रीति का पक्का रंग डालकर दिन-प्रतिदिन उनको ईश्वर की ओर वह ऊर्ध्वगामी करता गया ।

श्रीसद्‌गुरु के आदेशानुसार साधकों को साधना करने के लिए मौन-एकांत प्राप्त करानेवाले मौनमंदिरों की उसने रचना की, समाज में मौलिक कार्य के लिये दानगंगा बहाई और अंतःस्फूर्त साहित्य प्रगट किया ।

सारे समाज ने उसके चरणों का आश्रय लिया, धनराशियाँ उसके चरणों पर अर्पण हुईं, मान-सम्मान, प्रतिष्ठा और प्रसिद्धि का वलय उसके चारों ओर फैल गया, फिर भी उन सब से वह था अस्पर्शित, कीचड़ में खिलनेवाले कमल की तरह ।

स्वपुरुषार्थ के आधार पर मार्गक्रमण कर के समर्थ श्रीसद्‌गुरु के कृपाछत्र के नीचे ईश्वरप्राप्ति का गौरीशंकर शिखर जिन्हों ने सहजता से पा लिया, ऐसे थे श्रीमोटा !... अपने स्थानपर स्थिर रह कर सब को प्रकाश देनेवाले और दिशा दिखानेवाले ध्रुवतारे की तरह उनका अद्‌भुत जीवनचरित्र भी अपनी विशिष्टता से चमक उठा, साधुसंतों के समुदाय में, सभी को प्रेरणादायी बनकर शक्ति और शांति प्रदान करनेवाला अक्षय स्रोत बनकर ।

✤ ✤ ✤

॥ हरि:ॐ ॥

२. श्रीमोटा का जन्म

संवत १९५४ का भाद्रपद महीना। शुक्लपक्ष खत्म होकर कृष्णपक्ष शुरू हुआ था । तिथि चौथी । अंग्रेजी कालगणनानुसार ४ सितंबर, १८९८ का दिन ।

अंधकार की कालिमा झटककर भोर प्रकट हो रही थी । पूर्व दिशा में आकाश में लालिमा फैल रही थी । सूरज धीरे-धीरे अपना सिर उठाकर अपनी दृष्टि डाल रहा था और सृष्टि नींद से जगकर अधखुले नेत्रों से उसे निहार रही थी । मंदिरों में काकड़ आरतियों की कर्णमधुर ध्वनि सुनाई दे रही थी । घंटे बज रहे थे और पंछी किलबिलाहट कर रहे थे । इन सब से वातावरण निनादित हो रहा था, भारित था ।

ऐसे मंगलमय सुप्रभात में 'सावली' गाँव के श्री भाईचंद भगत के घर में सभी चिंतित थे । क्योंकि उनकी पुत्रवधू सूरज प्रसूतिपीड़ा से व्याकुल हो रही थी । आखिर कोई एक दौड़कर दाईमाँ को बुला लाया । आते ही उसने अपने हाथ में सारा प्रबंध ले लिया और प्रसूति निर्विघ्नता से हो, इसके लिए अपने सब कौशल से प्रयत्न करने लगी।

थोड़े ही समय में बालक के रोने की आवाज सभी को सुनाई दी । बाहर आकर आनंदित होकर दाईमाँ ने बताया कि सूरज ने बेटे को जन्म दिया है । सूरजबा और आशारामजी के घर में दूसरा बेटा आने की यह खबर वायुवेग से आसपास फैल गयी। पुत्रजन्म के आनंद में आशारामजी ने सब को गुड़-धनिया देकर सब का मुँह मीठा कराया ।

किस दिव्यात्मा को हमने जन्म दिया है, इसके बारे में दोनों माता-पिता अनभिज्ञ थे । बालमोटा के जन्म से अपना मातृत्व-

पितृत्व धन्य हुआ है, यह जानना उनके लिए मुमकिन नहीं था। वह तो समयचक्र ही सिद्ध करनेवाला था, अपने निर्धारित समय पर।

✤ ✤ ✤

॥ हरि:ॐ ॥

३. अनजान ब्राह्मण

दिन बीतते गये और बालमोटा शुक्लेंदुवत् बड़े होने लगे । उनका जन्म शनिवार को हुआ था । इसलिए कुछ लोग उन्हें 'शनियो' कह कर पुकारते थे । वैसे तो उनका नाम रखा गया था चुनीलाल, लेकिन माँ लाड़-प्यार से उन्हें 'चुनिया' कह कर ही पुकारती ।

निष्पापता, निरागसता और निर्दोषता की मूर्तिरूप चुनीलाल सभी का लाड़ला था । आसपास के लोग उसे खेलने के लिए ले जाते थे, उसे खिलाते-पिलाते थे, उसकी बालक्रीड़ाओं से आनंदित होते थे । अपनी नज़रों के सामने वह सदा रहे ऐसा सभी को लगता था । वह सभी के आकर्षण का केंद्र बन गया था, मानो बालकृष्ण ही हो ।

एक बार चुनीलाल आंगन में खेल रहा था । इतने में एक ब्राह्मण वहाँ आया । उस तेजस्वी ब्राह्मण ने अपने सारे बदन पर भस्म धारण किया हुआ था । दौड़ादौड़ करनेवाले इस शरारती लड़के पर उसकी दृष्टि पड़ते ही वह चौंक गया । नज़दीक जाकर उसने चुनीलाल का हाथ अपने हाथ में लेकर गौर से देखा । उसने देखा कि उसकी कलाई पर काला दाग था और हाथ की रेखाओं में त्रिशूल और कमल थे ।

सूरजबा यह सब अचंभित होकर देख रही थी । अपने लाड़ले का हाथ यह ब्राह्मण क्यों देख रहा है और उसे क्या दिख

रहा है, इसका उसे आश्चर्य हो रहा था । उससे रहा न गया । आखिर उसने पूछ ही लिया ।–'महाराज ! क्या हुआ ? क्या देख रहे हैं आप ? कोई घबराने की बात तो नहीं है न ?'

निर्मलता से हँसते हुए सूरजबा की तरफ देखकर उसने आश्वस्त स्वर में कहा, 'नहीं माई । ड़रने की कोई बात नहीं । तेरा बेटा साधारण बालक नहीं है, उसका भावि बहुत उज्ज्वल है, वही देख रहा था मैं उसकी हस्तरेखाओं में ।'

'वह कैसे ?'–सूरजबा ने औत्सुक्य से पूछा । उसे यह सब अजीब–सा लग रहा था ।

चुनीलाल का हाथ सूरजबा को दिखाते हुए ब्राह्मण ने कहा, 'माई, देख । तेरे लाड़ले के बायेँ हाथ की कलाई पर काला दाग है और हाथ की रेखाओं में त्रिशूल और कमल है । दिखता है न ? ये बता रहे हैं कि बड़ा होकर यह या तो बहुत बड़ा आदमी बनेगा, या फिर महान संत बनेगा । माई, तू बड़ी सद्भागी है । अब यह मीठा राज़ बतानेवाले इस गरीब ब्राह्मण को कुछ देकर खुश कर माई ।' ब्राह्मण ने आशाभरे स्वर में कहा ।

वैसे तो उस ब्राह्मण को कभी मुट्ठी–दो मुट्ठी चावल या आटा ही मिलता था । लेकिन आज खुशी से सूरजबा ने उसे दाल, चावल, घी, आटा, गुड़ आदि पूरी सीधा–सामग्री प्रदान की और उसके अलावा एक चांदी की पावली भी दी, दक्षिणारूप में ।

सुबह–सुबह ही इतना सारा प्राप्त होने पर ब्राह्मण को वह शुभशगुन ही लगा और चुनीलाल को और सूरजबा को हृदयपूर्वक 'कल्याणमस्तु ।' ऐसा आशीर्वाद देकर वह तृप्त होकर चला गया, जाते–जाते आनंद की वर्षा में उन्हें नहलाकर चला गया ।

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

४. गरीबी का उत्तराधिकार

सावली गाँव के जिस घर में श्रीमोटा का जन्म हुआ था, वह वैसे तो प्रशस्त था, लेकिन आशारामजी के पिताजी के गुजरने के बाद उनकी पीढ़ी का कामकाज जैसा होना चाहिए वैसा हुआ नहीं था और परिस्थिति बहुत ही ख़राब थी । उनके लिए तो दो वक्त की रोटी मिलना भी कठिन था, कपड़े भी साल में एक बार ही सिलाये जाते थे । इस तरह अपने टूटे–फूटे संसार की बैलगाड़ी वे माँ–बाप कठिनाई से खींचते चले जा रहे थे ।

आखिर परिस्थिति उनके वश में नहीं रही । उधारी का पैसा आ नहीं रहा था और जिनसे पैसा लिया था, वे साहुकार 'अभी का अभी दे दो' यह ज़िद ले बैठे । नाकमुंह बंद होने पर, निरूपाय होकर अपना घर और कपड़े की पीढ़ी उन साहुकारों को सौंपने के अलावा और कोई मार्ग नहीं रहा ।

पूर्णतः कंगाल और छत्रहीन होकर आशारामजी ने सावली गाँव छोड़ दिया और पंचमहाल जिले के 'कालोल' नामक छोटे से गाँव में उनका कुटुंब आ बसा । एक ज़माने में बड़ी प्रशस्त हवेली में रहनेवाले आशारामजी को एक कमरेवाले मकान में मजबूरन रहना पड़ा । घर चमार लोगों की बस्ती में था । वहाँ निम्न स्तर के अनपढ़ लोगों का साथ था । शराब के नशे में चूर होकर गालियाँ बकनेवाले असंस्कारी लोगों की बस्ती में रहना पड़ा, फिर भी आशारामजी के कुटुंब ने अपने संस्कार टिकाये रखे थे ।

बापदादों से पाया हुआ कुछ भी हाथ में नहीं रहा, लेकिन हाथ–पैर तो हट्टे–कट्टे, थे इसलिये वे निश्चिंत थे । जो कुछ हो रहा

था, उसके पीछे तो ईश्वर का संकेत होगा, ऐसा मानकर उन्होंने परिस्थिति को स्वीकार किया और कपड़ा रंगने का काम शुरू किया। सूरजबा भी जो काम मिले वह करने लगीं। बर्तन माँजना, कपड़े धोना, पानी भरना, अनाज साफ़ करना, अनाज पीसना, मज़दूरी...जो कुछ भी काम मिलता गया वह सूरजबा करती गयीं। पेट की माँग पूरी करने के लिए एक अखंड श्रमयज्ञ शुरू हुआ और चलता रहा ।

✤ ✤ ✤

॥ हरि:ॐ ॥

५. कड़ी मज़दूरी

चुनीलाल घर की विकट परिस्थिति देख ही रहा था । माँ-बाप इतने कष्ट सहें और मैं बैठा रहूँ, इसकी उसके मन में चुभन होने लगी । कुछ हाथ बटाने का और मददरूप होकर उन्हें तसल्ली देने का मेरा भी फ़र्ज़ बनता है, ऐसा उसके बालमन में दृढ निश्चय किया और अपना इरादा उन्हें बताया । लाचार माता-पिता ने 'हाँ' कर दी ।

फिर तो चुनीलाल काम की खोज में रहने लगा ।

एक बार उसे मालूम हुआ कि ईंटभट्ठी चल रही है और वहाँ काम पाना संभव है । मन में आशा लिए वह झट ही जगह ढूँढ़कर वहाँ गया और वहाँ बैठे हुए भट्ठी के मालिक के पास जाकर खड़ा रहा ।

उसे देखकर मालिक ने पूछा, 'क्यों रे लड़के, क्या चाहिए तुझे ?'

'साहब, मैं काम करने आया हूँ । मुझे काम पर रख लो ।' उसने बताया ।

इतना-सा बच्चा काम माँग रहा है, इसपर मालिक को विश्वास ही नहीं हुआ । शंकित होकर उसने चुनीलाल से कहा, 'अरे ! इतनी-सी तो जान है तेरी । तुझसे क्या काम हो सकेगा ? तू क्या ये गरम-गरम ईंटें उठा सकेगा ? जा जा ! यह तेरे बस की बात नहीं है । चल भाग यहाँ से ।'

मालिक के ये बोल सुनकर भी चुनीलाल ने ज़िद नहीं छोड़ी । वह बोला, 'साहब, मैं आपको काम कर के दिखाउँगा । मेहनत करने की मुझे आदत है । मैं ईंटें उठाने का काम ज़रूर करूँगा। आप मुझे सिर्फ़ एक मौका दीजिए ।'

चुनीलाल की गिड़गिड़ाहट से मालिक का दिल पिघल गया ।

'ठीक है, जा उधर और सब के साथ काम में लग जा । वह मुकादम जैसे बताएगा वैसे काम करना । अगर तू काम कर सका तो शाम को औरों की तरह तुझे भी मज़दूरी के पैसे दे दूँगा।'

संमति प्राप्त होते ही खुशी से दौड़ते हुए चुनीलाल मुकादम के पास गया । उसने उसे ईंटें भट्ठी से निकालकर ट्रक में भरने का काम सौंपा ।

मालिक ने इशारा किया था जैसे, सचमुच ही काम आसान नहीं था । गर्म ईंटें हाथ से उठाकर पाटी में भर कर सिरपर रखकर ट्रक तक ले जाना था । गर्म ईंटें उठा-उठाकर उसके हाथ अंगार-अंगार होने लगे, फिर भी दर्द सहते हुए धैर्य से उसने काम जारी रखा और पूरा किया । 'अपने माता-पिता को मदद करनी है' इस भाव ने मानो उसे असीम सहनशक्ति प्रदान की थी ।

काम ख़त्म होने पर ईंटों की गिनती कर के उसके अनुसार हिसाब से मज़दूरी के पैसे चुनीलाल को ईंटभट्ठी के मालिक से प्राप्त हुए । चुनीलाल ने ढंग से और प्रामाणिकता से काम किया था, इसलिए मालिक उस पर बहुत राजी हो गया ।

पाये हुए रुपये लेकर चुनीलाल घर लौट आया। स्वकष्ट की कमाई के वे पैसे सूरजबा के हाथ में रखते समय उसका चेहरा गर्व से और आनंद से फूल गया। पैसे देखकर सूरजबा की आँखें आँसुओं से भर आयीं। जिस उम्र में हाथ में खिलौने पकड़े जाते हैं, उस उम्र में उसके लाड़ले के हाथ में गरम ईंटें पकड़नी पड़ रही थीं। यह नियति का क्रूर मज़ाक था। लेकिन वह भी लाचार थी। घर का छप्पर ही जहाँ फट गया हो, वहाँ वह भी क्या करे?

एक शब्द भी बोले बिना सूरजबा ने अपने 'चुनिया' को गोद में लिया और अपनी ममता बरसाकर सहलाते हुए उसके चुंबन लेने लगी। गरम ईंटें उठाकर लाल हो गये हुए हाथों को और उभरे हुए छालों को उसने हल्के हाथों से तेल लगाया और फिर खाना खाकर थका-माँदा 'चुनिया' माँ की गोद में सो गया।

दिन इसी तरह कठिनाई में गुजर रहे थे।

एक बार किसी ने चुनीलाल को बताया, 'ए चुनीलाल, बाज़ार में एक राजगीर को उसके काम के लिए मज़दूर की ज़रूरत है और उसे छोटा लड़का ही चाहिए। तू जल्दी से जा उधर।'

चुनीलाल ने उस राजगीर को ढूँढ़ निकाला और काम पा लिया। वहाँ एक मकान बन रहा था। राजगीर ने चुनीलाल को काम का स्वरूप समझाया। उसकी सूचनानुसार चुनीलाल ने ईंटों के ढेर बनाये और उन पर पानी छिड़का। फिर उसने रेती, सिमेंट, पानी फावड़े से मिलाकर अच्छी तरह से माल बनाया। बाद में ईंटें और माल पाटी में भरकर उस राजगीर को आवश्यकतानुसार देने लगा। राजगीर को फिर से बताने की या डाँट-फटकार की ज़रूरत ही न पड़ी। इतना होशियार और मेहनती लड़का उसने पहले देखा ही नहीं था।

काम ख़त्म होने पर उसने खुश होकर जो तय की थी उससे थोड़ी ज़्यादा मज़दूरी चुनीलाल को दी और कहा, 'ए लड़के, तू कल भी आना।'

'हाँ, ज़रूर आऊँगा।' आनंदित होकर चुनीलाल ने जवाब दिया। वह भी यही चाहता था। ...जब तक उस राजगीर का मकान का काम चलता रहा, तब तक चुनीलाल को काम मिलता रहा।

कपास के मौसम में भूरी-भूरी कपास छानकर तोड़ने का काम भी चुनीलाल को बहुत भाता था। 'भगवान किस तरह यह कपास बनाता होगा? किस तरह बिनौले अंदर भरता होगा? उसे अचरज होता। सब के साथ वह बड़ी तेज़ी से कपास छानते-छानते चलते जाता और पीठ पर रखी हुई थैली में जमा करते जाता। उसके छोटे-छोटे हाथ बड़ी तेज़ी से चलते।

काम पूरा होने पर चुनीलाल ने चुनी हुई कपास का ढेर औरों की जमा की हुई कपास के जितना ही होता, जरा भी छोटा नहीं होता...फिर भी मज़दूरी पाते समय वह आधी ही मज़दूरी पाता। यह पक्षपात वह समझ न पाता। दोपहर को खाने के वक्त खेतमालिक से उसे रोटियाँ भी आधी ही मिलतीं।'

'अगर मैं काम सब के जैसा ही करता हूँ, तो फिर मुझे मज़दूरी और भोजन आधा ही क्यों दिया जाता है?' इसका हल उसकी बालबुद्धि को प्राप्त नहीं होता था और उसके इस प्रश्न के लिए मालिक के पास भी कोई जवाब नहीं होता था। वह तो केवल चुनीलाल की पीठ थपथपाकर उसे शाबाशी देता। जवाब देना टालकर प्रशंसा कर के कहता, 'बहुत अच्छा काम करता है तू। तू रोज़ आना।' उस गरीब के प्रश्न का उत्तर देने को वह मालिक बँधा हुआ नहीं था, और न ही वह उत्तर देना ज़रूरी समझता था।

पाये हुए पैसै लेकर चुनीलाल चुपचाप घर चला जाता ।

गरीब के शब्द की कोई कीमत होती नहीं है, यह समझ पाये तब उतनी उसकी उम्र नहीं थी ।

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

६. चातुर्य

बचपन से ही चुनीलाल तीक्ष्ण बुद्धि का था । परिस्थिति थोड़ी-सी सुधरते ही उसने पाठशाला में प्रवेश लिया और उसकी पढ़ाई शुरू हुई । कहीं भी अटके बिना वह एक-एक कक्षा ऊपर चढ़ता गया । उसकी समझशक्ति और ग्रहणशक्ति बहुत अच्छी थी और ज़रूरत पड़ने पर दूसरों को भी वह अड़े हुए प्रश्नों का हल बताया करता था ।

उसकी चौथी कक्षा की पढ़ाई पूरी हुई और बाद में एक बाधा सामने आ गयी । चौथी कक्षा के बाद जिस 'एँग्लो वर्नाक्युलर मिडल स्कूल' में प्रवेश लेना था, वहाँ फीस दिये बिना छुटकारा न था ।

इस पर भी चुनीलाल ने एक तरकीब सोच निकाली । वह स्कूल के संचालकों से जा मिला और उनसे नम्रतापूर्वक बिनति की 'साहब, मैं गरीब लड़का हूँ। फीस देने के लिए और किताबें खरीदने के लिए मेरे पास पैसे नहीं हैं। मेरे माता-पिता बहुत कड़ी मेहनत-मज़दूरी कर के किसी भी तरह मेरा पेट पाल रहे हैं। आप मुझे पाठशाला की साफ़सफ़ाई का और चपरासी का काम दे दें। यह काम अगर मिल जाए तो ही मैं आगे पढ़ सकूँगा। कृपा कर के मुझे ये काम दें और अपने स्कूल में भर्ती कर लें।'

यह सुनकर संचालक द्रवित हो गये और चुनीलाल को स्कूल में काम मिल गया और स्कूल में प्रवेश भी मिल गया ।

पढ़ाई शुरू करने के बाद चुनीलाल के ख़याल में आया कि अगर थोड़ी ज़्यादा मेहनत की जाये तो चार साल की पढ़ाई एक-डेढ़ साल में ही पूरी की जा सकती थी । उसने फिर पढ़ाई पर जोर लिया और चार साल का अभ्यास शीघ्र ही पूरा कर लिया । बाद में परीक्षा लेने की बिनति करने को वह हेडमास्टर से मिलने गया।

उसकी सब बात सुनकर हेडमास्टर बोले, 'बेटा, तूने ज़िद से और मेहनत से ये पढ़ाई की है, इसका मुझे आनंद होता है। लेकिन इन चार साल की परीक्षा लेने का अधिकार मेरा नहीं है । शिक्षा खाते के इन्स्पेक्टर साहब श्री चतुरभाई के हाथ में ही सब कुछ है । मुझे अफ़सोस है कि तेरे चार साल की परीक्षा मैं एकसाथ ले नहीं सकता ।' ...सब किये हुए पर पानी फिर गया था । अपनी सब मेहनत व्यर्थ गयी, ऐसा चुनीलाल को एक क्षण लगा, लेकिन हार माने वह चुनीलाल कैसा ?... अपनी बुद्धि चलाकर उसने इसका भी रास्ता ढूँढ़ लिया । उसने निर्णय लिया, 'मैं चतुरभाई से मिलकर उनकी सहमति पा लूँगा ।'

श्री चतुरभाई पटेल एक रुआबदार और आकर्षक व्यक्तित्व के थे । कड़क इस्त्री किया हुआ सदरा, सुंदर तलम धोती, लाँग कोट और माथे पर पगड़ी इस प्रकार की साहब की माने जानेवाली पोशाक उन्हें अतिप्रिय थी । ऐसे चतुरभाई से चुनीलाल जा मिला।

उन्होंने मृदुता से उससे पूछा, 'बेटा, क्या चाहिए तुझे ? क्या काम है ?'

चुनीलाल ने खूब हिम्मतपूर्वक कहा, 'साहब, मैं एक गरीब लड़का हूँ और आगे पढ़ने के लिए मुझे मदद चाहिए । आप मुझे अपने कपड़े रंगने के लिए देना । मैं रंगरेज़ कुटुंब का हूँ और बहुत अच्छी तरह से आपके कपड़े रंगाकर ला दूँगा ।'

उसकी स्पष्टता और हिम्मत पर चतुरभाई खुश हुए । 'इस लड़के को मदद करनी ही चाहिए'-उन्होंने निश्चिय किया । 'लेकिन रंगाने को क्या दें ?'... 'अपनी पगड़ी का रंग धूप से फीका हो गया है उसे ही दे दूँ ।'-यह सोचकर उन्होंने अपनी पगड़ी उतारकर चुनीलाल को सौंप दी और बोले, 'ले जा यह पगड़ी, लेकिन जल्दी ला देना ।'

'हाँ साहब, दो-तीन दिनों में ही ले आऊँगा मैं ।'-पगड़ी हाथ में लेकर आनंदित हो गये हुए चुनीलाल ने जवाब दिया ।

घर जाने पर उसने मन लगाकर पक्के और सुंदर रंग से पगड़ी रंगायी । रंग सूखने के बाद दूसरे दिन ही वह पगड़ी लेकर चतुरभाई के पास पहुँच गया । उसका काम देखकर चतुरभाई प्रसन्न हुए । पगड़ी का रंग उन्हें भाया, वैसे भी उस रंग की मंद-मंद सुगंध भी उन्हें बहुत अच्छी लगी । चुनीलाल को शाबाशी देकर पीठ थपथपाकर वे उसे पैसे देने लगे । पैसे लेने से इनकार कर के चुनीलाल ने बताया, 'साहब, मुझे पैसे नहीं चाहिए । मेरी आपसे कोई और ही अपेक्षा है ।'

'क्या चाहिए तुझे ?'-अचंभित होकर चतुरभाई ने पूछा ।

अपने मन की बात कथन करते हुए चुनीलाल बोलने लगा, 'साहब, मैं 'एँग्लो वर्नाक्युलर मिडल स्कूल' में पढ़ रहा हूँ । वहाँ चार वर्ष की पढ़ाई मैंने डेढ़ साल में ही पूरी कर ली है । उन चार वर्ष की परीक्षा लेने की अनुमति आप अगर हेडमास्टर साहब को देंगे, तो मेरे ढाई साल बच जाएँगे । मेरी आपसे यही प्रार्थना है ।' झट से चुनीलाल ने बता दिया ।

'बस, इतना ही ? जा, तेरा काम हो गया ऐसा समझ ।' हँसकर आश्वस्त स्वर में वे बोले ।

हर्षभरित होकर दौड़ते-दौड़ते ही चुनीलाल घर गया ।

कुछ दिनों के बाद स्कूल के इन्स्पेक्शन के निमित्त से चतुरभाई आये और हेडमास्टर से कहकर चुनीलाल के चार साल की परीक्षा का आयोजन उन्होंने करवाया । पूर्ण तैयारी होने से सब परीक्षाओं में अच्छे गुण प्राप्त कर के चुनीलाल उत्तीर्ण हो गया, इसमें कोई आश्चर्य नहीं था ।

अपनी होशियारी से चतुरभाई का मन जीतकर परीक्षा के चार गढ़ चुनीलाल ने जीत लिये थे ।

✤ ✤ ✤

॥ हरि:ॐ ॥

७. चोरी

चुनीलाल स्कूल में जाने के बारे में बहुत चुस्त था । नियमित रूप से वक्त पर स्कूल जाकर वह मन लगाकर पढ़ाई कर रहा था। अन्य मित्रों साथ में पैसे लाया करते थे और छुट्टी में बगल की दुकानों में जाकर सेव-मुरमुरे, फरसाण, चने, सेंगदाणे, मिठाईयाँ, चाकलेट्स, गोलियाँ, फ्रूट्स...ऐसा कुछ-न-कुछ लाकर खाया करते थे । यह उनकी आदत ही बन गयी थी ।

अपने साथ पैसे ले जा सके ऐसी चुनीलाल के घर की परिस्थिति नहीं थी । उसने अपने मन को समझा-बुझाकर काबू में रखा था, तो भी एक दिन उसके मन में लालच पैदा हो गया, 'एकाध बार मैं भी कुछ खा लूँ तो क्या हर्ज है ?'-उसे लगा ।

घर में माँ अपनी मज़दूरी के और कामकाज के पैसे कहाँ रखती थी, वह जगह चुनीलाल जानता था । उसने एक दिन वहाँ से दो पैसे चुराये और स्कूल में जाने के बाद छुट्टी में अपने दोस्तों

के साथ दुकान में जाकर उसके सेव-मुरमुरे खरीदकर दोस्तों के साथ खा लिये । इस तरह खाने का यह तत्कालीन आनंद उसे प्राप्त हुआ सही, लेकिन थोड़े ही समय में वह नष्ट होकर उसकी जगह अपराधभाव ने ले लिया । उसके मन ने उसे फटकारकर पूछा, 'चुनीलाल, तेरी माँ कड़ी मेहनत-मजदूरी कर के जो पैसे कमाती है, उसे चुराने की हिम्मत तूने कैसे की ? किसलिए ? केवल दो-चार मिनट के आनंद के लिए, स्वाद के वश होकर ही न ? क्या यह तुझे शोभा देता है ?'

बाद में स्कूल में उसका मन पढ़ाई में लगा ही नहीं । घर लौटने पर वह गर्दन झुकाकर माँ के सामने मुरझाया-सा खड़ा रहा ।

उसे इस तरह खड़ा देखकर माँ ने प्रेम से पूछा-'क्या है चुनिया ? तबीअत ठीक नहीं है क्या ? तेरा चेहरा इतना उतरा हुआ क्यों है ?'

डरते-डरते चुनीलाल ने जो कुछ घटा था, वह कुछ भी छिपाये बिना बता दिया । सुनकर माँ को वैसे तो आनंद हुआ कि 'मेरे 'चुनिया' ने प्रमाणिकता से अपनी भूल स्वीकार की है और उसे उसका पछतावा हुआ है ।'...फिर भी, कृतक्षेप से उसने कहा, 'कर्म मेरा । कलमुए, अगर फिर से ऐसा करेगा न, तो तेरी ऐसी पिटाई करूँगी, कि आकाश के तारे ही नज़र आएँगे ।...अब जा यहाँ से और अपनी पढ़ाई कर ।'

चुपचाप चुनीलाल बरामदे में गया और दफ्तर खोलकर किताबें और कापियाँ निकालकर अपनी पढ़ाई करने लगा । अपनी ग़लती स्वीकारकर उसे माँ को बताने के बाद उसका मन बादल की तरह हल्का-हल्का हो गया था ।

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

८. स्वसमर्थन

स्कूल की पढ़ाई में चुनीलाल ने पहला नंबर कभी नहीं छोड़ा। दूसरों को मददरूप होने के उसके स्वभाव के कारण वह स्कूल के उसके दोस्तों को और शिक्षकों को—सभी को अतिप्रिय था ।

एक बार स्कूल में परीक्षा चल रही थी । गणित का पेपर था । चुनीलाल ने त्वरा से गणित के प्रश्न हल कर लिए और एक उत्तरपत्रिका पूरी की । चुनीलाल की बगल में ही उसका दोस्त बैठा था । उस बेचारे की पढ़ाई यथा-तथा ही थी, और तो और, गणित का पेपर । वह तो माथे को हाथ लगाकर बैठा ही रहा । उसने धीमी आवाज में चुनीलाल को गिड़गिड़ाकर बिनति की, 'चुनिया, तेरी उत्तरपत्रिका मुझे दे न । मैं झट से उतारकर तुझे तुरंत ही लौटा दूँगा ।

चुनीलाल के मन में उलझन खड़ी हुई । उसका एक मन उसे मना कर रहा था, और बता रहा था कि, 'ऐसा करना ग़लत है,' और उसी समय उसका दूसरा मन कह रहा था, 'तू खुद थोड़े ही दे रहा है ? वह बेचारा माँग रहा है, इसलिए देने में कोई हर्ज नहीं ।' आखिर मित्रप्रेम के वश होकर उसने उत्तरपत्रिका अपने दोस्त को दे दी ।

घटनेवाला यह प्रकार सजग सुपरवाइज़र ने दूर से ही देखा और तुरंत ही वे उनके पास आये और कड़ी आवाज में चुनीलाल से पूछने लगे, 'चुनीलाल, तेरी उत्तरपत्रिका किधर है ? दिखा मुझे ।'

वह बेचारा क्या उत्तर देता ? डरे हुए खरगोश की तरह वह थरथर काँपता हुआ बैठा ही रहा ।

उसके चुप बैठने से सुपरवाइज़र को और ही गुस्सा आया । उसे कोसते हुए उन्होंने पूछा, 'बोल, तेरी उत्तरपत्रिका तूने अपने इस दोस्त को दी या नहीं ? इतना होशियार लड़का होते हुए भी तू ऐसा घटिया काम करता है ?'

अपनी ग़लती स्वीकारकर अपराधभाव से चुनीलाल बोलने लगा, 'सर ! मेरी ग़लती हो गयी । लेकिन उसने माँगी इसीलिए मैंने उसे दी, मैंने खुद उसे नहीं दी है ।'

उसका यह उत्तर सुनकर सुपरवाइज़र का गुस्सा मानो आसमान में ही गया । – 'गधा कहीं का, बेशरम, ग़लती करता है और उसका समर्थन भी करता है ? चल मेरे साथ हेडमास्टर के पास । तुझे डिसमिस ही कराता हूँ ।'

चुनीलाल को लेकर सुपरवाइज़र हेडमास्टर के ऑफिस में गये और सारा किस्सा उन्हें कथन किया ।

चुनीलाल की ओर दुःख से देखते हुए वे बोले, 'चुनीलाल, तेरे जैसे होशियार और अच्छा बर्ताव रखनेवाले विद्यार्थी से मुझे यह उम्मीद नहीं थी । क्यों किया तूने यह सब ?'

अब तक चुनीलाल की आँखों के सामने तारे नजर आने लगे थे, वह तो एकदम ढीला हो गया । अगर स्कूल से निकाला गया और पढ़ाई बंद हो गयी तो फिर आगे क्या ?... सारा मामला चौपट हो जाएगा ।

उसने हेडमास्टर के पाँव पकड़ लिये और रोते-रोते और गिड़गिड़ाकर कहने लगा, 'सर, मेरी यह पहली और आखिरी ग़लती आप माफ़ कर दें। मैं अपनी ग़लती कबूल करता हूँ । अब मैं फिर से ऐसा कभी नहीं करूँगा ।

हेडमास्टर को उस पर दया आयी । उन्हें भी कहाँ चुनीलाल को स्कूल से निकालने की इच्छा थी ? स्वावलंबन से और

स्वमेहनत से पढ़नेवाले ऐसे होशियार लड़के का भावि नष्ट करने की उनकी इच्छा नहीं थी । कड़ी आवाज में धमकाकर और समझ देकर उन्होंने चुनीलाल को माफ़ किया ।

'फिर कभी ऐसी झंझट में नहीं पड़ूँगा' ऐसी मन में ही कसम खाकर वह कमरे के बाहर आया और अपनी क्लास में जाकर उसने गणित के प्रश्न हल करना शुरू किया ।

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

९. असहायता

वर्षाऋतु आ गयी । ज़ोरों से बारिश होने से खेत पानी से भर गये । चावल की फ़सल करनेवाले किसानों के खेतों में काम शुरू हो रहे थे । धान-बुवाई के लिए मज़दूर जाने लगे । पानी से भरे हुए खेतों में झुककर खड़े रहकर दिनभर पौध (पनीरी-चावल के छोटे पौधे) लगाने पड़ते थे, इसलिए इस काम के लिए खेतमालिक उन्हें ज्यादा मज़दूरी दिया करते थे । ज्यादा मेहनताना प्राप्त होने के कारण इसलिए इस काम के प्रति मज़दूरों का खिंचाव ज्यादा रहता था ।

चुनीलाल भी पौध-बुवाई का काम करने जाया करता था । आज भी वह उसी काम के लिए घर से निकल पड़ा । कीचड़भरे रास्ते तुड़वाते-तुड़वाते वह खेत तक पहुँच गया और उसके मालिक से जा मिला । उसने उनके सामने अपने काम की माँग रखी । वे बोले, 'देख, मैं तुझे काम दे सकता हूँ, लेकिन याद रखना कि तुझे सभी के साथ-साथ रहना पड़ेगा । तू छोटा है, इसलिए पीछे रह न पाए इसका तुझे ही ख़याल रखना पड़ेगा । अगर तुझसे यह बन सकता हो, तो ही काम पर रख लूँगा । सोच ले ।'

हँसकर चुनीलाल ने बताया, 'साहब, आप मुझे काम पर रख

लो और अगर मैं काम कर न पाया तो मज़दूरी ही नहीं देना, फिर तो आपको कोई आपत्ति नहीं है न ?'

फिर चुनीलाल को भी काम दिया गया । जैसे कह बताया गया वैसे ही उसने सभी के साथ कुशलतापूर्वक पौध बुवाई की। वह न कहीं अटका, न कहीं थम गया । वर्षा की बरसनेवाली जलधाराओं में भीगते हुए भी उसने बिना हिचकिचाये काम जारी रखा और पूरा कर के दिखाया । बारिश में पानी में काम कर-कर के शाम तक उसके पाँव भारी हो गये और कमर झुक-झुककर टूट गयी, फिर भी उसने वह सब सह लिया । मिला हुआ काम निष्ठापूर्वक, प्रामाणिकता से और जी-जान से करने का उसका स्वभाव-विशेष बचपन से ही दिखायी देता था ।

शाम को काम पूरा हो गया और सभी को खेतमालिक ने मेहनताना दिया । चुनीलाल को भी दिया गया, लेकिन आधा, क्योंकि वह छोटा लड़का था ।

फिर से चुनीलाल के मन में सवाल खड़ा हुआ, 'ऐसा क्यों ? काम पूरा करने पर भी मेहनताना आधा ही क्यों ?'

उसके सहकारी मज़दूरों ने उसे बताया, 'बेटा, यह पूर्वापार चलता आया है, उसे हम क्या करें ? हम तो गरीबी की कैंची में फँसे हुए हैं । हम न कुछ कह सकते हैं, न कुछ माँग सकते हैं । जो दिया जाता है, वही लेना पड़ता है । हमें तो सिर्फ़ सहन करना है । धीरे-धीरे सब आदी हो जाते हैं, तू भी हो जाएगा ।'

गरीबी की असहायता, दीनता, कारूण्य, दुःख यह सब उसके शब्दों में व्यक्त हो रहे थे ।

गरीबी का यह शाप आशारामजी के कुटुंब को भी पूर्णरूप से प्राप्त हुआ था ।

✤ ✤ ✤

॥ हरि:ॐ ॥

१०. मानी कुटुंब

चुनीलाल पढ़ाई में तेज था, इसलिए उसके बहुत सारे दोस्त थे । 'कालोल' में 'लाड़ बनिये' जाति के लोगों की बस्ती काफ़ी बड़ी थी और वे संपन्न स्थिति के होने के कारण उनके लड़के प्रायः 'एँग्लो वर्नाक्युलर स्कूल' में ही पढ़ने जाया करते थे ।

उनकी बाड़ी में साल में दो-दो महीने किसी-न-किसी निमित्त से भोजन की पंक्तियाँ चलती रहतीं । वहाँ कौन-कौन से मिष्टान्न खाये इसके बार में चुनीलाल के वणिक दोस्त उसे स्कूल में सदैव बताया करते थे । वह सुनकर उसके मुँह में भी पानी आ जाता था ।

एक बार उसने अपने मित्र से कहा, 'धत् तेरी, तुम लोग रोज़ कुछ-न-कुछ मिष्टान्न खाते हो, लेकिन अपने दोस्त को भी कुछ देना चाहिए ऐसा तुम्हें कभी नहीं सूझा ।'

सुनकर मित्र शर्माया । बात में सार था । चुनीलाल को आश्वासन देकर उसने कहा, 'तेरी बात सच है, लेकिन तू बुरा न मानना । तू आज रात हमारी बाड़ी के पास आ जा । आज भोजन में लड्डू परोसे जानेवाले हैं । परोसनेवालों में मैं भी हूँ । मैं तुझे भी दूँगा ।'-इस तरह सब योजना तय हुई ।

शाम ढलते ही चुनीलाल वणिक की बाड़ी के पास गया । उसके मित्र ने उसे देखा और पास आकर एक अंधेरी जगह में खड़ा रहने की सूचना कर के वह चला गया । थोड़ी ही देर में उसने बड़ी थाली भर के लड्डू लाकर चुनिया को चुपके से दे दिये ।

इतने सारे लड्डू देखकर चुनीलाल को लगा, 'कितने लड्डू हैं। एक मैं यहीं खा लूँ ।... लेकिन अपने माता-पिता का और भाइयों

का स्मरण होते ही उसे अपने स्वार्थी विचारों पर शर्म आयी । फिर वह लड्डू खा न सका ।

पाये हुए लड्डूओं की थाली लेकर वह उत्साहपूर्वक घर आ गया । इतने-सारे लड्डू देखकर आँखें बड़ी कर के माँने उसे धमकाकर पूछा, 'अरे चुनिया, कहाँ से लाया ये लड्डू ? किस ने दिये ?'

जो-जो घटा था और जैसे-जैसे घटा था, वह सब उसने माँ को सरलता से बता दिया । सुनते ही माँ क्रोध से थरथर काँपने लगी और उसे कोसते हुए चिल्लाकर कहने लगी, 'अरे मूर्ख ! तुझे इतनी भी अक्ल नहीं है क्या, कि ये चुराये हुए लड्डू हम नहीं खा सकते ? ये भीख माँगने के लक्षण तू अब छोड़ और कुछ सयाना बन । ये कैसी बुद्धि हुई तुझे ? फिर से ऐसा कुछ ले आया, तो घर से बाहर ही निकाल दूँगी ।... माँ के निष्ठुर और कटु वाक्‌बाण चलते रहे और चुनीलाल को घायल करते रहे । उन शब्दों से उसके अंदर रहा हुआ मिष्ठान्न का लालच मर गया और उसकी विवेक-बुद्धि जागृत हो गयी । अपने किये का उसे बेहद पछतावा हुआ, फिर भी जो घटने का था, वह तो घट ही चुका था । तीर कमान से बाहर निकल चुका था, उसे फिर से कमान में कैसे रखे ?

लड्डू की थाली वैसी ही अस्पर्शित पड़ी रही । उस मानी कुटुंब के किसीको भी उसमें से एक कण भी चखने की इच्छा नहीं हुई । चुनीलाल के इस अविवेकी कृत्य से उस दिन शाम को खाना खाने की इच्छा भी किसीको नहीं हुई । सारे घर में उदासी छा गयी थी ।

दूसरे दिन सुबह रोज़ की तरह झाडूवाला आकर रास्ता साफ़ करने लगा । उसे देखकर माँ ने चुनीलाल को कहा 'चुनिया, जा,

कल के वे लड्डू दे दे इसे ।'... उसने त्वरित आज्ञापालन किया और उस झाडूवाले को सारे लड्डू दे दिये ।

सुबह-सुबह यह दान प्राप्त होते ही उस गरीब का चेहरा चमक उठा । मानो आज दिवाली का ही दिन हो, ऐसा उसे मन ही मन लगा और अपना काम त्वरा-से पूर्ण करते लड्डू लेकर वह आनंदपूर्वक घर चला गया ।

कड़ी गरीबी में भी सुसंकारों का और सद्‌गुणों का ही अवलंबन करने की शिक्षा देनेवाले माता-पिता प्राप्त होना यह चुनीलाल का सद्भाग्य था ।

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

११. साधु की भविष्यवाणी

कालोल में आशारामजी का कुटुंब आकर रहने लगा और थोड़े ही दिनों में वहाँ स्थिर हो गया ।

एक दिन सूरजबा बरामदे में बैठकर काम कर रही थी । इतने में एक साधु आकर द्वार में खड़ा रहा । उस साधु ने भगवे वस्त्र पहने हुए थे और उसकी दाढी-मूँछों के बीच दिखायी देनेवाली आँखों से और पूरे शरीर से मानो शांति प्रवाहित हो रही थी । प्रभावशाली और आकर्षक ऐसा उसका व्यक्तित्व था ।

'माई, साधु को खाना खिलाना' सूरजबा की ओर स्थिर दृष्टि से देखते हुए साधुमहाराज ने कहा ।

'महाराज, हमें ही दो समय का भोजन बड़ी मुश्किल से प्राप्त होता है, तो तुम्हें कहाँ से दूँ ? तुम कहीं और आओ, यहाँ तुम्हारा कुछ नहीं चलेगा ।'-सूरजबा ने उन्हें फटकारा ।

चुनीलाल उनकी बातचीत सुनते हुए वहाँ ही खड़ा था । उसकी ओर अंगुलिनिर्देश कर के साधु फिर से कहने लगा, 'माई, तेरे बेटे को तू ऐसा-वैसा मत समझना । वह बड़ा धर्मात्मा बननेवाला है । उसका ख़्याल रखना ।'-साधु चुनीलाल की ओर प्रेमभरी द्दष्टि से देख रहा था । उसकी स्थिर द्दष्टि मानो अज्ञात की खोज करने चुनीलाल को भेदकर भविष्य में जा रही थी ।

'अपने बेटे की स्तुति कर के भोजन पाने का इस साधु का इरादा है' ऐसा ही सूरजबा को लगा ।

साधु ने फिर से सूरजबा को मीठे स्वर में पूछा, 'माई, खाना खिलाओगी न ?'

सूरजबा अब चिढ़कर बोल उठी, 'बाबा, हमारे पास हैं सिर्फ़ सूखी रोटी । हम पर मेहरबानी करो और कहीं और जाओ । वहाँ आपको ढेर सारा मिल जाएगा ।'

'ठीक है माँ, जैसी ईश्वर की इच्छा ।'-निर्लेपता से ये शब्द उच्चारकर साधु पीछे मुड़ गया और जाने लगा ।

अचानक सूरजबा को लगा, 'अतिथि के रूप में कब कौन आएगा यह क्या कहा जा सकता है ? इसे ऐसे ही जाने देना ठीक नहीं है । घर में जो है, वही दे दूँगी इसे ।' सूरजबा का मन पलट गया और जानेवाले साधुमहाराज को अटकाते हुए वे बोलीं, 'महाराज, ठहरो । आओ घर में ।'

पहले जैसे ही-उसी निर्लेपता से साधु पीछे मुड़ा और बरामदे में प्रवेश कर के सूरजबा ने बिछाये हुए आसन पर जाकर बैठ गया।

अंदर जाकर सूरजबा ने कुछ समय पहले बनायी हुई रोटियों में से तीन-चार एक थाली में रखीं, उनपर थोड़ा-सा घी डाला और थोड़ा गुड़ रखा । फिर एक लोटा अच्छी तरह धोकर उसमें

पानी भरा और वह लोटा और थाली लाकर साधु के सामने वह सब रखा ।

आचमन कर के चित्राहुति देकर साधु भोजन करने बैठा । धीरे-धीरे शांतिपूर्वक उसने सब खा लिया और तृप्त होकर डकार दी । बाद में थाली में हाथ धोकर वह जाने के लिए खड़ा हो गया ।

सूरजबा की आँखों में प्रेम से देखते हुए वह बोला, 'माई । लड्डू, पेड़े, जलेबी आदि खाने से भी, तेरी घी-गुड़-रोटी से मेरी अंतरात्मा तृप्त हुई । एक ध्यान में रखना-'हमें क्या दिया गया है यह हम देखते नहीं है, बल्कि किस ने और कौनसी भावना से दिया है । यह हम देखते हैं । मेरा भोजन यह तो निमित्त था । माई, आना हुआ तो सिर्फ़ तेरे बेटे के लिए ही । विश्वास रखना, तेरा बेटा धूल में छिपा हुआ एक माणिक है । समय आने पर उसका तेज सर्वत्र फैले बिना नहीं रहेगा । ईश्वर तुम्हारा कल्याण करें ।'

अपना हाथ चुनिये के सिर पर रखकर उसे भी आशीर्वाद देकर वह साधु मंथर गति से चला गया ।

समय बहता जा रहा था ।

अपने पिता का भजनानंदी स्वभाव चुनीलाल में भी उतर गया था । खाली समय प्राप्त होते ही वह गोमा नदी के किनारे पर महादेव के मंदिर में जा बैठता । वहाँ एकांत उसे अति प्रिय था । उस शांत और धीरगंभीर वातावरण में भजन गाते-गाते वह किसी निराले विश्व में प्रवेश कर जाता, लीन हो जाता, समय का भी होश भूल जाता ।

एक बार ऐसा ही हुआ । सांझ ढल गयी और अंधेरा हो गया, तो भी चुनिया का पता नहीं था । सूरजबा को चिंता होने लगी ।-'दिये जलाने का समय हो गया, तो भी इस लड़के का पता नहीं ।

चिंता से मैं मरी जा रही हूँ । कहाँ गया होगा क्या मालूम ?... उसने आसपास पूछताछ की ।

एक आदमी बोल उठा, 'चुनिया न ? वह तो होगा वहाँ शंकरजी के मंदिर में । बैठा होगा भजन गाते-गाते । ठीक ही है- शंकर भगवान का ही 'गण' है न वह । बैठा होगा उन्हीं के पैरों के पास ।

व्याकुल होकर सूरजबा ने उसे बिनति की, 'भैया, आप ही जाना और उसे ले आना । मुझे बहुत चिंता हो रही है । अंधेरे में किसी साँप-बिच्छू ने काट लिया तो मैं क्या करूंगी ? आप जाओ और उसे घर ले आओ ।' राजी होकर वह व्यक्ति चला गया और चुनिया को मंदिर से ढूँढ़कर घर ले आया ।

क्रोधित होकर सूरजबा ने उसे पूछा, 'चुनिया, इतना क्या है वहाँ कि बार-बार वहाँ जाकर भजन गाता रहता है ? कुछ तो ख़्याल कर समय का और अपनेआप का ।'

चुनिया कुछ बोला नहीं । चिड़ीचुप । पूर्ण मौन ।

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

१२. दंडुकेशाही

समय की धारा बहती रही और आशारामजी को और दो संततियों का लाभ हुआ । जमनादास और चुनीलाल को साथ देने मूळजीभाई और सोमाभाई इन दो जीवों ने शरीर धारण किया । इस बढ़े हुए कुटुंब की बैलगाड़ी खींचते-खींचते आशारामजी के प्राण कंठ तक आने लगे । अपने मानसिक चिंता-तनावों से मुक्ति पाने के लिए उन्होंने पहले से ही दो व्यसन अपना लिये थे : अफ़ीम खाने का और हुक्का पीने का ।

धीरे-धीरे हुक्का पीने का व्यसन बढ़ता गया और रात में भी वे हुक्के के अधीन रहने लगे । उनके छोटे से घर के बरामदे में अंगारे सदा जलते रहते और रात में तलब आते ही वे उठकर अंगारे लेकर हुक्का बनाकर पीते रहते । रात में गश्त रखनेवाली पुलिस भी उनके यहाँ कुछ समय बिताती और ताज़गी प्राप्त होते ही फिर से काम पर चली जाती । इस तरह आशारामजी की और पुलिस की काफ़ी नज़दीकी हो गयी थी ।

एक रात इसी तरह उनके बरामदे में दो पुलिसवाले आए। रोज़ की तरह वे हुक्का पीने लगे, चुसकी लगाने लगे । बातचीत भी शुरू हुई । इतने में एक पुलिसवाले का ध्यान गया कि घर के बाहर चबूतरे पर कोई सो रहा है। उसने अपने पुलिसी ढंग में ऊँची और कड़ी आवाज में पूछा, 'ए भगत । यहाँ कौन सोया है ?'

'मेहमान हैं ।'

'तो फिर इसकी पुलिस-चौकी पर खबर क्यों नहीं की ?' उसने उद्दंडता से सवाल किया ।

'कोली-वाघरी हो तो, उन्हें यह खबर करने की जरूरत है, हमें नहीं ।'-आशारामजी ने निर्भयता से स्पष्ट जवाब दिया।

अपने जैसी पुलिस को यह साधारण रंगरेज़ धृष्टता से बेरोकटोक जवाब दे रहा है, यह उस पुलिसवाले से सहा नहीं गया । एक क्षण में उसका गुस्सा आसमान में गया और उसने आशारामजी के मुँह पर एक जोरदार तमाचा मारा । इतने से ही उसका समाधान नहीं हुआ। 'इसे अब ठीक से पुलिसी हवा बतानी चाहिए और उसकी हड्डी नरम करनी चाहिए' ऐसा उसके मन को लगा और गालियाँ बरसाते हुए और जानवर की तरह पीटते हुए वह उन्हें पुलिस-चौकी पर ले गया और आशारामजी को सलाखों के पीछे बंद कर दिया।

उस पुलिस के इस ज़ुल्मी बर्ताव से, शोरगुल से, गालियों से और मारपीट से घर के लोग ही क्या, आसपास के कई घर के लोग जग गये थे और डरकर यह सब अधखुले दरवाजों के पीछे से देख रहे थे। चुनीलाल भी बिस्तर में जगकर यह घटना देख रहा था। यह सब देखकर-सुनकर उसके बालमन पर बहुत आघात हुआ, उसका कलेजा फट गया, लेकिन यह सब रोकने की उसके छोटे-छोटे हाथों में ताक़त नहीं थी।

'अपने ही घर में आकर जो पुलिस हुक्का पीकर, ताज़ी होकर जाती थी, वही आज एक मामूली कारण से राई का पहाड़ बनाकर, पिताजी को पीटते हुए ले गयी ? और अकारण गालियाँ भी बरसायीं-किसलिए ? ऐसा कौनसा गुनाह किया था ? उनका निर्भीकता से जवाब देना क्या यह गुनाह है ?' उसका ख़ून गरम हो गया। 'नहीं। मुझे पिताजी को छुड़ाकर घर ले आना ही चाहिए।' उसके अशांत मन ने दृढ़ निश्चय किया।

'लेकिन जाए किसके पास ? किसे बताऊँ मैं ? कौन सुनेगा मेरी तकरार ?' उसके मन में प्रश्न खड़ा हुआ। सोचते-सोचते उसे अचानक याद आ गये मनुभाई रावसाहब।

'कालोल गाँव में रावसाहब का बड़ा मान था। सरकार-दरबार में उनका वजन था, उनके शब्द की कीमत थी। अड़े हुए को, मुश्किल में फँसे हुए को मदद करने का उनका स्वभाव था। वे एक सद्शील, सज्जन और दयालु गृहस्थ थे। सूरजबा उनके घर समय-समय पर कामकाज करने जाया करती थीं, इसलिए रावसाहब आशारामजी के कुटुंब से अच्छी तरह से परिचित थे और उनके प्रति सहानुभूति और आस्था रखते थे।

'ऐसी विकट और कठिन परिस्थिति में अगर कोई मदद कर

सकता है, तो वे हैं सिर्फ़ रावसाहब।' चुनीलाल ने उन्हीं की सहायता लेने का निश्चय किया और दौड़ते-दौड़ते ही उनके घर पहुँच गया।

सद्भाग्य से रावसाहब घर में ही थे। रोते-रोते अपनी करुण कहानी चुनीलाल ने उन्हें कह सुनायी। पुलिस के इस अन्याय-ज़ुल्म से रावसाहब भी बहुत नाराज़ हुए, क्रोधित भी हुए। उन्होंने तुरंत नौकर से घोड़ागाड़ी बाहर निकालने को कहा और चुनीलाल को साथ में लेकर वे पुलिसचौकी पहुँच गये।

पुलिस-चौकी में थानेदार मौजूद नहीं था। चौकी की पुलिस प्रत्यक्ष रावसाहब को और वह भी इतनी रात में देखकर चकित हो गयी।

'उस बेचारे रंगरेज़ को छोड़ दो। उसने ऐसा कौनसा गुनाह किया है कि जिसके लिए तुम उसे यहाँ जानवर की तरह पीटते हुए और गालियाँ देते हुए ले आये ? उसने क्या चोरी की है या डकैती ? किसलिए उसे बंद कर रखा है ?'-क्रोध से लाल होकर रावसाहब ने सभी को खड़ा सवाल किया।

रावसाहब के इस रुद्रावतार से सभी ठंडे हो गये। उनके पास इन पश्नों के कोई उत्तर नहीं थे। अपनी ग़लती का अहसास हुआ तो भी आशारामजी को मुक्त करने को वह पुलिस तैयार नहीं हुई। उनका अहंकार शरणागति स्वीकारने को तैयार नहीं था।

फिर तो रावसाहब का रहा-सहा संयम भी टूट गया और क्रोध से थरथर काँपते हुए वे उस पुलिस को धमकाने लगे, 'अभी, इसी वक्त पुलिस अफ़सर को बुला लाओ। तुमने इस गरीब को जो बुरी तरह से पीटा है, उसके लिए मुझे पुलिस-केस करना है। मैं अब, इसी वक्त उस रंगरेज़ को सरकारी अस्पताल में ले जाता

हूँ और तुम्हारी की हुई मार-पीट के बारे में डॉक्टर से सर्टिफिकेट ले आता हूँ ।'

रावसाहब का यह तीर बराबर निशाने पर लगा । अगर पुलिस-केस हो जाता तो वह पुलिस ही दोषी ठहरायी जाती, क्योंकि निश्चित ही उसने जुल्म-जबरदस्ती और दंडुकेशाही की थी। सिर्फ़ इतना ही नहीं बल्कि इस पुलिस-केस के कारण सारे पुलिस खाते की बदनामी भी हो जाती ।

उस पुलिस के चेहरे पर पसीने की बूँदें जम गयीं । गिड़गिड़ाते हुए वह रावसाहब से कहने लगा, 'रावसाहब, मुझसे ग़लती हो गयी है । यह मैं स्वीकार करता हूँ । मैं आशारामजी को तुरंत छोड़ देता हूँ और उनसे और आप से भी माफ़ी माँगता हूँ । अब आप शांत हो जाइए । अब यह बात आप आगे मत बढ़ाइए । मैं आपको वचन देता हूँ कि इसके बाद कभी भी, किसी भी निमित्त से आशारामजी को हमारे कारण तक़लीफ़ नहीं पहुँचेगी । आप मुझ पर विश्वास रखिए ।'

रावसाहब ने वह स्वीकार किया और मामला वही ख़त्म हुआ । आशारामजी के मुक्त होने से ही उन्हें मतलब था । कोर्टकचहरी में फँस जाने की उनकी भी इच्छा नहीं थी ।

आखिर आशारामजी मुक्त होकर बाहर आ गये । पुलिस द्वारा की गयी मारपीट के कारण होनेवाली असह्य शारीरिक पीड़ा से वे कराह रहे थे और अकारण भोगे हुए मनस्ताप से उनका चेहरा मुरझा गया था । मानहानि का भारी बोझ कंधे पर उठाकर वे शरीर से और मन से थक गये थे ।

किसी मुर्दे की तरह उनकी यह निर्जीव अवस्था चुनिया से

देखी नहीं गयी । उसका कंठ भर आया और आँखों से आँसू झरझर बहने लगे ।

अपने थके हुए पिता को आधार देकर चुनिया उन्हें घर ले आया । उनके इस हालत में घर जाने का आनंद किसीको भी न था । बीती हुई घटना से सभी के हृदयों में मानों अमावस छा गयी थी और उसकी उदास कालिख से सारा घर भर गया था ।

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

१३. ज्वालामुखी का विस्फोट

अपने पिता पर गुजरे हुए इस करुण प्रसंग से चुनिया के कोमल हृदय पर गहरी चोट पहुँची । ज्वालामुखी का विस्फोट होकर तप्त लावा बाहर आए वैसी उसकी स्थिति हो गयी ।

वह सोचता रहा-'गरीबी वह क्या गुनाह है कि जिससे कोई भी आये और अपमान करे ? हाड़हूड़ करे ? अवहेलना, उपेक्षा करे ? माँ-बहन के नाम से गालियाँ बरसाये ? क्या इसका कुछ भी हल नहीं है ?'...अंदर ही अंदर वह जलता रहता था, दिल में एक तूफान लिये घूमता रहता था ।...बहुत सोच विचार के बाद उसके मन में निश्चित हो गया- 'मैं बहुत बड़ा आदमी बनूँगा । इतना बड़ा कि हर कोई मेरे सामने झुकेगा, मुझे मान देगा । तालुके के मामलतदार साहब के सामने सब लोग दबकर रहते हैं । गरीब हो या अमीर, सेठ हो या विद्वान-पंडित, छोटे-बड़े, स्त्री-पुरुष सभी उनका वचन झेलने को एक पैर पर खड़े रहते हैं, पालतू कुत्ता बन जाते हैं उनके सामने ।...बस, मैं मामलतदार ही बनूँगा । चुनिया ने दृढ़ निश्चय कर लिया और फिर उसका बालमन शांत हो गया ।

निर्णय तो क्षण में कर लिया, लेकिन उसे अमल में लाना

आसान नहीं था। ध्येयप्राप्ति के लिए जिस पथ पर से गुजरना था, वह बहुत लंबा था और जो जंगल से गुजर रहा था।... नहीं। वहाँ तो पथ भी नहीं था, वह थी मात्र एक छोटी सी पगडंडी, जिसमें सिर्फ़ काँटे ही काँटे थे। और दशदिशाओं में भी अंधकार ही था। घर में तो पेट की आग ठंडी करने के लिए सूखी रोटी मिलना भी कठिन था।...यह परिस्थिति स्वीकारकर, सहन कर के, उसमें से भी मार्ग निकालकर लक्ष्य को पाना था।

ध्येयप्राप्ति के लिए बहुत सीखना पड़ेगा, बहुत पढ़ना पड़ेगा इसकी उसे समझ आयी। मौज-मज़ाक, खेलकूद यह सब तो वह पहले ही भूल चुका था। 'जो है' और 'जैसा है' वैसा ही स्वीकार करने का उसका स्वभाव बन गया। गरीबी में सब चला लेना पड़ता है। इसकी उसे समझ थी, अनुभव था और उसे पर्याय भी नहीं था।

एकलव्य की निष्ठा से उसकी लगन थी, एकाग्रता थी।... खुद को पूर्णतः झोंक देने की मनस्विता थी, देह के कष्ट सहने की पूर्ण तैयारी थी। उसने समग्र शक्ति केंद्रित की, मामलतदार होने के अपने ध्येय की तरफ़।

उसके इस दृढ़ निश्चय को और मार्गक्रमण को देखकर नियति केवल मुस्करा रही थी।

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

१४. प्राणीप्रेम

कालोल में आशारामजी ने अपने घर में एक गाय पाल रखी थी। घर के छ आदमी मुश्किल से रह सकें, इतना उनका घर छोटा था। अर्थात् गाय को घर के अंदर बरामदे में रखना भी संभव नहीं था। इसलिए विवश होकर सूरजबा उसे रास्ते पर ही बाँध दिया करती थीं। फिर तो उसके गोबर-मूत्र से सारा रास्ता भर

जाता और मक्खियाँ भिन-भिन करने लगतीं। इससे स्वभावतः आनेजानेवाले लोगों को बड़ी तक़लीफ़ होती थी और वे किसी समय दो-चार शब्द भी सुना देते थे।

सूरजबा को तो घर के काम एक के पीछे एक लगे ही रहते थे। इसलिए उस गाय की संभाल रखना और साफ़सफ़ाई रखना वह कर नहीं पाती। इससे ऊबकर एक दिन सूरजबा ने सोच लिया, 'अगर गाय को बेच दूँ तो यह तक़लीफ़ दूर होगी और जो पैसे प्राप्त होंगे उनसे जीवन-यापन को थोड़ी-बहुत मदद भी होगी।'

उसने अपना निर्णय घर में ज़ाहिर किया। किसी ने उस पर प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की और न ही विरोध किया। लेकिन चुनिया को यह अच्छा नहीं लगा। उसने माँ से पूछा, 'माँ, तू उस गाय को बेचने का सोच रही है, लेकिन उसकी जगह पर अगर मैं होता, तो क्या तू मुझे बेच डालती ?'

उसका यह निरुत्तर करनेवाला प्रश्न सुनकर माँ ने झुँझलाकर उससे पूछा, 'चुनिया, ऐसा टेढ़ा बोलना तुझे अच्छी तरह से आता है। लेकिन उस गाय की वजह से मुझे कितनी तक़लीफ़ होती हैं, वह तू जानता नहीं है, क्या ? गाय को बेचने का मुझे कोई शौक नहीं है, लेकिन उसकी संभाल मुझसे होती नहीं है, फिर उसे बेचने के अलावा और कोई मार्ग भी है क्या ?'

यह सब शांति से सुनकर चुनिया ने फिर से पूछा, 'लेकिन माँ, अगर गाय की देखभाल की, खाने-पीने की, साफ़सफ़ाई की जवाबदारी मैंने उठायी, तो फिर गाय बेचने का सवाल बाकी रहेगा क्या ?'

'ठीक है, अगर तू यह सब कर सकता है तो मेरी कुछ 'ना' नहीं है, लेकिन जैसा कहा है वैसा कर के दिखा, नहीं तो मैं गाय बेच दूँगी।'-धमकाते हुए माँ ने उससे कहा।

'तू देखना, मैं कर के दिखाऊँगा ।' चुनिया ने आत्मविश्वासपूर्वक कहा ।

दूसरे दिन बहुत जल्दी उठकर चुनिया ने रास्ते पर पड़ा हुआ गोबर-मूत्र फावड़े से जमा कर के उसका रास्ते के बगल में ही ढेर किया । फिर सूखी मिट्टी ले आकर उसे साफ़ किये हुए रास्ते पर डाल दी । अब रास्ता एकदम साफ़सुथरा हो गया ।

गाय के लिए चारा ख़रीदकर ले आने की घर की परिस्थिति नहीं थी, इसलिए उसने एक बिना पैसे का इन्तज़ाम किया ।

कालोल यह व्यापार का गाँव था । रोज सुबह आसपास के छोटे-छोटे गाँवों के लोग बैलगाड़ियों में सामान भरकर ले आते और कालोल गाँव की सरहद पर बैलगाड़ियाँ खड़ी कर के, बैलों को छोड़कर उन्हें खाने को चारा डालकर, गाँव में अपना सामान-अनाज आदि ले जाते । वहाँ अनाज की ख़रीदी-बिक्री, कामधंधा, चायपानी इत्यादि पूर्ण कर के आराम से लौटते और बैलों को गाड़ियों से बाँधकर घर चले जाते । उनके जाने के बाद चुनिया वहाँ चला जाता और जमीन पर पड़ा हुआ चारा इकट्ठा कर के, उसका गट्ठर बनाकर, सिर पर रखकर घर ले आता और वही चारा गाय को खिला देता ।

गाय को पानी पिलाने को, घूमाने को भी चुनिया ही ले जाया करता था । कभी-कभी वह अपने कुनबी दोस्तों के खेतों में जाकर ताज़ी हरी घास काटकर ले आता था और उसे गाय के सामने डालता था ।

जैसा कहा वैसा कर दिखाने के बाद गाय के बारे में कोई शिकायत करने का मौका सूरजबा को कभी प्राप्त नहीं हुआ ।

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

१५. पितृप्रेम

आशारामजी हुक्का और अफ़ीम के व्यसनी थे । हुक्के की आदत उतनी ख़र्चीली नहीं थी, लेकिन अफ़ीम के लिए तो रोज़ चार-छ आनों की जरूरत पड़ती ही थी ।

शुरू-शुरू में जब तक कालोल में रंगकाम मिल रहा था, तब तक ठीक था । लेकिन धीरे-धीरे काम पाना दुष्कर होता गया और फिर पैसों की तंगी में वृद्धि ही हुई ।

आशारामजी जब उदास, हताश और निस्तेज चेहरे से बैठे रहते, तब चुनिया को तुरंत ख़्याल में आ जाता कि आज अपने पिता को अफ़ीम मिली नहीं है । उस समय वे ऐसे पड़े रहते कि मानो उनके शरीर की शक्ति किसी ने चूरा ली हो । अफ़ीम के बिना उनका जीवन अर्थहीन, नीरस बन जाता ।

उन्हें ऐसी लाचार स्थिति में देखकर चुनिया को बहुत दुःख हुआ करता था और इधर-उधर से किसी तरह पैसे प्राप्त कर के वह उन्हें अफ़ीम ला दिया करता था । केवल अफ़ीम से नशा चढ़ता नहीं है, साथ में कुछ खाने की मीठी चीजें भी आवश्यक होती हैं । यह भी वह जानता था और अपने दोस्तों की दुकान में जाकर वहाँ से मोतीचूर, जलेबी, हलवा, पेड़ा, बर्फी ऐसी कुछ-न-कुछ मिठाई भी ले आता था और अपने पिता को देता था ।

अपने पिता की दयनीय और दुःखी अवस्था चुनिया से देखी नहीं जाती । उसका अपने पिता पर बहुत प्रेम था और उनको आनंदित रखने के लिए वह सदा प्रयत्नशील रहता । रात में वह उनके पास में ही सोया करता था और उनको हुक्का पीने की तलब होते ही वह स्वयं उठकर हुक्का बनाकर उनको दिया करता था ।

अपने बेटे की ऐसी सेवा से उस दुःखी पिता को संतोष हो जाता था और हुक्का पीते-पीते और भजन गाते-गाते आशारामजी निद्राधीन हो जाते थे ।

समय बदलता गया वैसे-वैसे बाज़ार में देशी रंग की जगह धीरे-धीरे विलायती रंग ने ली । देशी रंग को पूछनेवाला शहर में कोई नहीं रहा, तब अर्थार्जन के प्रयोजन से आशारामजी ने कालोल के पास ही 'मलाव' गाँव में जाने का निर्णय ले लिया और उसके अनुसार वे अकेले ही वहाँ जाकर रहने लगे ।

चुनिया की पढ़ाई कालोल में अपनी गति से चल रही थी। दिन बीतते गये ।

एक दिन चुनिया को अपने पिता की बहुत याद आने लगी। एक बार जाकर उन्हें जीभर के देख लूँ ऐसा खिंचाव उसके मन में होने लगा ।

उसने माँ से पूछा, 'बा, मैं मलाव जाऊँ ? बाबा बिना रहा नहीं जाता, एक बार उनसे मिल आऊँ ? बहुत याद आ रही है ।'... पिता की याद से द्रवित होकर उसका हृदय भर आया ।

अपने बेटे की ऐसी दयनीय स्थिति देखकर माँ ने उसे जाने की संमति दे दी ।-'जाना, लेकिन जल्दी लौट आना । अपनी पढ़ाई का ख़्याल कर के ज्यादा दिन नहीं रुकना । और हाँ, मैं देती हूँ वह नास्ता साथ ले जाना ।'

माँ ने जल्दी से मेथी के ढेबरे बनाये और कपड़े में बाँधकर वह पाथेय उसके हाथ में दिया ।

वह पोटली लेकर चुनिया चलने लगा । मलाव जाने को गाड़ी-घोड़े का सवाल ही नहीं उठता था, चलते ही जाना था । पिता से मिलने की आतुरता से वह तेज़ी से चलने लगा । थोड़े

समय में 'आलवा' गाँव आ गया । अबतक भूख से उसके पेट में चूहे दौड़ने लगे थे । गाँव की सरहद के पास एक झरना बह रहा था । उसके पास एक पेड़ के नीचे शांत जगह पर बैठकर उसने अपना पाथेय खोला । मेथी के ढेबरे निकालकर उसे खाने की शुरूआत वह करनेवाला ही था, इतने में अचानक झाड़ी से धूमकेतु की तरह चोर प्रगट हुए ।

चुनिया की इतनी-सी देह, फिर भी डर उसमें प्रवेश कर न सका । चोर अब क्या करते हैं । यह चुनिया शांति से देखने लगा।

उस छोटे-से लड़के को वे निर्दयी चोर धमकाकर पूछने लगे, 'ए लड़के, क्या-क्या है तेरे पास ? निकाल सब बाहर ।'

चुनिया ने निर्भिकता से जवाब दिया, 'अरे, मेरे पास तो कुछ भी नहीं है । बदनपर ये कपड़े हैं, कुर्ता है और पोटली में ये ढेबरे हैं । इनमें से जो चाहिए वह ले जाओ, लेकिन मुझे खाने दोगे या नहीं ।'

चोरों ने देखा कि यहाँ तो पहाड़ की खुदाई कर के चूहा ही निकला है । उसे कुछ भी मारपीट किये बिना, केवल ढेबरे उठाकर जैसे वे चोर आये थे, वैसे ही तेज़ी से भाग गये ।

अब खाली पेट ही मलाव तक चलते जाना चुनिया के नसीब में था, लेकिन उसके लिए वह कुछ नया थोड़े ही था ?

पिताजी से मिलकर मन शांत होने के बाद वह कालोल लौट आया और उत्साहपूर्वक अपनी पढ़ाई में लग गया ।

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

१६. लत से छुटकारा

आशारामजी स्वयं तो अफ़ीम के आदी थे ही, और तो और, अपने बेटे को भी उन्होंने इस लत का शिकार बनाया था । बेटे की पितृसेवा से खुश होकर वह पिता अपने उस लाड़ले बेटे को अफ़ीम की एक गोली रोज दिया करते थे । दोपहर की छुट्टी में भोजन के समय चुनिया उसे खा लेता । यह लत है, अफ़ीम नशीला पदार्थ है, उसकी उसे समझ नहीं थी, उतनी उसकी उम्र नहीं थी ।

एक बार पिता की दी हुई गोली कहीं खो गयी और अफ़ीम प्राप्त न होने से वह क्लास में सुस्त बैठा रहा । उसकी होशियारी और उत्साह मानो कहीं खो गये थे । शिक्षक की पढ़ाई पर उसका ध्यान नहीं रहा, वह अपनी एकाग्रता खो बैठा । आसान प्रश्न भी वह हल न कर सका ।

क्लास का सब से तेज़ लड़का आज ऐसा बर्ताव क्यों कर रहा है, यह शिक्षक समझ नहीं पाये और ग़लत उत्तर देने के कारण उन्होंने गुस्सा होकर चुनीलाल को सजा भी दी ।

आज अफ़ीम की गोली न खाने की वजह से ही यह सब घट रहा है, यह चुनिया जान पाया और स्कूल छूटते ही घर आने पर उसने अपने पिताजी को क्लास में जो-जो घटा वह सब बता दिया। आशारामजी हँसकर बोले, 'बेटा, एक प्रश्न हल नहीं हुआ तो उसका ऐसा अर्थ तो नहीं हो सकता कि 'गोली न लेने से ही वह हुआ ।'... यह तो केवल इत्तफ़ाक़ है । तू लेते रहना वह गोली ।'

पिताने बताया सही, फिर भी विचार करने पर उसके मन को लगा कि, 'निश्चित ही गोली न खाने से ही यह सब हुआ है ।...

और अगर मेरी होशियारी, मेरी शक्ति उस अफ़ीमपर ही निर्भर है, तो फिर मुझे वह लेनी नहीं चाहिए ।'

उस दिन के बाद अपनी ज़िंदगी में उसने भूलकर भी कभी अफ़ीम को नहीं छूआ ।

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

१७. सत्यप्रियता

चुनीलाल कालोल में पढ़ रहा था, लेकिन घर की विकट आर्थिक परिस्थिति उससे देखी नहीं गयी । पढ़ाई छोड़कर कहीं नौकरी कर के अपना भी हाथ बँटाने का दृढ़ निर्णय उसने दुःखी होकर ले लिया और वैसा घर में बता दिया । उसकी यह बात सुनकर माता-पिता को झटका तो लगा, लेकिन वे भी क्या कर सकते थे ? वे भी विवश थे । उसकी पढ़ाई बंद हो ऐसा वे भी चाहते नहीं थे, लेकिन आमदनी नहींवत् हो जाने से घरखर्चे का इन्तज़ाम करने को और ज़िंदा रहने के लिए पेट पालने को पैसों की सख़्त जरूरत थी । उन्होंने बड़े दुःख से दिल पर पत्थर रखकर चुनिया को नौकरी करने की संमति दी ।

आशारामजी रंगकाम करने 'गोधरा' जाया करते, तब एक सेठजी के पास भी रंगकाम करते थे । सेठजी का घर कालोल में आशारामजी के घर के पास ही था और उससे वे आशारामजी को अच्छी तरह पहचानते थे । 'शायद वे अपने बेटे को कोई काम दिलवायेंगे' ऐसा सोचकर आशाभरे मन से आशारामजी चुनिया को उनके पास ले गये ।

सेठजी के पास गये तो सही, लेकिन काम देने की उनकी इच्छा दिखायी नहीं दी । उन्होंने तो स्पष्ट शब्दों में इनकार ही किया ।

फिर भी ज़िद न छोड़कर आशारामजी ने गिड़गिड़ाकर बहुत विनती की और चुनीलाल ने भी व्याकुल स्वर में कहा, 'सेठजी, आप मुझे कोई सा भी काम दो, मैं वह अच्छी तरह से कर के दिखलाऊँगा। आप कुछ दिन मेरा काम तो देखो, और फिर सोचो कि मुझे रखना है या नहीं ।' आखिर नाराज़गी से ही सेठजी ने उसे दुकान की साफ़सफ़ाई का काम सौंपा । दूसरे दिन ही चुनीलाल जल्दी दुकान में आ गया । दुकान के दरवाजे पर फूल, अक्षत् और कुंकुम आदि चढ़ाकर उसकी पूजा की । फिर भावपूर्वक नमस्कार कर के दुकान खोल दी । दुकान में झाड़ू लगाकर सब कचरा निकाल दिया और फिर गीले कपड़े से जमीन पोंछ डाली । सेठजी के बैठक की गद्दी की चद्दर और तकिये की खोल भी वह रोज़ की रोज़ बगुले के पंख की भांति शुभ्र धोकर बिछा दिया करता था । सेठजी उसका काम देख रहे थे । उसके इस तरह प्रेमपूर्वक काम करने से वे बहुत खुश हुए और पाँच रुपये महीने की नौकरी उन्होंने पक्की कर दी । उन दिनों पाँच रुपये भी बहुत बड़ी रकम थी ।

धीरे-धीरे चुनीलाल की होशियारी, स्फूर्ति और उत्साह देखकर अनाज तौलने की जवाबदारी का काम सेठजी ने उसे सौंप दिया। उसे पास बुलाकर, सेठजी ने स्वयं तराज़ू हाथ में लेकर, किस तरह उसे पकड़ना; किस तरह तौलना और किस तरह काँटा मारकर मन के पीछे दो-ढाई सेर अनाज ज़्यादा लेना वह दिखा दिया ।

उन दिनों इस तरह काँटा मारकर ज़्यादा अनाज लेने का रिवाज ही था और गाँव-गाँव से लोग जो अनाज ले आते, उसका इसी प्रकार से सभी व्यापारी वज़न किया करते थे ।

चुनीया ने सब देख-सुन लिया, लेकिन काम करने लगा अपने हीं ढंग से । सही तरह से तौलकर ही वह किसानों से अनाज

लेने लगा । उसकी विवेकबुद्धि ने काँटा मारकर वज़न करने को साफ़ इनकार किया । इससे अनभिज्ञ सेठजी खुश थे कि 'अपने बताये हुए तरीके से ही लड़का काम कर रहा है ।'

कुछ दिन इसी तरह बीत गये । एक दिन इसी तरह चुनीलाल अनाज तौलकर उसका ढेर कर रहा था, लेकिन वह काम इतनी तेज़ी से कर रहा था कि एक किसान को यह शक हुआ कि लड़का कुछ गोलमाल कर रहा है । उसने शोरगुल मचाना शुरू किया । सेठजी दौड़कर उसके पास गये और पूछा, 'दादा, क्या हुआ ? क्यों चिल्ला रहे हो ? क्या बात है ?'

'सेठजी, तुम्हारा यह नौकर चालाकी कर रहा है । काँटा मारकर ज़्यादा अनाज ले रहा है ।'-उसने गुस्से से कहा ।

'नहीं दादा, इतना-सा लड़का ऐसा कर पाएगा क्या ? आपको अकारण ग़लतफ़हमी हो गयी है ।'-सेठजी ने उसे समझाने का प्रयास किया । लेकिन इसका उलटा ही परिणाम हुआ । 'कोई चालाकी जरूर हो रही है' उसका शक और भी दृढ़ हुआ और पहले से भी ऊँची आवाज़ में बोलने लगा ।

'लोग इकट्ठे हो गये, कोई तमाशा खड़ा न हो' यह सोचकर सेठजी ने कहा, 'ठीक है दादा, हम फिर से सब अनाज तौलेंगे, तुम्हारे सामने ही । फिर तो कोई आपत्ति नहीं है न ?'

तौलना फिर से दोहराया गया । वज़न में थाड़ा-सा भी फर्क नहीं हुआ । अनाज ठीक-ठीक तौला गया था । यह देखकर किसान शर्माया और चुपचाप अनाज के पैसे लेकर चला गया ।

इस तरह सेठजी की आबरू तो बच गयी, लेकिन लड़का अपने बताने के अनुसार तौल नहीं रहा है, यह सेठजी की समझ में आया ।

उन्होंने चुनीलाल से पूछा, 'क्यों रे, तुझे बताया-दिखाया वैसे क्यों तोलता नहीं है ?'

'सेठजी, वज़न से ज्यादा अनाज क्यों लेना ?'-उसने प्रतिप्रश्न किया ।

उसकी धृष्टता पर क्रोधित होकर सेठजी बोले, 'इतना-सा लड़का और मुझे सिखा रहा है ? बड़ा सयाना बन रहा है । अगर तेरे जैसा हरिश्चंद्र का अवतार बन जाऊँ, तो मेरा दिवाला ही निकलेगा । अब तो अक्ल से काम ले और उसके आगे जैसे मैंने बताया वैसे ही तौल, समझा न ?'

चुनीलाल ने शांति से जवाब दिया, 'सेठजी, मुझ से ग़लत काम कभी नहीं होगा, लाखों बार बताने पर भी नहीं होगा ।'

उसके इस उत्तर से आग में मानो घी पड़ गया । सेठजी आगबबूला होकर चिल्लाये, 'देख, तुझे आखरी मौका देता हूँ । मेरा कहना मान, नहीं तो तुझे नौकरी से निकाल दूँगा ।'

'सेठजी, यह कभी नहीं हो सकता । आपको काम पर रखना हो तो रखो, या निकाल दो, आपकी मर्ज़ी ।'-उसका निश्चय चट्टान की तरह दृढ़ ही था ।

चुनीलाल के लिए सेठजी की दुकान का दरवाजा सदा के लिए बंद हो गया ।

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

१८. आगे की पढ़ाई के लिए पेटलाद

कालोल के 'एँग्लो वर्नाक्युलर स्कूल' में घनश्यामराय नटवरराय मेहता नाम के एक शिक्षक थे । श्रीमोटा का उनके यहाँ आना-जाना रहता था । उनके छोटे-मोटे काम श्रीमोटा आनंद से

किया करते थे । इसलिए उनके मन में श्रीमोटा के प्रति आत्मीयता थी, प्रेम था ।

श्रीमोटा जैसा होशियार और होनहार लड़का पढ़ाई करने के बजाय एक व्यापारी की दुकान में काम कर रहा है, यह उन्हें ठीक नहीं लगा । श्रीमोटा के घर की आर्थिक स्थिति उनसे छिपी नहीं थी, फिर भी, 'कुछ हल निकलना चाहिए और चुनीलाल की पढ़ाई जारी रहनी चाहिए' ऐसी उनकी हृदयस्थ और प्रामाणिक भावना थी ।

घनश्यामराय को घर के लोग 'घनुभाई' इस नाम से पुकारते थे । घनुभाई की मौसी प्रभाबा पेटलाद में रहती थीं । प्रभाबा स्वभाव से बहुत दयालु थी और किसी अड़े हुए को या गरीब को जितना संभव हो उतनी आर्थिक या अन्य मदद वह किया करती थीं । चुनीलाल के बारे में मौसी से पूछकर देखें यह सोचकर घनुभाई पेटलाद गये । उन्होंने मौसी को विस्तारपूर्वक बताया-'मौसी, चुनीलाल जैसा होशियार और मेहनती लड़के को अगर किसी का आधार प्राप्त हुआ तो वह अपनी पढ़ाई पूरी कर सकेगा । अगर तुझे मंजूर हो तो मैं उसे यहाँ ले आऊँ । उसकी लगन, मेहनत, सत्यनिष्ठा और प्रामाणिकता के बारे में तू बेफिक्र रहना । बैठे रहने की उसकी आदत नहीं है और वह किसी पर भाररूप नहीं बनेगा, बल्कि मददरूप होकर सभी के मन जीत लेगा, यह मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ ।'

थोड़ा-सा सोचने के बाद प्रभाबा इसके लिए राज़ी हो गयीं । बाद में घनुभाई चुनीलाल के मातापिता से मिले और उनकी संमति प्राप्त की । अंत में 'चुनीलाल आगे की पढ़ाई के लिए पेटलाद जायेगा' यह सुनिश्चित हुआ ।

यह सब सुनकर श्रीमोटा को तो जैसे मानो आसमान हाथ में आ गया । क्योंकि पढ़ाई का और उदरनिर्वाह का इन्तज़ाम होकर अपने माता-पिता के माथे पर का बोझ भी कम हो रहा था, एक ही पत्थर से दो पंछी मर रहे थे !

उनके माता-पिता को अपने सुपुत्र से माया तोड़ना बहुत दुष्कर लगा । अपना 'चुनिया' दूर जानेवाला है, इस विचार से ही उनका दिल जल रहा था, प्राण व्याकुल हो रहे थे । लेकिन लोगों ने उन्हें समझाया, 'तुम सिर्फ़ अपने बारे में ही मत सोचो । उसके भावि का भी ख़्याल करो । पढ़ने का ऐसा सुनहरा मौका फिर से हाथ आयेगा भी क्या, यह कौन बता सके ? जब वह पढ़-लिखकर बड़ा होगा, तब तुम्हें क्या वह भूलनेवाला है ? वह क्या तुम्हें छोड़कर दूर रहेगा ।' नियति ने दिया और हमने कर्म से गँवाया, ऐसा होने न दो । यह मौका प्रदान करनेवाले लीलामयी प्रभु को वंदन कर के अपने लाड़ले को घनुभाई के साथ पेटलाद भेज दो । हम घनुभाई और प्रभाबा को अच्छी तरह जानते हैं । वे अपने चुनिया को प्रेम से अपना लेंगे, बिलकुल पराया नहीं मानेंगे, इसके बारे में तुम निःशंक रहना ।

आखिर दिल पर पत्थर रखकर और आँखों से आँसुओं की धारा बहाते हुए सूरजबा और आशारामजी ने अपने चुनिया को विदाई दी । माता-पिता के चरणों पर मस्तक रखकर प्रणाम करते समय चुनिया भी अपने आपको सम्हाल न सका, उसकी भी आँखों से आँसू फूट पड़े । अपने माता-पिता की प्रेमपूर्ण छबि मन में अंकित कर के, भारी पाँव से और भरे हृदय से वह घनुभाई के साथ निकल पड़ा—पेटलाद की ओर ।

कालोल छूटा और अब पेटलाद । यहाँ सब कुछ नया था ।

गाँव, वहाँ के आदमी, वहाँ का वातावरण, अड़ोस-पड़ोस.. सब कुछ नया था । माता-पिता की याद में श्रीमोटा कभी-कभी विह्वल हो जाते, फिर भी धीरे-धीरे उन्होंने सब स्वीकार किया और वे स्थिर हो गये ।

अब प्रभाबा उनकी नयी माँ थीं । उनकी स्नेहछाया में, ममता की वर्षा में और प्रेमपाश में वे आश्वस्त हो गये, रम गये ।

थोड़े ही दिनों में पेटलाद के हाईस्कूल में श्रीमोटा को आगे की पढ़ाई के लिए प्रवेश मिल गया और एक नया अध्याय शुरू हुआ ।

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

१९. पितृवियोग

पेटलाद आने के बाद थोड़े ही दिनों में श्रीमोटा वहाँ स्थिर हो गये । 'खा-पीकर आलसी बनकर पड़े रहना' यह उनके स्वभाव में नहीं था । कोई-न-कोई काम खोजकर वे उसमें अपना हाथ बँटाते थे । बुज़ुर्गों को ही नहीं बल्कि नौकरों को और बावर्ची को भी वे मदद करते थे । बच्चों के साथ खेलते थे । उन्हें कथा-वार्ताएँ सुनाते थे और उन्हें पढ़ाई में भी मार्गदर्शन देते थे ।

प्रभाबा ने भी ऐसा कभी नहीं माना कि उन्हें किसी और का लड़का मैंने अपने यहाँ रख लिया है । वे तो उन्हें अपना ही बेटा मानती थीं और उनका खाना-पीना, कपड़े, पढ़ाई की जरूरतें-आदि सभी का वे पूर्णतः ख़्याल रखती थीं, इसलिए धीरे-धीरे श्रीमोटा उस कुटुंब का ही एक हिस्सा बन गये ।

'सोजित्रा' के ईश्वरभाई पटेल पेटलाद हाईस्कूल के हेडमास्टर थे । उनका एक आकर्षक व्यक्तित्व था । वे अपने स्कूल में

परख-परखकर ही विद्यार्थियों को प्रवेश देते थे । खास कर गरीब और स्वावलंबी विद्यार्थियों के प्रति उनके हृदय में एक खास स्थान था, विशेष हमदर्दी थी । ऐसे सहृदय हेडमास्टर के मार्गदर्शन से पढ़ने का मौका पाना यह श्रीमोटा का सद्‌भाग्य ही था ।

अपने उच्च पढ़ाई के लक्ष्य को नज़र में रखकर श्रीमोटा का अभ्यास चल रहा था । उनकी प्रगति से घर के और स्कूल के सभी को पूर्ण संतोष था ।

समय जाता रहा और अचानक शरीर से और मन से थके हुए आशारामजी ने इस धरातल से बिदाई ली । इस अनपेक्षित हादसे से श्रीमोटा मानो जड़ से उखड़ गये । उनके कोमल हृदय पर वज्राघात हुआ । अपने पिता का प्रेमछत्र खोने का आघात सहन करना उनके लिए बहुत कठिन था । अंतहीन रेगिस्तान में किसी नन्हें बच्चे को छोड़ दिया जाए, वैसी उनकी स्थिति हो गयी । नियति उनकी कठोर परीक्षा ले रही थी । लेकिन विधिलिखित टालना उनके हाथ में नहीं था । पागल-सी हो गयी हुई अपनी माँ के आँसू पोंछकर उन्होंने उसे धीरज दिया, सांत्वना दी और दुःख का सागर पीकर फिर से पढ़ाई की ओर ध्यान देना शुरू कर दिया ।

इस अकल्पित घटना से उनकी आत्मशक्ति टूटने के बजाय, राख से उत्पन्न होनेवाले 'फिनिक्स' पक्षी की तरह और भी दृढ़ हो गयी और समग्रता से केंद्रित हुई अपने ध्येय की तरफ । 'सभी बाधाओं की खाइयाँ और पहाड़ लाँघकर मैं प्राणपूर्वक अपना ध्येय प्राप्त कर के ही रहूँगा ।' ऐसी ज़िद उनमें प्रगट हुई ।

विचार करते-करते कभी-कभी वे अपने अंतर की गहराई में डूब जाते और सोचने लगते, 'सूरज सब को प्रकाश देता है, वृक्ष

छाया देते हैं, फल देते हैं, लता-बेल पुष्प देते हैं, पुष्प सुगंध देते हैं, नदी पानी देती है-सारा निसर्ग दे रहा है भर-भर के और आदमी ?... वह तो सिर्फ़ लेने का ही काम कर रहा है । देने का आनंद जैसे वह भूल ही गया है । तिजोरियों में सब कुछ बंद करना है सभी को । ऐसा क्यों ?... यह कलि का शाप है, विज्ञान का फल है, काल की महिमा है या मनुष्य का अधःपतन है ?'

'मैं लेने के लिए नहीं बल्कि देने के लिए जीऊँगा, प्रेमपूर्वक जीऊँगा, भावपूर्वक जीऊँगा,' यह उन्होंने मन में दृढ़ किया और जो काम सामने आये, वह जी-जान से, निरपेक्षता से और प्रामाणिकता से करना यह उनके स्वभाव का पहलू और ही तेज से 'लख्‌लख्' करने लगा ।

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

२०. सेवा का अनमोल मोल

पेटलाद में रंग के एक ब्यापारी थे । उनके घर में 'जानकीदास महाराज' नामक महात्मा आते रहते थे । सेठजी की महाराज पर दृढ़ श्रद्धा थी । जानकीदास महाराज को चर्चा करना, उपदेश देना, बातचीत करना, कथा-कीर्तन करना यह पसंद न था । उनका शास्त्रों का भी अध्ययन नहीं था, फिर भी वे एक सीधे-सरल और सच्चे संत थे ।

श्रीमोटा अपना स्कूल छूटने के बाद कई बार उनके दर्शन करने जाते थे । वहाँ जाने पर साफ़सफ़ाई करना, कचरा निकालना, कपड़े धोना आदि जो करना संभव हो, वह सेवा वे किया करते थे । महाराज उनसे प्रायः बातचीत भी नहीं करते थे और श्रीमोटा

भी उनसे कुछ न पूछते । मात्र, एक-दो बार महाराज ने उनसे, 'बेटा, तेरा नाम क्या ? क्या पढ़ रहा है ? कहाँ रहता है ?'-इतना थोड़ा-सा पूछ लिया था ।

एक बार जब श्रीमोटा महाराज के दर्शननिमित्त गये थे, तब उन्होंने श्रीमोटा को चेतावनी दी, 'बेटा, तेरे शरीर में एक भयंकर ऐसी बीमारी आनेवाली है । इसलिए तू समय से पहले ही सब पढ़ाई पूरी कर के रखना ।'

यह सुनकर श्रीमोटा कुछ बोले नहीं । 'प्राइवेट ट्युशन' लगाकर पढ़ना उनके बस में नहीं था और न ही उनकी इच्छा थी । इसलिए चेतावनी देने पर भी पढ़ाई समय से पहले पूरी करना असंभव-सा ही लग रहा था । 'जो होनेवाला होगा, वह होकर रहेगा,' ऐसा सोचकर शांत रहना ही उन्होंने स्वीकार किया ।

कुछ दिनों के बाद वे फिर से महाराज से मिलने गये, तब वहाँ बैठे हुए एक व्यक्ति को महाराज ने बताया, 'भाईसाहब, आप इस लड़के पर ध्यान रखना । उसके सब विषयों की पढ़ाई आप अच्छी तरह से करा देना । उसे बहुत दूर से आना पड़ता है । इसलिए नियमितरूप से और निश्चित समय पर आना उसे संभव नहीं है ।'

'ठीक है महाराज, जैसी आपकी आज्ञा ।'-उस व्यक्ति ने आदरपूर्वक कहा । यह व्यक्ति यानी सेठजी की तरफ से चलाये जानेवाली संस्कृत पाठशाला के प्राचार्य थे ।

श्रीमोटा ने दो महीनों में ही उनसे संस्कृत-खासकर उसका व्याकरण गहराई से सीख लिया । बाकी के विषयों का अभ्यास उन्होंने गाईड्स और प्रश्नोत्तरी की किताबों की सहायता से पूर्ण किया ।

कुछ दिनों बाद वे सहज ही अहमदाबाद में अपने बड़े भाई से मिलने गये । माँ भी वहाँ ही थी । जानकीदास महाराज की पूर्वसूचनानुसार वहाँ उन्हें सचमुच ही भयंकर बीमारी का सामना करना पड़ा । कई दिनों तक दवापानी शुरू था, फिर भी तबीअत सुधरने के बजाय बिगड़ती ही चली, सभी उपाय निष्फल रहे । आखिर एक घड़ी ऐसी आयी कि वे पूर्णतः बेहोश हो गये । सभी का दिल काँप गया । 'बेटे को मैं कहीं खो न बैठूँ' इस डर से, माँ के होशहवास उड़ गये, प्राण कंठ तक आ गये ।

इस बीमारी की अवधि में श्रीमोटा को सतत जानकीदास महाराज का स्मरण हो रहा था । उनका दर्शन ऐसी बेभान अवस्था में भी होता था । अंत में ईश्वरकृपा से और संत-महात्माओं के आशीर्वाद से बीमारी पिछले रास्ते से भाग गयी और वे घर लौटे । घर जाते समय डॉक्टरों ने सख़्त सूचना दी थी, 'इस लड़के को किसी भी प्रकार का शारीरिक या मानसिक तनाव भोगना न पड़े, इसका आप ख़्याल रखना । पढ़ने-लिखने का श्रम भी वह न करे । उसे भी वह सह न पाएगा ।'-बीमारी ने श्रीमोटा को बहुत दुर्बल बना दिया था, इसमें कोई शंका नहीं थी ।

बीमारी में इतने दिन व्यर्थ जाने से अब अपना स्कूल का यह साल हाथ से जाएगा ऐसा श्रीमोटा के मन में हुआ । क्योंकि मैट्रिक की पूर्वपरीक्षा तो कब की ले गयी थी, फिर भी वे हेडमास्टर से मिलने गये ।

हेडमास्टर श्री पटेलसाहब का श्रीमोटा पर बहुत प्रेम था । इतनी कठिन परिस्थिति में भी यह लड़का हिंमत रखकर स्वावलंबन से पढ़ रहा है और तिमाही, छहमाही परीक्षा में अच्छे गुण प्राप्त कर रहा है, इसका उन्हें गर्व था ।

उन्होंने श्रीमोटा को आश्वस्त किया, 'चुनीलाल, तू कुछ फ़िक्र न करना। तेरी गुणवत्ता मैं जानता हूँ, इसलिए मैंने तेरा फॉर्म पहले ही भेज दिया है। तू परीक्षा दे सकता है।' यह सुनने पर श्रीमोटा को तो अपने कानों पर विश्वास ही नहीं हुआ। उनके लिए यह चमत्कार ही था।

परीक्षा का समय करीब आया। 'परीक्षा के पहले अहमदाबाद जाकर सरयूदासजी महाराज' के दर्शन कर आना' यह जानकीदास महाराज ने की हुई सूचना उन्हें याद आयी और उसके अनुसार वे उनके दर्शन करने अहमदाबाद गये। महाराज ने उन्हें प्रसन्नतापूर्वक 'यशस्वी भव' ऐसा आशीर्वाद दिया।

परीक्षा के पेपर्स एक के बाद एक ख़त्म हुए। उनका शरीर निश्चित ही दुर्बल था, फिर भी मन दृढ़ था, अभ्यास की तैयारी थी और संतों के आशीर्वाद भी साथ थे।

रिज़ल्ट ज़ाहिर हुआ। गणित, संस्कृत और गुजराती में उन्हें डिस्टिंक्षन मिली थी और वे अच्छे गुण प्राप्त कर के उत्तीर्ण हो गये थे। सिर्फ़ उत्तीर्ण ही नहीं, वे स्कूल में अव्वल भी आये थे।

हेडमास्टर श्री पटेलसाहब के हाथों से प्रथम आने का पारितोषिक स्वीकार करते समय श्रीमोटा की आँखें आँसुओं से भर आयीं। उन्हें जानकीदास महाराज का तीव्रता से स्मरण हुआ, 'मैंने उनकी निरपेक्षता से और सच्चे दिल से भावपूर्वक जो सेवा की, उसी का फल उन्होंने इस तरह दिया है। सचमुच ही, अगर महाराज ने सुझाया न होता और पूर्वसूचन कर के पढ़ाई करवा ली न होती, तो उत्तीर्ण होनेवालों की सूची में मेरा नाम शायद नहीं होता। आज के सद्भाग्य के क्षण के पीछे है केवल महाराज के आशीर्वाद।'

अपनी आँखों के सामने दिखायी देनेवाली जानकीदास महाराज की प्रेमपूर्ण प्रतिमा को उन्होंने भावपूर्वक प्रणाम किया।

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

२१. शौक मिटा

वडोदरा और कच्छ संस्थान के माज़ी दीवान मणिभाई जशभाई- उनके घर में श्रीमोटा पेटलाद में रहते थे। कुटुंब बड़ा विशाल था। घर के काम अनंत थे और कुटुंब के हरएक व्यक्ति को कुछ-न कुछ काम सौंपा गया था। हरएक व्यक्ति अपना-अपना काम समझपूर्वक और अच्छी तरह से किया करता था।

घर के गहनों की संभाल रखने का महत्त्वपूर्ण काम श्रीमोटा को सौंपा गया था, बड़े विश्वास से सौंपा गया था। उन्होंने उन गहनों की एक सूची बनायी थी और किसने, कब और कौनसे गहने लिये थे और कब लौटाये थे उसकी तफसीलपूर्वक नोट वे रखते थे। उनकी प्रामाणिकता और सत्यनिष्ठा पर सभी को पूर्ण विश्वास था।

एक बार तिजोरी से सब गहने बाहर निकालकर श्रीमोटा सूची अनुसार उनकी जाँच-पड़ताल कर रहे थे, तब उन्होंने एक बहुत सुंदर और चमचम करनेवाली सोने की अँगूठी देखी। सहज ही उन्होंने वह पहनकर देखी, जो अँगुली में ठीक से बैठ रही थी।

'ऐसी अँगूठी पहनना मुझ गरीब को ज़िंदगीभर भी संभव नहीं है। अगर मैं आज के दिन उसे पहन रखूँ तो क्या हर्ज़ है?' - उनके मन में विचार आया और अँगूठी पहनी हुई ही रखकर बाकी के गहनें तिजोरी में डालकर श्रीमोटा ने उसे ताला लगा दिया।

घर के सभी लोग अपने-अपने ख़्याल में और अपने-अपने काम में मग्न थे। किसीका उस अँगूठी की तरफ ध्यान नहीं गया। शाम को श्रीमोटा घूमने निकले। रास्ते में एक परिचित व्यक्ति मिला और वह वहीं खड़े-खड़े बातें करने लगा। बात-बात में उस व्यक्ति की नज़र उन्होंने पहनी हुई अँगूठी पर पड़ी। बोलते-बोलते वह एक क्षण रुक गया और अँगूठी को घूर-घूरकर देखने लगा। बाद में बातचीत फिर से शुरू हो गयी। उसने यदि शब्दों से व्यक्त नहीं किया तो भी, उसका मूक प्रश्न श्रीमोटा ने पढ़ लिया था। वह पूछ रहा था, 'चुनीलाल, तेरे हाथ में यह सोने की अँगूठी? किसकी है ? कहीं चुराई तो नहीं ?' सभी श्रीमोटा की आर्थिक परिस्थिति जानते ही थे। इसलिए यह प्रश्न उसके मन में उठना अस्वाभाविक भी नहीं था।

श्रीमोटा को बहुत बुरा लगा, 'मानो उन्होंने कोई गुनाह ही किया हो' ऐसा उन्हें महसूस हुआ।

वह व्यक्ति चला गया और श्रीमोटा के मन में विचारों की शृंखला निर्माण हुई, 'मैंने तो सहज ही अँगूठी पहन ली है, केवल शौक के ख़ातिर। लेकिन उससे किसीके मन में यदि शक पैदा होता हो, ग़लतफ़हमी होती हो तो उसका क्या अर्थ ? जो हुआ, वह अच्छा नहीं हुआ।'

घूमना आधा ही छोड़कर नज़दीक के रास्ते से श्रीमोटा घर लौटे।

प्रभाबा बाहर के कमरे में ही बैठी थीं। श्रीमोटा उनके सामने गये और गर्दन झुकाकर खड़े रहे। उनका चेहरा फीका पड़ गया था।

उनकी ऐसी दशा देखकर चिंतित होकर प्रभाबा ने प्रेम से

पूछा, 'क्या रे चुनिया, क्या हुआ ? तबीअत ठीक नहीं है क्या? चेहरा इतना उतरा हुआ क्यों है ?'

अपनी गर्दन उठाकर प्रभाबा की ओर अपराधभाव से देखते हुए पहनी हुई अँगूठी दिखाकर, गिरी हुई आवाज़ में श्रीमोटा बोले, 'बा, मुझसे ग़लती हो गयी। मैंने किसी से पूछे बिना यह अँगूठी पहन ली। लेकिन सच कहता हूँ, मैंने वह ऐसी ही पहनी थी। उसे चुराने का मेरा इरादा नहीं था।'-अपना मन श्रीमोटा ने पूर्णतः खाली कर दिया।

क्या घटा था वह सारा प्रकार प्रभाबा के ध्यान में आया। कोमल हृदय के चुनिया के अंतर में चलनेवाली खलबली का उन्हें अंदाज़ा आ गया। हँसते हुए वे बोलीं, 'अरे पगले, तूने अँगूठी पहनी तो उसमें इतना मन में बुरा लगा लेने की बात कहाँ है ? तू तो मेरा बेटा ही है। अँगूठी पहनने के लिए किसीको पूछने की जरूरत ही क्या है ? और 'तूने अँगूठी चुरायी होगी' ऐसा मेरे मन में आएगा भी क्या ? इतनी छोटी-सी बात से दुःखी न होना और खुद को अपराधी न मान लेना। जा, अब अपना काम कर।'

जो-जो प्रभाबा ने कहा था, उसमें एक शब्द भी झूठा नहीं था। उनका मन आकाश की तरह साफ़ था, खुला था। उनके लिए चुनिया बेटा ही था और चुनिया के लिए भी वह सगी माँ से कम नहीं थीं। दोनों निष्कपट और निर्दोष प्रेम से बँधे हुए जीव थे और इसीलिए श्रीमोटा का उन पर इतना गहरा प्रभाव था।

प्रभाबा के शब्दों से श्रीमोटा के मन का भार उतर गया और वे एकदम शांत हो गये। वे अंदर गये और तिजोरी खोलकर अँगुली से अँगूठी निकालकर उसे तिजोरी में रखकर, उसे ताला लगा दिया।

अँगूठी पहनने का उनका शौक एक दिन में ही पूरा हो गया था ।

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

२२. 'मैट्रिक तो हुए, आगे क्या ?'

मैट्रिक परीक्षा पास होने के बाद श्रीमोटा के सामने एक समस्या खड़ी हुई । वह समस्या थी कालिज में प्रवेश प्राप्त करने की । आज तक की उनकी पढ़ाई भगवत्कृपा से ही पूरी हो गयी थी । किसी-न-किसी को निमित्त बनाकर उसके द्वारा उन्हें मदद मिली थी, सहारा मिला था, प्रेम मिला था । इन सब के पीछे उस परमप्रभु के अदृश्य हाथ ही कार्य कर रहे थे, इसमें शंका को स्थान ही नहीं था । इसलिए आगे की समस्या भी सुलझानेवाली ही थी ।

मॅट्रिक के बाद कालिज में प्रवेश के साथ ही रहने की जगह का भी इन्तज़ाम करना आवश्यक था । वैसे ही रहने का खाने-पीने का, पढ़ाई का—सब तरह के इन्तज़ाम के लिए रुपयों का बंदोबस्त करना था ।

'किस प्रकार से समस्या हल करें ?'-यह सोचते-सोचते उन्हें कालोल के एक व्यक्ति का स्मरण हुआ । वे वडोदरा कालिज में 'फैलो' थे । कालोल में उनके कुछ काम श्रीमोटा ने किये थे और उन दोनों में प्रेमसंबंध था । उन्हें मिलने पर कुछ हो सकता है, ऐसा श्रीमोटा को लगा ।

वडोदरा में 'रेसिडेन्सी हॉस्टल' में वे रहते थे । श्रीमोटा तुरंत हॉस्टल में गये । इत्तफ़ाक़ से उस समय वे वहीं थे । श्रीमोटा को देखकर उन्हें बहुत आनंद हुआ ।

श्रीमोटा ने अपने आने का उद्देश्य उन्हें स्पष्टता से बता दिया, 'साहब, मेरे घर की परिस्थिति तो आप जानते ही हैं । में मैट्रिक

तो हुआ, लेकिन आगे सब अंधेरा है । सभी रास्तों पर अंधकार का ही साम्राज्य है । कालिज में प्रवेश लेने से पहले मुझे रहने का बंदोबस्त करना पड़ेगा । कृपा कर के आप अपने कमरे में रहने की मुझे इजाज़त दे दें । कमरा ठीकठाक और साफ़सुथरा रखने का काम मैं किया करूँगा ।'

वह उदार व्यक्ति इसके लिए राजी हो गया । रहने की व्यवस्था होते ही श्रीमोटा पेटलाद गये और अपना सामान लेकर उस हॉस्टल में आ गये ।

आते-आते ही उन्होंने कमरे की कायापलट कर डाली । झाड़ू लगाकर, साफ़-सफ़ाई कर के, कमरे की वस्तुएँ अपनी-अपनी जगह पर रखकर उन्होंने कमरे को एक नया रूप दे दिया । आने-जानेवालों को कुछ समय वहाँ रुकने का मोह हो, ऐसा सौंदर्य कमरे को प्राप्त हुआ ।

रहने का इन्तज़ाम होने पर उन्होंने वडोदरा कालिज में प्रवेश लिया । मैट्रिक की परीक्षा में सर्वप्रथम आने का जो पारितोषिक प्राप्त हुआ था, वह इस समय काम आया ।

कुछ सहृदयी व्यक्तिओं की मदद से आवश्यक पैसों का प्रश्न भी हल हुआ और उनका कालिजजीवन शुरू हुआ ।

शुरू-शुरू में वे कालिज के मेस में भोजन लेते थे । लेकिन थोड़े ही समय में उनके ख़्याल में आया कि वहाँ का खर्चा ज़्यादा है । अमीर घर के लड़के वहाँ आते थे । इसलिए मेज़बानी-पक्वान्न आदि के बड़े खर्चे होते रहते । 'दूसरों की मदद से ही मैं पढ़ रहा हूँ, इसलिए उन पैसों की पाई-पाई सही रीति से इस्तेमाल होनी चाहिए, मौज-मज़ाक और चैन करने को उसका इस्तेमाल न हो' ऐसी श्रीमोटा की भावना थी । इसलिए 'अब कम खर्चे में भोजन

का प्रबंध कैसे किया जाए ?'–इसके बारे में वे सोचने लगे ।

उन्हें बचपन का एक प्रसंग याद आ गया । वडोदरा के मांडवी भाग में एक वैष्णव हवेली में उन्होंने माँ के साथ एक बार प्रसादभोजन लिया था, इसका उन्हें स्मरण हुआ । फिर तो आगे का काम आसान था । ढूँढ़ना पड़ा, लेकिन उन्होंने वह वैष्णव हवेली (वैष्णवों का मंदिर) खोज ली ।

हवेली के मुखियाजी से मिलकर उन्हें प्रणाम कर के श्रीमोटा ने विनम्रता से कहा, 'महाराज, मैं कालिज में पढ़नेवाला विद्यार्थी हूँ । कड़ी मेहनत-मज़दूरी कर के मेरे माता-पिता किसी तरह दो वक्त की रोटी पाते हैं और केवल स्वजनों की और सहृदयी व्यक्तियों की सद्भावनाओं के कारण ही मैं पढ़ाई कर पा रहा हूँ। भोजन के लिए अनावश्यक ज़्यादा पैसा खर्च न हो, इसलिए मुझे आपके यहाँ रोज़ भगवान का प्रसादभोजन लेने की इच्छा है । आप कृपा कर के मुझे रोज़ एक पत्तल प्रसादभोजन दिया करेंगे तो मैं आपका बहुत ऋणी रहूँगा ।'

श्रीमोटा के हृदय की उत्कटता से मुखियाजी द्रवित हुए और उन्होंने 'हाँ' कह दी ।

शुद्ध घी में बनाया हुआ बहुत स्वादिष्ट प्रसादभोजन श्रीमोटा को केवल डेढ़ आने में मिलने लगा । भोजन लेने को उन्हें हॉस्टल से तीन मील चलना पड़ता था और उसमें काफ़ी समय कट जाता था । उस समय का सदुपयोग करने के लिए उन्होंने एक ख़ासी तरकीब खोज ली । वे हॉस्टल से जल्दी निकल पड़ते और किताबें पढ़ते-पढ़ते फुटपाथ पर से यह अंतर काटकर हवेली में जाते, स्नान कर के प्रसादभोजन लेते और फिर से उसी ढंग से हॉस्टल लौटते।

कालिज का एक सत्र पूरा होने तक ऐसा चलता रहा । बाद में द्राविड प्राणायाम कर के इस अनोखे ढंग से भोजन पाने का यह प्रकार प्रभाबा को किसी ने बताया, तब उसने अपने लाड़ले बेटे को प्रेम से धमकाकर यह सब बंद करवाया और 'हॉस्टल में ही वे भोजन ले सके' इसका प्रबंध करवा दिया ।

प्रभाबा का दिल तोड़ना चुनिया को संभव नहीं था । आखिर जीत तो प्रेम की ही होती है न ?

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

२३. संगदोष

'रेसिडेन्सी हॉस्टल' में पेटलाद के नागर जाति के कुछ विद्यार्थी रहते थे । उन्होंने एक 'टी-क्लब' स्थापन किया था । उसमें सभी को बारी-बारी से चाय बनानी पड़ती थी, लेकिन जिनके घर में गिलास उठाने के लिए भी नौकर रहते थे, उन अमीर घर के लड़कों के लिए यह बात बहुत कठिन थी ।

वे सभी श्रीमोटा को पहचानते थे । उन्होंने एक दिन उनसे बिनति की 'चुनीलाल, तू हमारे टी क्लब की व्यवस्था अपने हाथ में लो । यह झंझट हम उठा नहीं सकते हैं । अगर तू हमारे लिए इतना करेगा, तो हम भी तुझे हमारे बस में जो होगा उतनी मदद करेंगे ।'

अपनी छोटी-सी उम्र में गर्म ईंटें उठानेवाले, खेतों में काम करनेवाले श्रीमोटा के लिए यह बात क्या कठिन थी ? उन्होंने आनंदपूर्वक उसे स्वीकार किया ।

फिर उन सब को रोज़ ठीक समय पर और बढ़िया चाय मिलने लगी । कपबसी, बर्तन आदि साफ़ होकर अपनी जगह पर

दिखायी देने लगे । वे लड़के एकदम खुश हो गये । फिर वे अपने कहने के अनुसार उन्हें मदद करने लगे । कभी-कभी वे सिनेमा देखने जाते और श्रीमोटा को भी अपने साथ ले जाते ।

सहसा जागरूक रहनेवाले श्रीमोटा में संगदोष के कारण सिनेमा देखने की वृत्ति निर्माण होकर, फिर तो उसकी आदत बन गयी। धीरे-धीरे वे सिनेमा देखने के शौकीन हो गये । दोस्तों के पैसों से वे सिनेमा देखते थे, तब तक तो ठीक था, लेकिन बाद में अपने पैसों से भी वे सिनेमा देखने लगे ।

एक बार वे अकेले थे और तब उन्हें सिनेमा जाने की बहुत प्रबल इच्छा हुई । 'जाना तो है, लेकिन पैसे नहीं है । फिर पैसों का इन्तज़ाम कैसे करना ?'-सिनेमा देखने के मोह के वश होकर वे सोचने लगे ।

सोचते-सोचते अचानक उन्हें भान हुआ कि उनका मन उन्हें फटकारकर पूछ रहा था, 'चुनीलाल, तुझे जो मदद मिलती है, वह तुझे पढ़ने के लिए मिलती है या मौज-मज़ाक करने को ? मदद करनेवालों की भावनाओं को पैरों तले कुचलकर पैसे बरबाद करते हुए तुझे शर्म नहीं आती ? आज तक अपनी इंद्रियों के बहुत लाड़-कोड़ किये है तूने । नेत्रसुख पाने को बहुत पैसे खर्च किये है तूने । अब तो आँखें खोल, अब तो जाग ।'

श्रीमोटा के अंतर के विवेक ने उन्हें एक जोरदार चाँटा-सा लगाया था, आँखों में अंजन डाला था ।

बाद में दोस्तों ने उन्हें सिनेमा देखने को साथ चलने के लिए बहुत बार आग्रह किया, लेकिन जागृत श्रीमोटा ने दृढ़ता और नम्रता से इनकार ही किया और फिर कभी मोहपाश में नहीं अटके ।

✤ ✤ ✤

॥ हरि:ॐ ॥

२४. वडोदरा कालिज छोड़ा

वडोदरा कालिज में श्रीमोटा की पढ़ाई जोरों से जारी थी । पहले और दूसरे साल की पढ़ाई ख़त्म कर के उन्होंने 'जूनियर बी.ए.' के लिए प्रवेश लिया ।

कालिज के अपने दोस्तों को, प्राध्यापकों को, आप्तजनों को सभी को वे सुपरिचित थे । वे सभी के स्नेहपात्र थे, प्रीतिपात्र थे । 'एक होनहार, होशियार और सच्चरित्र लड़का' ऐसी उनकी ख्याति थी ।

श्रीमोटा की प्रगति देखकर सभी को पूर्ण विश्वास था कि अपना ध्येय वे निश्चय ही पा लेंगे । उच्च शिक्षा प्राप्त कर के मामलतदार बनने की अपनी मनीषा वे भूले नहीं थे । माँ भी उन पर आँखें लगाये बैठी थीं, मन में आशा लिये बैठी थीं । लेकिन भविष्य में क्या छिपा हुआ है, यह कोई नहीं जान सकता, कोई नहीं देख सकता, कोई नहीं बता सकता, समय ही वह व्यक्त करता है अपने वर्तमान क्षण में—अचानक, अनपेक्षित रीति से । और वैसा ही हुआ ।

१९२०-२१ के दिनों में 'रोलेट एक्ट' का अन्याय और 'जलियाँवाला बाग हत्याकांड' इनकी वजह से सारा देश हड़बड़ा उठा, सुन्न हो गया । ब्रिटिश सरकार की क्रूरता और अमानुषता के विरोध में गांधीजी ने सरकार के खिलाफ़ सत्याग्रह ज़ाहिर किया ।

उन्होंने सरकारी नौकरों को आह्वान किया, 'आप नौकरियों का राजीनामा दो,' वकीलों को बताया, 'कोर्ट-कचहरी का त्याग करो,' विद्यार्थियों से कहा, 'सरकारी कालिज बहिष्कृत करो' जनता को आदेश दिया 'विदेशी माल का बहिष्कार करो ।'

इस तरह गांधीजी की बहिष्कार की तूफ़ानी और कड़ी जंग शुरू हुई । फिर कइओं ने सरकारी नौकरियाँ छोड़ दी, कई वकीलों ने कोर्ट-कचहरियों का त्याग किया । गाँव-गाँव में विदेशी माल के ढेर बनाकर चौक-चौक में उसे जलाया गया । धन्धन् करती आसमान को छूनेवाली ज्वालाओं की दाहक लौ से ब्रिटिश सरकार का आसन झुलसने लगा, जलने लगा, डगमगाने लगा ।

देश में वातावरण इतना तूफ़ानी और उग्र बन जाने पर आँखों पर पट्टियाँ बाँधकर बैठे रहना श्रीमोटा के लिए संभव नहीं था । कालपुरुष की खोपड़ी में सभी बांधव अपना-अपना भोग चढ़ा रहे थे, ऐसे समय आराम से बैठे रहना श्रीमोटा के पुरुषार्थ को संभव न था, मंजूर न था ।

वडोदरा कालिज छोड़ने को सर्वप्रथम तैयार हो गये दो विद्यार्थी: एक श्रीमोटा और दूसरे उनके मित्र पांडुरंग वळामे* ।

श्रीमोटा के इस अवचित और अकल्पित निर्णय से आप्तजन, रिश्तेदार, स्नेही-साथी सभी को गहरा आघात हुआ । इस आततायी निर्णय से उन्हें परावृत्त करने की सभी ने बहुत कोशिश की ।

उन्होंने उनसे पूछा, 'आप यह क्या कह रहे हैं ? आप अपने कुटुंब का ख़्याल करो, गरीबी में सहे हुए दुःख-कष्ट-पीड़ा का स्मरण करो, मामलतदार होने के आपके लक्ष्य का विचार करो । आग में कूद पड़ने का पागलपन कदापि न करो ।'

लेकिन भारतमाता उन्हें पुकार रही थी, 'तू केवल स्वयं की ही गरीबी की तरफ़ न देखना, हमें किसी एक की ही नहीं, एक कुटुंब की ही नहीं बल्कि सारे भारतदेश की गरीबी दूर करनी है। देश को गुलामी की जंजीरों से मुक्त करने का, जंग में शामिल होने का तेरा भी फ़र्ज़ बनता है । बलिदान दिये बिना कुछ भी

* नारेश्वर के श्रीरंग अवधूतजी महाराज

प्राप्त होता नहीं है, इसका स्मरण रखना । मेरे सुपुत्र, मेरी तुझसे बहुत अपेक्षाएँ हैं।'

फिर तो किसीके विरोध की परवाह न कर के गांधीजी का आह्वान स्वीकारकर और भारतमाता का करुण आक्रोश सुनकर श्रीमोटा ने वडोदरा कालिज का त्याग किया और गांधीजी की प्रेरणा से स्थापित 'गुजरात विद्यापीठ' में दाखिल हुए ।

देशसेवा की यज्ञवेदी पर खड़े रहकर अपना बलिदान देने को श्रीमोटा अधीर हो गये थे ।

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

२५. स्वावलंबन से उच्च शिक्षा

'गुजरात विद्यापीठ' में श्रीमोटा ने प्रवेश पाया, लेकिन अब सहृदयी व्यक्तियों से पहले जैसी मदद की अपेक्षा रखना अनुचित था । उनकी अपेक्षाओं को चकनाचूर करने के बाद वे सहायता के लिए अपना हाथ आगे बढ़ाएँगे यह बिलकुल असंभव था । इसलिए अपने जीवनरथ का सारथ्य अब स्वयं ही करना था । वैसी मानसिक तैयारी कर के ही उन्होंने वडोदरा कालिज छोड़ने का निर्णय लिया था ।

अब श्रीमोटा को सब कुछ 'क, ख, ग...' से प्रारंभ करना था । खाने-पीने के और रहने के खर्चे का इन्तज़ाम करना यह तत्कालीन माँग थी और उसके लिए कुछ-न-कुछ पुरुषार्थ करना ज़रूरी था ।

पैसों का इन्तज़ाम करने को श्रीमोटा ने दो मार्गों का अवलंबन लिया—एक 'नवजीवन' पत्रिका की बिक्री, दूसरा—विद्यापीठ की साफ़सफ़ाई ।

साफ़सफ़ाई का काम किसी और को देने के बजाय स्वावलंबन की राह पर चलनेवाले इस युवक को देना विद्यापीठ के अधिकारियों ने आनंदपूर्वक स्वीकार किया ।

गांधीजी की 'नवजीवन' यह साप्ताहिक पत्रिका उस वक्त रविवार के दिन बाज़ार में बेची जाती थी । शनिवार के दिन शाम को एक रुपये में सोलह प्रति, इस हिसाब से श्रीमोटा बहुत-सी पत्रिकाएँ ले आते और 'गांधीजी का नवजीवन', 'गांधीजी का नवजीवन' ऐसा पुकारकर गली-गली में घूमकर-घूमकर उनकी बिक्री करते । लोकप्रिय होने से पत्रिकाएँ जल्द ही बिक जातीं । 'नवजीवन' पत्रिका की क़ीमत पाँच पैसे रहती थी और एक प्रति के पीछे एक पैसा मुनाफ़ा हो जाता था ।

इस तरह पत्रिका की बिक्री के अंत में श्रीमोटा को रुपया-बारह आने प्राप्त होते थे और उन पैसों से एक हप्ते के खर्च का इन्तज़ाम हो जाता था । पैसों की बचत हो इस हेतु से वे अपना खाना खुद बनाते थे । पैसों की कमी की वजह से कई बार वे सिर्फ़ एक वक्त ही भोजन कर पाते थे । एक वक्त का भोजन करने जितने भी पैसे न हो, तो चने-कुरमुरे खाकर भी दिन गुजारने पड़ते थे । वैसे तो शहर में उनके कई स्वजन और रिश्तेदार थे और अगर वे उनके यहाँ जाते, तो कोई भी उन्हें प्रेम से भरपेट खाना खिलाता, लेकिन उसमें कुछ शोभा न थी, कुछ सार न था। अपना स्वाभिमान गिरवी रखकर पेट भरने से तो भूखा रहना वे अधिक पसंद करते थे ।

'गुजरात कालिज' के सामने एक बने मकान के पहले कमरे में उनके रहने की व्यवस्था थी । स्वमेहनत की कमाई के केवल सात पैसों में उनका एक-एक दिन कटने लगा ।

कोई भी काम करने को श्रीमोटा को कभी शर्म नहीं आयी, न ही संकोच हुआ । अपने स्वाभिमान की रक्षा कर के मेहनत से चार पैसे कमाने के लिए कहीं भी, कोई भी और कैसा भी काम करने की उनकी बचपन से ही तैयारी थी ।

कालिज जारी था और पढ़ाई भी चल रही थी । वातावरण गांधीजी के विचारों से, प्रभाव से और आह्वानों से भारित था ।

इसी समय एक बार गांधीजी का विद्यार्थियों को संबोधित कर के भाषण हुआ, 'मुझे तो लगा था कि आप कालिज छोड़कर गाँव में जाओगे, उन्हें समझाओगे, समाज में नयी प्राणचेतना डालोगे, लेकिन तुमने तो एक डिग्री का मोह त्यागकर दूसरी डिग्री का मोह जीवंत ही रखा है । ज्ञान और जागृति की मशाल गाँव-गाँव में ले जाने में ही तुम्हारी जवानी की सार्थकता है ।'

गांधीजी का यह मर्मभेदी आह्वान सुनकर श्रीमोटा ने गाँव में जाकर सेवाकार्य करना निश्चित किया । 'स्वराज्य आश्रम' के गिडवानीजी से ट्रेनिंग प्राप्त कर के भरूच जिले में 'वागरा' नामक बहुत पिछड़े हुए तालुके में वे कार्यहेतु गये ।

वहाँ अनगिनत बाधाएँ थी । एक पैसा तक खर्चने को मिलता नहीं था । डाक की व्यवस्था नहीं थी । और सफ़र के लिए, इधर-उधर जाने के लिए एक भी पैसा प्राप्त नहीं था । उनके मनजैसा कुछ बना नहीं और पुनः विद्यापीठ में लौट आना उन्होंने पसंद किया ।

फिर से प्रवेश पाने के लिए उन्हें परीक्षा भी देनी पड़ी । 'यहाँ-यहाँ ऐसा-ऐसा कार्य किया है' इस आशय का सर्टिफिकेट भी उन्होंने सरदार वल्लभभाई पटेल से प्राप्त कर के विद्यापीठ को उनकी माँग के अनुसार ला दिया । आखिर प्रवेश मिल गया और फिर से वे पढ़ाई में व्यस्त हो गये ।

बी.ए. की डिग्री प्राप्त होने को केवल तीन-चार महीने ही बाकी थे, तब फिर से गांधीजी का विद्यापीठ में भाषण हुआ— 'देश जल रहा है और तुम ठंडे दिमाग से बैठकर पढ़ाई कैसे कर सकते हो ?'

नोकदार तीर की तरह ये शब्द श्रीमोटा के हृदय में घुस गये और डिग्री प्राप्त करने के मोहरूपी पक्षी का उसने वध किया ।

'देशकार्य के लिए प्राणपूर्वक जुड़ जाऊँ'-इस ऊर्मि के वश होकर उन्होंने सदा के लिए विद्यापीठ को त्याग दिया और नडियाद में श्रीइंदुलाल याज्ञिक के साथ हरिजन सेवा कार्य में जुड़ गये ।

अफ्रिका में कंपाला शहर में मोटी तनख्वाह की शिक्षक की नौकरी और पेरिस में भी आकर्षक नौकरी—इस तरह दो नौकरियों का प्रलोभन उनकी ओर चला आया, लेकिन देशसेवा के हेतु से, उदरनिर्वाह को पर्याप्त तनख्वाह में जीवन बिताने की कसम श्रीमोटा ने हाथ में गंगाजल लेकर ली थी, इसलिए उन्होंने उस प्रलोभन की ओर दृष्टि भी नहीं की ।

हरिजन आश्रम में, हरिजन सेवा में उन्होंने खुद को समर्पित कर दिया ।

इस तरह हरिजन सेवाकार्य का प्रारंभ गुजरात में नडियाद से हुआ । नडियाद में ही पहली हरिजन पाठशाला का मुहूर्त हुआ और नडियाद में ही पहला हरिजन आश्रम का स्थापन हुआ ।

भविष्य में जो विशालकाय बननेवाला था, उस वटवृक्ष का बीज बोया श्रीमोटा ने और उसको खादपानी डालकर पोषण किया उन्होंने ही ।

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

२६. गांधीजी का बुलावा

श्रीमोटा के ज्येष्ठ बंधु जमनादास भगत को इस अरसे में क्षय की व्याधि ने घेर लिया । घर में कमानेवाले वे अकेले ही थे और उन्होंने ही बिस्तर पकड़ लिया, फिर तो कुटुंब के लालन-पालन की और भाई की बीमारी की—इस तरह दुगुने खर्च की जवाबदारी का बोझ श्रीमोटा के ही कंधों पर आ पड़ी । सद्भाग्य से उन्हें हरिजन पाठशाला का और हरिजन आश्रम का, ऐसे दो काम प्राप्त हुए थे, इसलिए उन दोनों की तनख्वाह से खर्चे की बैलगाड़ी किसी तरह खिंचा जा रही थी ।

इतने में उन्हें अचानक गांधीजी से बुलावा आ गया । किसलिए उन्होंने बुलाया होगा यह एक पहेली ही थी और उसका हल वहाँ जाने पर ही प्राप्त होनेवाला था । श्रीमोटा को गांधीजी के पास ले जाया गया, तब वह उनकी दस मिनट आराम करने की घड़ी थी। उन्होंने श्रीमोटा से कहा, 'मैं दस मिनट सोता हूँ, हम बाद में बातें करेंगे ।'

वे बिस्तर पर लेट गये और एक दो क्षण में ही सो गये । श्रीमोटा हाथ में पंखा लिये उन्हें हवा करते रहे ।

ठीक दस मिनट के बाद गांधीजी जग गये ।

'बापू, यही हैं । ये चुनीलाल भगत, जिनको आपने बुलावा भेजा था ।'-श्रीमोटा से परिचय करवाया गया ।

उन्होंने श्रीमोटा की ओर देखा । उन्हें आश्चर्य हुआ । इतनी छोटी उम्र, फिर भी झोंक दिया है खुद को देशसेवा में ।-उन्हें संतोष भी हुआ और आनंद भी ।

'निश्चित ही मेरे शब्द लोगों के हृदयों को छूते हैं, इसीलिए ऐसा जवान खून देश के लिए शरीर का, इच्छा-आकांक्षाओं का,

संसार का, भौतिक ध्येयों का त्याग करने सज्ज हुआ है ।' अपने मन के विचारों को अटकाते हुए थोड़े गंभीर होकर वे बोले, 'इतनी छोटी उम्र में आप सेवाकार्य कर रहे हैं, यह बड़े आनंद की बात है और सराहने योग्य है, लेकिन अपने गरीब देश में गरीबों की सेवा का व्रत जिसने अंगीकार किया है, उसे इतनी ज़्यादा तनख्वाह देना उचित है क्या ? और उसको भी वह लेनी योग्य है क्या ?'

बापू के पास क्यों लाया गया था, उसका उत्तर श्रीमोटा को तुरंत मिल गया ।–'मैं दो-दो काम कर के इतनी तनख्वाह ले रहा हूँ, यह चुभ रहा हे मेरे ही सहकारियों को ।... और उन्होंने ईर्ष्यावश होकर यह बापू तक पहुँचाया है । लेकिन मैं पैसे कमाने के लिए या मौज-मज़ाक के लिए यह कर रहा हूँ क्या ? घर का खर्च, अस्पताल का खर्च; इनको निभाने की मेरी जवाबदारी पूरी करने के लिए ही कर रहा हूँ न ?...नहीं, मैं ग़लत नहीं हूँ... ।' विचारों में श्रीमोटा खो गये ।

उन्हें मूक देखकर गांधीजी ने फिर से छेड़ा, 'मैं क्या पूछ रहा हूँ, इसकी ओर ध्यान नहीं दिखता तुम्हारा ।'

श्रीमोटा चौंककर होश में आये । म्लान हँसते हुए वे बोले, 'बापू, क्षमा करना, मैं विचारों में बहा जा रहा था ।'

निर्व्याज हँसते हुए गांधीजी बोले, 'कोई हर्ज़ नहीं, बोलो ।'

श्रीमोटा भावनावश होकर बताने लगे, 'बापू, घर में हम सब कुल मिलाकर सात व्यक्ति हैं । मेरा बड़ा भाई हरिजन सेवा का कार्य करते-करते क्षयग्रस्त होकर कई दिनों से आणंद में डॉ. कुक के मिशन हॉस्पिटल में बिस्तर पकड़े पड़ा हुआ है । मेरी माँ और भाभी भी कड़ी मेहनत कर रहे हैं । मुझे उदरनिर्वाह को दूसरा आधार नहीं है ।... बापू, अगर मुझे पैसे ही कमाने होते, तो इस

तरह पढ़ाई बीच में छोड़ी न होती । डिग्री लेकर अफ़्सर बनकर ढेर सारे पैसे कमा लिये होते । लेकिन...'-बोलते-बोलते श्रीमोटा ठहर गये । उनकी आँखों से आँसू फूट पड़े ।

'लड़का बहुत भाववश हो गया है' यह देखकर गंभीर होकर बापूने पृच्छा की, 'आपकी बात ठीक है, लेकिन इतनी छोटी उम्र में दो-दो काम करते हुए आप थकते नहीं ? जिम्मेवारी का बोझ लगता नहीं ?'

श्रीमोटा ने अबतक अपनेआप को सम्हाल लिया था । बापू के उत्तर में वे हिम्मत से बोले, 'बापू । William Pitt, the younger, was the Prime Minister of England at the age of twenty-four.*

'मूक होकर वे गांधीजी की आँखों में आँखें डालकर देखने लगे । मानो वे मूक प्रश्न कर रहे थे, 'बापू आजतक ये दो-दो काम मैंने कर दिखाये न ?'

श्रीमोटा के उत्तर से गांधीजी कौतुक से हँस पड़े । 'इतनी छोटी उम्र, फिर भी कितनी समझ । कितना आत्मविश्वास । कितनी ज़िद । मेरे सामने बोलते हुए भी कोई हिचकिचाट नहीं है । विल्यम पिट...'-वे आस्था से, प्रेम से श्रीमोटा की ओर देख रहे थे । उन्होंने श्रीमोटा को करीब बुलाया, बगल में बिठाया, पीठ थपथपायी और कहा, 'मुझे आनंद हो रहा है कि आप जैसे निष्ठावान कार्यकर्ता मुझे मिल गये । देश की सेवा में आपने स्वयं को कितनी पूर्णता से समर्पित कर दिया है । मुझे आप पर गर्व है । आप बहुत बड़े बनेंगे ।'

---

* विल्यम पिट चौबीस बरस की उम्र में ही इंग्लेंड के प्रधानमंत्री बन गये थे ।'

फिर गंभीर होकर फिर से मूल विषय की ओर मुड़ते हुए वे बोले, 'चाहे कुछ भी हो, फिर भी हमारे निश्चित किये हुए नीति-नियमों का पालन हमें करना ही पड़ेगा । हमारी निश्चित की हुई मर्यादाओं का बंधन हम ही तोड़े यह उचित नहीं है । अगर ऐसा करें, तो हमारे पीछे बाकी के लोग भी उसका ही अनुकरण करेंगे। आपका सब प्रतिपादन ठीक है, फिर भी एक ही आदमी दो-दो काम करे, यह हमारे नीति-नियमों की संहिता के अनुकूल नहीं है।'

बोलते-बोलते बापू रुक गये और उन्होंने अपनी आँखें बंद कर लीं । वे अपने में खो गये । 'इस विषय की चर्चा अब पूरी हो गयी है' इसकी ओर यह अप्रत्यक्ष संकेत था ।

श्रीमोटा ने बापू के चरणों को स्पर्श करके उनसे विदाई ली।

'दो में से एक काम छोड़ना पड़ेगा' यह सूरज की रोशनी की तरह साफ़ था । लेकिन उन्हें उसका कोई हर्ष-शोक नहीं था । 'जिस ईश्वर ने ये दो काम दिये थे, उस ईश्वर ने ही अगर एक काम वापस ले लिया तो उसमें उसका कुछ हेतु होगा ही । मेरा हित ही होगा उसमें ।' आँच लगे बिना सोना कदापि शुद्ध होता नहीं है ।'— घर लौटते समय श्रीमोटा के मन में ऐसे विचार आये ।

उनकी अंदाजानुसार उन्हें बाद में निर्देशित किया गया कि 'वे दो में से एक काम पसंद करें और दूसरा छोड़ दें ।'

उन्होंने हरिजन पाठशाला का काम अंगीकार किया । इस विषय में लड़ने का, फिर से कोशिश करने का किसी ने उन्हें सुझाव दिया । लेकिन उन्हें ईश्वर से लड़ना नहीं था । उनकी दृष्टि में बापू ही ईश्वर थे, उनका शब्द अंतिम था और वह ठीक ही होगा । इसमें शंका को स्थान ही नहीं था ।

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

२७. 'बच्चे यानी क्या भेड़-बकरियाँ ?'

१९१९ का वर्ष आरंभ हुआ । सरकार ने 'काला कानून' बनाया । उसके विरोध में सारे देश में तूफानी वातावरण खड़ा हो गया । गाँव-गाँव में पत्रिकाएँ भेजी गईं, सभाओं का आयोजन हुआ। आबालवृद्ध, स्त्री-पुरुष सभी जोशपूर्वक कह रहे थे ।

'नहीं रखनी, नहीं रखनी, सरकार ज़ालिम नहीं रखनी ।'

हर गाँव में, हर शहर में प्रभातफेरियाँ निकलने लगीं । पू. गांधीजी, पंडित जवाहरलाल नेहरु, दासबाबू, लाला लाजपतराय, स्वामी श्रद्धानंद...इन जैसे कई नेंताओं की जयजयकार से लोगों की आत्मशक्ति जागृत हुई ।

डॉ. ऐनी बेसैन्ट उस समय महासभा की प्रमुख थीं । उन्होंने 'होमरूल लीग' की स्थापना की और सारे देश में सरकार के विरोध में जंग शुरू की । लोकजागृति के लिए वे भी सर्वत्र घूम रही थीं। नडियाद में भी वे आनेवाली थीं, उसका आयोजन हो गया था । श्रीमोटाने भी हरिजन पाठशाला के लिए समय माँग लिया था ।

मॅडम को कई स्थानों पर जाना था । लेकिन कुछ लोगों का आयोजन ठीक नहीं था और समयानुसार कार्यक्रम हुए नहीं । देर से देरी बढ़ती ही गयी ।

श्रीमोटा ने अपनी पाठशाला के लिए शाम का समय माँग लिया था । पाठशाला के सभी विद्यार्थी और श्रीमोटा मॅडम की आतुरतापूर्वक राह देख रहे थे । एक अंग्रेज स्त्री जंग में शामिल होकर अंग्रेजों को ही निकालने के लिए तत्पर थी और सब में शक्ति संचारित कर रही थी; ऐसी मर्दानी स्त्री का हरिजन पाठशाला में आना, यह बच्चों का सद्भाग्य ही था ।

राह देख-देखकर विद्यार्थी ऊब गये । शाम ढलकर रात होने को आयी तो भी मॅडम का आगमन नहीं हुआ । श्रीमोटा को तो धर्मसंकट खड़ा हो गया । 'बच्चों को अगर रोक रखें तो वह जुल्म होता है, करना क्या ?...' आखिर विचार कर के उन्होंने निश्चय किया कि ऐनी बेसैन्ट को इसके बारे में समझा सकते हैं, लेकिन बच्चों को जबरन् रोकना उचित नहीं है । उन्होंने बच्चों को छुट्टी दे दी, सब बच्चे अपने-अपने घर चले गये ।

बच्चे घर चले जाने के बाद थोड़े समय में ही स्थानीय लोग और कार्यकर्ताओं के साथ ऐनी बेसैन्ट का आगमन हुआ । उन्होंने देखा कि पाठशाला तो खाली ही थी, अकेले श्रीमोटा ही वहाँ मौजूद थे ।

स्थानीय कार्यकर्ता नाराज़ होकर बोले, 'भगत, आपने बच्चों को रोका क्यों नहीं ? उन्हें जाने क्यों दिया ? आपको तो पता था कि मॅडम आनेवाली हैं ।'

शांतिपूर्वक श्रीमोटा ने जवाब दिया, 'मैं क्या करूँ ? आप निर्धारित समय से बहुत देरी से आये हैं । मैं बच्चों को जबरदस्ती कैसे रोक पाता ?'

ऐनी बेसैन्ट यह सब सुन रही थीं । उनकी ओर देखकर श्रीमोटा ने आगे कहा, 'पूछो मॅडम से कि अगर आप समय पर नहीं आ सकतीं, तो उसका दंड़ बच्चों को क्यों ? बच्चे क्या भेड़-बकरियाँ हैं कि जिन्हें जबरन् पाठशाला में बंद कर के रखा जाए ?'

ऐनी बेसैन्ट समझदार थीं । 'देरी से आने में मेरी ही ग़लती है' इसका उन्हें भान था । उन्होंने हँसकर श्रीमोटा से कहा, 'आपका कहना एकदम ठीक है । आपको जो करना चाहिए था वही किया । बच्चों को जबरदस्ती से रोक रखते तो वह अन्याय होता ।'

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

२८. उपद्रवी बच्चों को सबक

नडियाद में हरिजन पाठशाला के पास ही मुसलमानों के कई घर थे । पाठशाला का समय होने पर उन मुसलमानों के चार-पाँच गुंडे लड़के नज़दीक ही घूमते रहते थे और पाठशाला के बच्चों को त्रास दिया करते ।

कुछ भी अर्वाच्य बकना, हा...हा...ही...ही... करना, गाली-गलौज करना, इस तरह अनेक प्रकार से वे हरिजन बालकों को सताते रहते । कुछ दिन श्रीमोटा ने यह सह लिया, लेकिन बच्चों की शिकायतें बहुत बढ़ने पर इस प्रकरण का फ़ैसला करने के हेतु से वे उन उद्दंड लड़कों के माता-पिता से मिले और उन्हें सब बताकर 'कैसे भी आप अपने बच्चों को समझाओ और फिर से यह हो न पाये' ऐसी चेतावनी भी दी ।

इन मुलाकातों का और श्रीमोटा के कहने का उन बच्चों पर और उनके माँ-बाप पर कुछ असर नहीं हुआ, बल्कि 'हमें अटकानेवाला कोई नहीं है, सब हम से दबकर रहते हैं' ऐसा उन गुंडे लड़कों ने अर्थ निकाला और उनसे होनेवाली तक़लीफ़ में वृद्धि ही हुई । अब तो उनका हौसला इतना बढ़ गया कि उन्होंने मुट्ठी भर-भर के धूल ले आना और उसे पाठशाला के वर्ग में फेंकना शुरू किया ।

फिर श्रीमोटा उस इलाके की उर्दू पाठशाला के कई मुसलमान शिक्षकों से मिले और उन्हें भी इस घटना का विवरण दिया ।

इतने शांतिपूर्ण मार्गों का अवलंबन करने पर भी उन हठी बच्चों के स्वभाव में और बर्ताव में किंचित्मात्र भी फ़र्क़ नहीं आया । फिर तो उन्हें छठी का दूध पिलाने का और आकाश के तारे दिखाने

का श्रीमोटा ने निश्चय किया । अपने पुरुषार्थ को यह आह्वान है ऐसा उन्हें लगा ।

'क्या करना है' उसकी योजना बनायी गयी । उस योजना के भावि परिणाम क्या हो सकते हैं, इसके बारे में भी उन्होंने ठीक से सोच लिया और एक दिन हाथ में सोटा लिये, वे पाठशाला के वर्ग के दरवाजे के पीछे छिपकर खड़े रहे ।

रोज़ की तरह वे उपद्रवी लड़के आये । अपने हाथों में लायी हुई धूल-मिट्टी वे कमरे में डालनेवाले ही थे, तब झट से श्रीमोटा बाहर आ गये और उन लड़कों पर भेड़िये की तरह टूट पड़े । उनके लट्ठ का प्रसाद पाते ही लड़कों की भागंभाग हुई और वे अपने-अपने घर भाग गये ।

घर जाने पर उन लड़कों ने अपने घरवालों को और आसपास के लोगों को घटी हुई घटना मिर्च-मसाला लगाकर, बढ़ा-चढ़ाकर बतायी, उससे वे सभी मुसलमान क्रोधित होकर इकट्ठे हुए और थोड़े ही समय में उन स्त्री-पुरुषों की टोली पाठशाला के दरवाजे के सामने खड़ी हो गयी ।

अब मामला काफ़ी गंभीर हो गया था । इतनी विस्फोटक परिस्थिति में कुछ भी घट सकता था । अपने किये कि इतनी हद तक परिणाम होगा, इसका श्रीमोटा को ज़रा-भी अंदाज़ नहीं था।

'इस परिस्थिति में क्या करना चाहिए ?'-उनके मन में प्रश्न खड़ा हुआ । अपनी आँखें बंद करके वे एक क्षण अंतर्मुख हो गये, स्वयं में स्थिर हो गये । अचानक उन्हें महसूस हुआ कि उनके हृदय में मानो कोई आदेश दे रहा था, 'बदन पर से सारे कपड़े उतार दे और उन सब के सामने खड़ा हो जा।'

पायी हुई आज्ञा का उन्होंने तुरंत पालन किया । लंगोटी छोड़कर बाकी सब कपड़े झट से निकालकर वे उस टोली के सामने जाकर खड़े हो गए । सब मुसलमान उनकी इस लोकविलक्षण और अकल्पित कृति से अवाक् हो गये ।

श्रीमोटा ने निर्भयता से उनसे कहा, 'जिस किसीको मुझे पीटना हो, वह मुझे ज़रूर पीटे । देखो । मैं एकदम खुला हूँ, इसलिए आप अच्छी तरह से पीट सकेंगे ।'

'आप के लड़के इतने दिनों से त्रास दे रहे थे, गाली-गलौज कर रहे थे, वर्ग में धूल-मिट्टी डाल रहे थे और इन बेचारे निरुपद्रवी हरिजन बालकों को सता रहे थे । हमने कई बार समझाया, फिर भी आप पर कोई असर नहीं हुआ । बच्चों के माँ-बाप, उनके शिक्षक, तुम्हारे मुल्ला-मौलवी-क़ाज़ी इन सब ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया । हम भी कितनी हद तक सहन करें ? हर बात की सीमा होती ही है न ? फिर, ऐसी स्थिति में मैंने अगर यह कदम उठाया तो उसमें ग़लत क्या ? आप ही न्याय करो, और अगर मुझसे कुछ ग़लती हो गयी है ऐसा लगता हो, तो खुशी से मारो । इसमें मेरी 'ना' नहीं है ।'

श्रीमोटा की इस स्पष्टोक्ति से और तर्कबद्ध स्पष्टीकरण से उन मुसलमानों का जोश कम हो गया, वे ढीले पड़ गये । 'भूल अपने बच्चों की है', इसका उन्हें पूर्णरूप से अहसास हो गया ।

वे सब मुसलमान स्त्री-पुरुष अब शांत हो गये । इतना ही नहीं, उनमें से कुछ श्रीमोटा से ही कहने लगे, 'भगत, आपने जो कुछ किया, वह एकदम सही किया । हमारा कहा हमारे ही लड़के मानते नहीं थे । आपने उनकी चमड़ी नरम की है, इसलिए अब तो वे सुधर जायेंगे और अपनी गुंडागर्दी छोड़ देंगे । इसमें हमें

कोई शक नहीं । फिर से उन्होंने कोई शरारत की या उपद्रव किया, तो आप उन्हें बेशक पीटना । हम कुछ भी नहीं कहेंगे ।

इस तरह सारी बाजी पलट गयी और शांत होकर वे सब मुसलमान अपने-अपने घर लौट गये ।

उसके बाद पाठशाला के हरिजन बालकों को किसी भी प्रकार की तक़लीफ़ नहीं हुई और उनकी पढ़ाई और श्रीमोटा का कामकाज ठीक से चलने लगा ।

श्रीमोटा का, घर से पाठशाला में आने-जाने का रास्ता उन मुसलमानों की बस्ती में से ही गुजरता था । श्रीमोटा पाठशाला में आते-जाते वक्त साथ में चने-कुरमुरे रखा करते और उन शरारती लड़कों को करीब बुलाकर उन्हें खाने को दिया करते । प्रेम से उनसे बातचीत भी किया करते । धीरे-धीरे वे लड़के पुराना सब भूल गये और उनकी श्रीमोटा से दोस्ती हो गयी ।

प्रेमभावना के बल से उन लड़कों के स्वभाव में परिवर्तन हुआ, शरारतें कर के त्रास देने का और गाली-गलौज का उनका दुर्गुण लोप हुआ और वे एकदम शांत हो गये ।

✤ ✤ ✤

॥ हरिः ॐ ॥

२९. जाति बाहर ?

श्रीमोटा ने हरिजन सेवा का कार्य शुरू किया, वह काल कर्मकांड, छूआछूत के कीचड़ से भरा हुआ था । अनपढ़, दीन-हीन गरीब हरिजनों को सवर्णों के साथ उठने-बैठने पर और खाने-पीने पर भी प्रतिबंध था । उनका स्पर्श होने पर सवर्ण स्नान करते थे और उनका मुँह देखा तो अपशकुन मानते थे, इतना ही नहीं, उनका साया बदन पर पड़े तो स्वयं को भ्रष्ट मान लेते थे, ऐसा वह काल था ।

ऐसी अवहेलना, उपेक्षा और कुत्ता-बिल्ली जैसा शर्मजनक जीवन समाज ने उनके माथे पर थोपा था और उनका कुछ भी अपराध न होते हुए भी उन्हें दलित, अस्पृश्य मानकर अज्ञान, अंधकार, उपेक्षा, दरिद्रता, दुःख, कष्ट, पीड़ा इनकी खाई में फेंककर सवर्ण अपनी महत्ता सिद्ध करना चाहते थे और ईश्वर ने ही निर्मित की हुई मानवता को कालिख लगा रहते थे ।

ऐसे हरजिनों में मिल-जुलकर रहनेवाले, उनका ही एक अंग बनकर रहनेवाले श्रीमोटा अपनी ही जाति के लोगों की कड़ी और ज़हरीली निंदा का लक्ष्य बन गये और वे लोग अपनी नाराज़गी प्रगट करने लगे ।

श्रीमोटा इसको दुर्लक्षित कर के, 'मैं भला और मेरा काम भला' इस वृत्ति से सेवा और कर्मसाधना कर रहे थे । किसीकी निंदा की उन्हें परवाह नहीं थी ।

'हरिजनों से किये जानेवाले इस अन्यायभरे बर्ताव में सुधार होकर समझदार हिंदू उनसे मिलजुलकर रहें और उनमें आत्मविश्वास, धैर्य और आत्मबल का निर्माण होने के लिए प्रेमपूर्वक चार शब्द बोलें' ऐसी भावना पू. गांधीजी ने अपनी 'नवजीवन' पत्रिका में भी व्यक्त की थी ।

इस सूचन के अनुसार प्रेरणा पाकर नडियाद में सवर्ण और हरिजनों का एक स्नेहसंमेलन आयोजित किया गया । उसमें भाग लेने के लिए उस वक्त के नेता श्रीगोकळदास बापू और श्रीफूलचंद बापूजी शाह भी आये थे । संमेलन के आयोजक थे श्रीमोटा ।

संमेलन यशस्वी सिद्ध हुआ । सवर्ण और हरिजन बंधुभगिनी एक ही बैठक पर बैठे, मिल-जुलकर रहे, बातचीत की और

एकदूसरे को पुड़िया में सूखामेवा का प्रसाद दिया-लिया । नेताओं के यथोचित भाषण हुए और फिर कार्यक्रम की समाप्ति हुई ।

इस घटी हुई घटना से सारे नडियाद शहर में प्रचंड खलबली मच गयी । संमेलन में उपस्थिति रखनेवालों को जाति के बाहर निकाला गया, मानो उन्होंने कोई बड़ा गुनाह ही किया हो । औरों का तो ठीक, लेकिन खुद श्रीगोकळदास बापू और श्रीफूलचंद बापूजी को भी जातिबाहर निकाला गया ।

श्रीमोटा पर भी कारवाई की जाए ऐसी घुसपुस उनकी जाति में भी शुरू हुई ।

उस वक्त नडियाद में गोदडिया स्वामी का (स्वामी प्रकाशानंदजी का) विशेष प्रभाव था । उनकी बैठक में यह प्रश्न उपस्थित होते ही वे बोले, **'अपना हिंदूधर्म कैसा है ? और आज हम क्या कर रहे हैं ? आप सब यहाँ मेरे पास इकट्ठे हुए, मिलजुलकर रहें, स्पर्श किया तो तुम्हें कोई जाति के बाहर निकाल रहा है क्या ? फिर उन हरिजनों का ही अपवाद क्यों ? जातिभेद निर्माण करनेवाला है मनुष्य, न कि ईश्वर । इस भेदबुद्धि से ही, जातिभेद से ही अपना खुद का, सब का, समाज का और हिंदूधर्म का नुकसान हुआ है ।'**

स्वामीजी की प्रभावशाली वाणी का लोगों पर गहरा असर हुआ और तूफान आने से पहले ही आकाश के बादल बिखरकर वह निरभ्र हो गया ।

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

३०. सेवाव्रत

श्रीमोटा ने सेवा का मार्ग अंगीकार किया था, वह केवल स्वयं के शांति समाधान के लिए ही । अपने अंतर की पुकार को प्रतिसाद

देकर ही उन्होंने सेवा स्वीकार की थी । किसीको खुश करना यह उद्देश्य कदापि न था ।

सेवाव्रत यानी तलवार की धार पर चलना । किसीके राग-लोभ, निंदा-स्तुति, ईर्ष्या-द्वेष, लाभ-हानि, स्वास्थ्य-दौर्बल्य, हताशा-निराशा के अधीन हुए बिना असिधारावत् निष्कामता से कार्य करते रहना, यही उस पांथस्थ का काम होता है ।

'यह कार्य करने के लिए जिनके साथ रहकर चलना है, उन ज्येष्ठ सहकारियों ने ही बाधाएँ खड़ी की और संग्राम किया, तो भी उसे अग्निपरीक्षा मानकर आगे-आगे चलते रहना है' ऐसी श्रीमोटा की धारणा थी ।

कुटुंब का ख़्याल रखकर ही उनकी यह कर्मसाधना जारी थी । बड़े भाई को क्षय की बीमारी ने पकड़ लिया था । वह व्याधि अतिशय बढ़ने से उनके सारे शरीर को ग्रस लेने पर, आर्थिक परिस्थिति अनुकूल न होने पर भी, निरुपाय होकर, उसे मिशन हॉस्पिटल में दाखिल किया था । उन दिनों क्षय यह 'राजरोग' माना जाता था । ऐसे भयंकर रोग से ग्रस्त होकर भाई मृत्यु से लड़ रहा था ।

भाई की बीमारी के कारण उसकी आमदनी बिलकुल नहीं थी । इसलिए घर के सात व्यक्तियों का लालन-पालन का खर्च, घरखर्च और अस्पताल का दवादारू का खर्च-ऐसा तिगुना बोझ उठाने की कसरत श्रीमोटा को अपनी केवल पचास रुपयों की तनख्वाह में करनी पड़ती थी ।

उन दिनों तूर की दाल की मिलें नडियाद में कई थीं । वहाँ से कोई भी तूर की दाल साफ़ करने के लिए घर ले जा सकता था । श्रीमोटा भी वह ले आते और दोपहर में अपने घर के

कामकाज से मुक्त होने के बाद उनकी माँ और भाभी वह दाल साफ़ किया करती थीं। एक मन के पीछे पाँच-छ पैसे इस हिसाब से उस काम के पैसे प्राप्त होते थे। इस तरह, बड़ी मुश्किल से कुटुंब का गुज़ारा हो रहा था।

इस कड़े संघर्ष से कभी-कभी श्रीमोटा विचलित हो जाते, उदास हो जाते थे।

'गरीबी दूर करने के मोह से पैसे कमाने की वृत्ति निर्माण न हो, इसलिए मैंने हाथ में गंगाजल लेकर केवल देशसेवा करने का व्रत अंगीकार किया। अब पीछे लौटने का कोई उपाय नहीं रहा और ये जिम्मेवारियाँ भी निभा नहीं सकता। पैसों का हिसाब-किताब कभी पूरा ही नहीं होता। कैसे निभाना है यह सब कुछ? कैसे मुकाबला करूँ इन अनगिनत बाधाओं का । ये बाधाएँ कभी ख़त्म होंगी भी?' श्रीमोटा के सामने कई बार केवल प्रश्न होते थे। प्रश्न ही प्रश्न! न छूटनेवाले प्रश्न!!

इतना होने पर भी उनका निर्धार दृढ़ था, **'जिस देशसेवा के लिए मैंने कालिज छोड़ा, डिग्री का मोह छोड़ा, भौतिक सुखों को ठुकराया, वह सेवा मैं कभी नहीं छोड़ूँगा। कितने ही बाधाओं के पहाड़ सामने खड़े हों, मैं उन्हें पार करूँगा ही।'**

देशसेवा की यज्ञवेदी पर खड़े रहकर उस यज्ञ में अपनी आहुति देने का उनका निर्धार वज्रलेप था।

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

३१. 'हरि को भजते...'

सभी के सब प्रयत्न निष्फल सिद्ध कर के श्रीमोटा के भाई ने अपनी रोगजर्जर काया का त्याग किया। घर के दुःख-कष्ट

शायद क्या कम थे, मानो इसीलिए, अब शोक ने भी उस घर में प्रवेश किया। उदासीनता के अंधकार से सारा घर भर गया।

भाई गया, लेकिन जाते समय कर्ज़ का भारी बोझ पीछे छोड़ गया। गुपचुप ख़त लिखकर उसने कई व्यक्तियों से पैसे उधार लिये थे, इसकी जानकारी होते ही श्रीमोटा को बड़ा मानसिक सदमा पहुँचा।

श्रीमोटा रोज़ जिस रास्ते से पाठशाला जाते थे, उसी रास्ते पर उनकी मौसी का घर लगता था। श्रीमोटा के भाई ने अपनी इस मौसी से थोड़े-थोड़े कर के पूरे साढ़े सातसौ रुपये क़र्ज़ में लिए थे। मौसी की आर्थिक परिस्थिति बहुत अच्छी थी, इसलिए उसने ये पैसे दिये थे।

अब 'इतनी सारी रकम कहाँ से लानी और कैसे देनी है' इसका भूत श्रीमोटा की गर्दन पर सवार था।

श्रीमोटा का रिवाज था कि वे रोज सुबह सात बजे चाय पीकर घर से निकलते थे और भजन गाते-गाते पाठशाला में जाते थे।

'दीनानाथ तू दयालु नटवर, नहीं छोड़ना मेरा हाथ।'... 'जीवननौका तेरे हाथ में, मुझे सम्हालकर ले जाना।'...ये और ऐसे कई भजन गाते-गाते वे अपनी ही मस्ती में रास्ता काटकर पाठशाला जाते थे।

आज भी वे इसी तरह भजन गाते-गाते जा रहे थे। अचानक उन्हें पुकार सुनायी दी। - 'ए चुनीलाल, रुकना।'

श्रीमोटा ने गर्दन उठाकर आवाज़ की दिशा में दृष्टि की। पहली मंज़िल पर अपने घर की बारी में मौसी खड़ी थी।

'क्या है मौसी?' उन्होंने पूछा।

गुस्सा होकर मौसी बोली, 'मेरे पैसे लौटा दे जल्दी, कितने दिन हो गये हैं ।'

गिरी हुई आवाज़ में वे बोले, 'दूँगा मौसी, मैं सचमुच ही तेरी पाई-पाई चुकती करूँगा।'

जवाब देकर वे चलने लगे । जवाब तो दिया, लेकिन 'वे पैसे कहाँ से लाने हैं ?' इस प्रश्न का उनके पास कोई जवाब नहीं था ।

पाठशाला जाते समय फिर से एक बार मौसी ने उन्हें एक दिन पुकारा । वह क्या पूछनेवाली है, यह उन्हें मालूम ही था, फिर भी उन्होंने पूछा, 'क्या मौसी ? क्या काम है ?'

मौसी कड़वाहटभरे स्वर में बोली, 'नालायक, जानते हुए भी अनजान बनता है ? मेरे पैसों का क्या हुआ ?'

'थोड़े दिनों में ही दे दूँगा' वे बोले और नीचे गर्दन झुकाकर भारी पाँव लेकर चलने लगे । रोज़-रोज़ की यह डाँट-फटकार, ये कड़वे बोल और क़र्ज़ के पैसों के विचार इनसे आज-कल उनका मन बहुत चंचल-अशांत रहता था । उन्हें विचार आते, 'क्या सार है जीने में ? ऐसे हल न होनेवाले सवाल भगवान हम गरीबों से ही क्यों पूछता है ?'

फिर से दो-तीन बार वही होता रहा । मौसी का पूछना और श्रीमोटा का 'दूँगा' कहना जारी रहा ।

एक दिन मौसी का क्रोध आसमान पर जा पहुँचा । 'आने दे उसे । आज ऐसी लाज निकालती हूँ कि बस । 'दूँगा, दूँगा कर के सिर्फ़ झूठी तसल्ली दे रहा है । अगर दे नहीं सकता, तो पैसे लिये ही क्यों ? पैसे क्या पेड़ पर लगते हैं ?'-मौसी के अंदर क्रोध धधक रहा था ।

थोड़े ही समय में रोज़ की तरह भजन गाते-गाते श्रीमोटा

वहाँ आ पहुँचे। रास्ते पर मौसी उनकी राह देखते हुए खड़ी थी। उसने उनका हाथ पकड़कर उन्हें रोका और कर्कश आवाज़ में वाक्बाण चलाने लगी।...'ए चुनीलाल, आज आखरी बार कहती हूँ तुझसे। मेरे पैसे दे देना, नहीं तो मेरे जैसी बुरी कोई नहीं। कलमुए को सिर्फ़ भजन गाना ही आता है । यह सब आडंबर है तेरा। इतना धार्मिक कहलाता है तो मेरा पैसा क्यों नहीं चुकाता ? नालायक, ढोंगी। तुझसे पैसे वसूल किये बिना मैं नहीं रहूँगी। पाई-पाई वसूल करूँगी।...'

क्रोध में क्या बक रही थी, इसकी मौसी को सुध-बुध नहीं थी । उसकी चिल्लाहट सुनकर रास्तेपर भीड़ जमा हो गयी। सुबह का समय और बाज़ार का दिन होने से लोग क़ाफ़ी थे । यह मुफ्त का तमाशा देखने के लिए उन दोनों को घेरकर सब लोग खड़े थे।

मौसी के मर्मभेदक और कटु वाक्बाण श्रीमोटा सुन रहे थे। उसके शब्दों से उनके हृदय की छलनी हो रही थी। यह मानहानि, यह अपमान सहने से तो अच्छा होता यदि धरणीमाता मुझे सीता की तरह अपने अंदर समा लेती । हे भगवान ! यह क्या बीत रही हैं मुझ पर ? क्या जवाब दूँ मैं ? कैसे दूँ पैसे ? कहाँ से दूँ ? किस से माँगू ?'-उनकी आँखों से आँसू टपटप गिर रहे थे। घायल होकर, विद्ध होकर गिड़गिड़ाकर वे ईश्वर से प्रार्थना कर रहे थे।

मौसी के पाँव पकड़कर रोते-रोते श्रीमोटा बोले, 'मौसी, मैं दे दूँगा सब पैसे, जल्द ही दूँगा, मुझ पर विश्वास रखना।'

अपने शीसम जैसे भारी हो गये हुए पाँव खींचते-खींचते और रोते-रोते श्रीमोटा चलने लगे। भीड़ से रास्ता निकालकर वे पाठशाला की ओर चलने लगे, भजन गाते-गाते उस परमप्रभु को रिझाने लगे, दया की और कृपा की भीख माँगने लगे।

आज उनके भजन में हृदय निचोड़नेवाली आर्तता-आर्द्रता, कारुण्य था।

'हरि को भजनेवाले किसीकी लाज गयी हो, ऐसा आजतक जाना नहीं' ऐसा तू कहता है, तो फिर, मेरी लाज भी अब तेरे ही हाथ में है, उसकी रक्षा करना प्रभो। हे भगवान, तूने प्रह्लाद, ध्रुव, द्रौपदी, मीरा, नरसिंह सब की लाज रखी है। मुझे मदद करना और बिरद सिर सम्हालना, नहीं तो तेरे ही नाम को कालिमा लगेगी रे।...' श्रीमोटा स्वयं प्रार्थना बन गये थे और अब भक्त की नहीं बल्कि उस भगवान की ही परीक्षा थी।

पाठशाला पहुँचे, पर श्रीमोटा का पढ़ाने में बिलकुल ध्यान नहीं था। शाम को घर लौटने के बाद कुछ खाये-पिये बिना वे वैसे ही पड़े रहे, जलते रहे, प्रार्थना करते रहे, आँसू बहाते रहे।

ऐसी व्यग्र मानसिक दशा में कुछ दिन बीत गये और एक दिन सुबह पोस्टमेन ने एक रजिस्टर्ड पैकिट श्रीमोटा के हाथ में रखा। एक अनजान व्यक्ति ने उन्हें साढ़े सातसौ रुपये भेजे थे, जितने मौसी को देने थे, उतने ही।

पैसे पाने के बाद भी मौसी कटु स्वर में बोली, 'रास्ते में तेरी इतनी आबरु निकाली इसीलिए तूने पैसे दिये, नहीं तो तू क्या देनेवाला था ? पैसे थे, तो भी न देकर केवल 'दूँगा, दूँगा' ही कहता था न ।

श्रीमोटा ने इस पर कोई जवाब नहीं दिया। उनके माथे पर का बोझ दूर होकर उनका मन अति हलका हो गया था । उनकी लाज रखनेवाला वह भजन तेज से चमचम करते हुए शोभायमान हो रहा था, भजनमालिकारूपी हार में... कौस्तुभमणि की तरह।

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

३२. जीवनदान

मौसी का क़र्ज़ा चुकाने से भार हलका हुआ तो भी, अब भी बहुत-से लोगों के हिसाब पूरे करने थे ।

'इन पैसों का इंतज़ाम कैसे करें ? व्रतस्थ होने के कारण बड़ी नौकरी करना मुमकीन नहीं है । तनख्वाह की राशि घरखर्च को भी पूरी पड़ती नहीं है, फिर तो उसमें से बचाकर थोड़े-थोड़े पैसे जमा कहाँ से और कैसे लाना ?'-ऐसे प्रश्नों के और विचारों के भँवर में फँस जाने के बाद श्रीमोटा निराश हो जाते, हृदय में घबराहट सी होने लगती, मस्तक की नसें खिंची जाती, कोई अंदर हथौड़े से ठोंक रहा हो ऐसा लगने लगता और फिर पूरा शरीर तन जाता । यह मानसिक व्यग्रता और तनाव बढ़ता गया और उसमें से उन्हें 'फिट्स' आने की बीमारी शुरू हुई ।

हिस्टेरिया की वजह ये फिट्स आती थी, लेकिन वे कब आएगी यह कहना मुश्किल था । कभी चलते-चलते ही वे फिट्स का शिकार होकर गिर पड़ते या कभी स्कूल में पढ़ाते-पढ़ाते ही वे गिर जाते ।

कामवशात् कहीं जाना पड़े तो उसके लिए श्रीमोटा साइकिल का उपयोग करते थे । बहुत बार वे साइकिल पर से भी फिट्स की वजह से गिर पड़ते थे । सारा सामान रास्ते पर बिखर जाता। उनके पहने हुए कुर्ते की जेब में कई बार स्कूल के या आश्रम के पैसे भी रहते, लेकिन कभी भी कुछ भी विपरीत नहीं हुआ। भगवान की तरह कोई-न-कोई आकर उनकी मदद करता, उनका सामान उठा लेता, उनकी बगल में बैठकर उन्हें सुध में लाने की कोशिश करता और उनके सुध में आने के बाद उनका सामान सौंपकर चला जाता ।

श्रीमोटा के शरीर को फीट्स की बीमारी लगी थी, तब आराम लेने के निमित्त से वे दो बार नर्मदामैया के तट पर गये थे । एक बार उनके साथ श्री महेशभाई मेहता और श्री भानुप्रसाद पंड्या थे । दूसरी बार वे अकेले थे । तब नर्मदामैया के सुरपाणेश्वर क्षेत्र में मोखड़ीघाट के उस पार श्रीरणछोडरायजी के मंदिर में थोड़े दिन रहना हुआ था । वहाँ एक साधु-महात्मा रहते थे । श्रीमोटा का स्वभाव सेवाभाव का था ही । इससे वे उस साधु-महात्मा की सेवाचाकरी बड़े प्रेम से करते थे । श्रीमोटा वहाँ रहे थे, उस समय दरमियान वहाँ भी चार-पाँच बार फीट्स के हमले आये थे ।

उस साधु-महाराज के पास से विदाय लेते समय श्रीमोटा उस साधु-महाराज के पैरों में पड़े और आशीर्वाद माँगे । उस साधु-महात्मा ने श्रीमोटा को कहा 'बेटा, तू 'हरि:ॐ' का जापस्मरण कर। इससे तेरी बीमारी मिट जायेगी ।'

श्रीमोटा को उस समय श्रीभगवान के स्मरण में विश्वास न था। उन्होंने ऐसा सोचा था कि इस साधु-महात्माने यदि जंगल की कोई जड़ी-बूटी दी होती तो बीमारी मिट जाती । फिर उस साधु-महात्मा ने श्रीमोटा को ऐसा भी कहा था कि एक वर्ष के बाद तुझे कोई सद्गुरु मिलेंगे । वे तेरे जीवन का विकास करेंगे । किन्तु उस समय 'जीवन' और 'विकास' ये श्रीमोटा के लिए केवल शब्द ही थे।

फीट्स की बीमारी से श्रीमोटा ऊब गये थे । इसलिए उस साधु-महाराज के पास से वापिस लौटते समय नर्मदामैया में कूद कर शरीर का अंत लाने का प्रयत्न भी किया था । इसके लिए गरुडेश्वर (उस समय का जिला भरूच, वर्तमान जि. नर्मदा, गुजरात) गाँव से आगे जाते-जाते नर्मदामैया के किनारे की एक ऊँची कगार पसंद की थी, जो करीब १००-१५० फूट ऊँची थी । उस पर से

श्रीमोटा ने कूदकर अपना शरीर नर्मदामैया को समर्पण किया था। किन्तु नर्मदामैया ने श्रीमोटा के शरीर का समर्पण अस्वीकार कर के उनके शरीर को वापिस उस कगार पर दूर फेंक दिया । श्रीमोटा का इस तरह चमत्कारिक बचाव हुआ ।

इस प्रसंग के बाद श्रीमोटा वडोदरा उनकी आध्यात्मिक माता के घर जाते हैं । वहाँ उनके घर में सीढ़ी पर से गिरते समय नर्मदामैया के किनारे मिले साधु-महात्मा चमत्कारिक रूप से उपस्थित होकर रोगमुक्ति के लिए भगवान का स्मरण नहीं करने के लिए डाँटते हैं । बाद में श्रीमोटा बताते हैं कि उनकी उस आध्यात्मिक माता की सलाह भी नहीं मानी थी, किन्तु पू. गांधी बापू की सलाह मानकर 'हरि:ॐ' का स्मरण नियम से लेना शुरू किया और तीन-चार महीने में फीट्स की बीमारी बिलकुल मिट गई ।

इससे मेरे लिए जीवन में नया मार्ग प्रभुकृपा से खुल गया। जीवनविकास की साधना प्रारंभ हुई । एक वर्ष के बाद सचमुच अहमदाबाद में साबरमती के किनारे श्रीमोटा को साधना के मार्ग में विकसित करनेवाले एक सद्गुरु भी मिल गये ।

उपर्युक्त हक़ीकत 'जीवनदर्शन' नामक पुस्तक में श्रीमोटाने स्वयं लिखि है उसके अनुसार है ।

श्रीमोटा के ये प्रसंग उनकी ध्वनिमुद्रित वाणी में भी आये हैं। उनके ये प्रसंग श्रीमोटावाणी नं. ८ और नं. ९ में छपे हुए है । ये प्रसंगों के वर्णन के घटनाक्रम में कुछ अंतर है। 'जीवनदर्शन' पुस्तक में श्रीमोटा ने बताया है कि वे आराम करने के हेतु नर्मदातट पर गये थे । वहाँ मोखडीघाट के उस पार श्रीरणछोडरायजी के मंदिर में उस साधु-महाराज से मिले थे, जिन्होंने 'हरि:ॐ' मंत्र का नामस्मण करने को कहा था। वहाँ से वापिस लौटने समय गरुडेश्वर में आत्मसमर्पण करने

का निश्चय किया । उसमें उनका चमत्कारिक बचाव हुआ । बाद वे वडोदरा अपनी आध्यात्मिक माँ के वहाँ गये थे ।

जब कि उनकी ध्वनिमुद्रित वाणी के पुस्तक श्रीमोटावाणी नं. ८ और नं. ९ में वे बताते है कि वे नडियाद से निकलकर सीधे गरुडेश्वर गये थे । वहाँ नर्मदामैया की ऊँची कगार पर से नदी में कूदे थे और चमत्कारिक बचाव हुआ । बाद में किसी साधुने 'हरि:ॐ' का स्मरण करने को कहा था । किन्तु उन्होंने नहीं किया । किन्तु वे वडोदरा उनकी आध्यात्मिक माँ के वहाँ गये । उसके बाद में पू. बापू की सलाह अनुसार उन्होंने 'हरि:ॐ' का स्मरण करना शुरू किया ।

धीरे-धीरे फिट्स का प्रमाण बढ़ता गया और फिर श्रीमोटा अंदर से पूरे टूट चुके । हताशा-निराशा की खाई में वे डूब गये। उनके मन में आया, 'देश-विदेश की इतनी दवाईयाँ की, फिर भी कुछ नहीं हुआ । यह बीमारी दूर होगी ऐसा लगता नहीं है । अब इस बीमारी से छुटकारा पाने का केवल एक ही मार्ग बचा है । अपने इस व्याधिग्रस्त शरीर का भोग नर्मदामाता को देना ही उचित है । सभी शरणागतों को वह स्वीकार लेती है, मुझे भी समा लेगी, मुझे भी गोद में ले लेगी ।'

निश्चय दृढ़ होने के बाद वे गरुडेश्वर (तहसील नांदोद, जिला नर्मदा, गुजरात) के नज़दीक नर्मदामाता के किनारे पर चले गये। किनारे की बाजू में एक ऊँची कगार पर वे चढ़ गये और नर्मदामाता को निहारकर देखने लगे।

नर्मदामाता का विशाल जलौध गंभीरता से बह रहा था। वातावरण पूर्णत: निस्तब्ध था। नर्मदामैया को मन से वंदन कर के दूसरे क्षण ही श्रीमोटाने अपना शरीर नदी के पात्र में झोंक दिया।

उनके शरीर को नर्मदामाता के जल का ठंडा स्पर्श हुआ और फिर एक अकल्पित और अघटित घटा । नर्मदामैया के प्रवाह में से एक जोरदार बवंडर उठा और उसने उनके शरीर को उठाकर नदी किनारे के १००-१५० फूट ऊँचे कगार पर से कहीं दूर फेंक दिया । एक क्षणमात्र में यह सब बिजली की तरह घटित हुआ।

नर्मदामैया के प्रवाह में से उठा हुआ उस बवंडर के मध्य में श्रीमोटा को रूपवान, दैदिप्यमान, तेजस्वी, सालंकृत ऐसे स्वरूप में नर्मदामाता ने प्रत्यक्ष दर्शन दिया। अद्‌भुत, अवर्णनीय और शब्दातीत ऐसा वह दर्शन था।

उनका शरीर नदी के उपर कगार पर से गिरते ही वे अपनी सुध-बुध खो बैठे।

कुछ समय के बाद वे होश में आये । नर्मदामैया के अद्‌भुत दर्शन का उन्हें पुनर्स्मरण हुआ।

उन्हें विचार आया, 'मेरा दृढ़ निश्चय होते हुए भी नर्मदामाता ने मुझे जीवनदान दिया है। *'By His grace, I am meant for somethig !'*

'भावना के प्रवाह में बहकर, निराशा से ग्रस्त होकर मैं यह क्या करने जा रहा था ? मैं किनसे भाग रहा था ? बीमारी से, कुटुंबियों से, जग से या अपने आपसे ?...ऐसा करने का मुझे अधिकार है क्या ?...'

ग़लत निर्णय के वश होकर आत्मघात का कृत्य करने पर भी नवजीवन देनेवाले परमप्रभु की अतर्क्य लीला से श्रीमोटा का हृदय भर आया ।

नर्मदामाता मानो उन्हें बता रही थी, 'मेरे लाल । तू लौट जा। इस जगत के लिए तुझे जीना चाहिए । हताश न होना । परिस्थिति

* 'निश्चित ही प्रभुकृपा से इस शरीर का कुछ प्रयोजन होगा ।'

का मुकाबला करना, तो ही तू मेरा सुपुत्र कहलाने के लायक है। मेरी ममता और प्रेम तुझ पर बरस ही रहे हैं । दृढ़ बन और मार्गक्रमण कर । इस जगत में शाश्वत कुछ भी नहीं है, न सुख न दुःख, न बीमारी, न स्वास्थ्य । ये प्रारब्धभोग कभी-न-कभी ख़त्म होंगे ही और उज्ज्वल यश का अधिकारी तू बनेगा ही । बेटा, डरना नहीं, मैं तेरे साथ हूँ । जा, तुझे मेरा आशीर्वाद है ।'

इस घटना के बाद वे बताते हैं कि उस नर्मदाक्षेत्र में उनको कोई साधु-महाराज मिले । जिन्होंने फीट्स की बीमारी मिटाने के लिए 'हरिःॐ' मंत्र का स्मरण करने को कहा था। किन्तु श्रीमोटा को विश्वास न था। इस लिए उन्होंने 'हरिःॐ' मंत्र का स्मरण नहीं किया।

बाद में वडोदरा अपनी आध्यात्मिक माँ के वहाँ गये । वहाँ रहते समय एक बार फिर फिट्स का हमला हुआ और वे सीढ़ियों से लुढ़कते हुए नीचे गिर पड़े। कुछ समय वे अपना होश खो बैठे, शरीर को चोट लगी और थोड़ा-बहुत खून भी निकल आया। थोड़ी देर बाद जब वे होश में आ रहे थे, तब उसी समय उन्हें नर्मदा किनारे के उस साधुमहाराज का दर्शन हुआ। उन्होंने श्रीमोटा से कहा, 'अरे ! भगवान का नामस्मरण कर के तो देख । प्रयोग कर लेने में तेरा क्या जाता है ?'

इस दर्शन के बारे में प्रभाबा को बताने पर उन्हें बहुत आनंद हुआ । उन्होंने कहा, 'चुनिया, तू बड़ा भाग्यशाली है । तू अभी से ही नामस्मरण शुरू कर । तेरा रोग जरूर दूर होगा, ऐसा मेरी मनोदेवता मुझसे कह रही है ।'

इतना होने पर भी श्रीमोटाने नामस्मरण शुरू नहीं किया । लेकिन उन्हें पू. गांधीजी पर बहुत विश्वास था । इस लिए पू. गांधीजी को ख़त द्वारा उन्होंने पूछा, 'बापू, मुझे फिट्स की

तक़लीफ़ होती है और नर्मदाकिनारे के एक साधु ने नामस्मरण से यह रोग दूर होगा ऐसा बताया है । क्या यह सच है ?'

उत्तर में गांधीजी ने लिखा, 'भगवान के नाम में बहुत शक्ति है । उसके लिए असंभव ऐसा कुछ भी नहीं है । तू श्रद्धापूर्वक नाम लेते रहना । तेरा रोग निश्चित ही दूर होगा ।'

'अब नामस्मरण करना चाहिए', ऐसा श्रीमोटा के अंतर में दृढ़ निश्चय हुआ और अखंडितता से 'हरिःॐ' के स्मरण में डूबे रहने को वे प्रयत्नशील रहने लगे । नाम की धारा बढ़ती चली और नयी शक्ति, नयी उमंग और दुर्दम्य आत्मविश्वास से वे अंतर्बाह्य भरने लगे ।

नामस्मरण घनीभूत होता गया और शनैः शनैः बीमारी चार-छ महीनों में ही भाग गयी ।

नाम में कितनी शक्ति है, यह प्रमाणित हो चुका था ।

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

३३. श्रीबालयोगी महाराज से प्रथम मुलाकात

एक बार हरिप्रसाद कंथारिया श्रीमोटा को मिलने आये । वे नडियाद में रहनेवाले एक सेवाभावी वृत्ति के सज्जन सद्गृहस्थ थे।

श्रीमोटा ने उनका प्रेम से स्वागत किया और पूछा, 'हरिप्रसादभाई, कैसे हो ? और आज कैसे आना हुआ ?'

हरिप्रसादभाई ने कहा, 'भगत, तुम्हें अहमदाबाद में एक 'बालयोगी महाराज' बुला रहे हैं, यह बताने के लिए मैं ख़ास आया हूँ ।'

'मुझे ?'-अचंभित होकर श्रीमोटा ने पूछा, 'मैं तो ऐसे किसी भी बालयोगी महाराज को पहचानता नहीं ।'

हरिप्रसादभाई दृढ़ स्वर में बोले, 'हाँ, हाँ, तुम्हें ही। अहमदाबाद में भद्र जहाँ साबरमती नदी के किनारे पर साधुओं का अखाड़ा है। वहाँ वे पधारे हुए हैं । अवधूत वृत्ति के सिद्ध महात्मा है । बंगाली शरीर है और बालपिशाच वृत्ति से सदैव क्रीड़ा करते रहते हैं । पूर्ण अंतर्ज्ञानी हैं । अपने को कुछ भी कहना-बताना पड़ता नहीं, वे खुद ही बता देते हैं सब कुछ। लोगों की भीड़ जमी रहती है। मैं दर्शन करने गया तब बार-बार कह रहे थे, 'नडियाद से चुनीलाल भगत को बुलाओ । नडियाद से चुनीलाल भगत को बुलाओ ।' और इसीलिए यह बताने के लिए केवल, मैं यहाँ तुरंत चला आया ।'

मन से हरिप्रसादभाई बालयोगी महाराज के पास कब के पहुँच चुके थे और अत्यंत भावविह्वल होकर बोल रहे थे ।

श्रीमोटा का अचरज अब तक कम नहीं हुआ था। 'कौन हो सकते हैं ये साधुमहाराज ? मेरा उनसे पूर्वपरिचय न होते हुए भी उन्होंने मुझे बुलाया, यह आश्चर्य नहीं तो और क्या है ? क्या कारण हो सकता है ? कौन-सा काम हो सकता है ?'...एक के बाद एक बहुत-सारे सवाल खड़े हुए ।

श्रीमोटा को विचारों में डूबा हुआ देखकर हरिप्रसादभाई ने गिड़गिड़ाकर विनती की, 'भगत ! सिद्ध महात्मा खुद बुला रहे हैं तो ज़रूर जाना चाहिए और उनसे मिलना चाहिए ।... फिर भी, आगे तुम्हारी मर्ज़ी ।... मैं अब जाता हूँ ।'

जाते-जाते हरिप्रसादभाई ने श्रीमोटा का हाथ प्रेम से थामकर पाँच रुपए का नोट जबरन् उनके हाथों में रख दिया। उन्होंने कहा, 'भगत, अहमदाबाद जाने का मन हुआ और पैसे न हो, तो उससे अड़चन खड़ी न हो, इसलिए यह रखो ।'

हरिप्रसादभाई चले गये । श्रीमोटा हाथ में रखे हुए नोट को देखते रहे । 'क्या करना', 'क्या न करना' उसका निर्णय हो नहीं रहा था । आखिर, 'अंतर' में से जैसी प्रेरणा होगी वैसा करने का उन्होंने निश्चय किया और उस विषय के बारे में सोचना बंद करके अपने नित्यक्रम में जुड़ गये ।

दिन गुजरने लगे लेकिन उनके अंतर में बालयोगी महाराज के शब्द-'नडियाद से चुनीलाल भगत को बुलाओ' गुंजन कर रहे थे, उनका पीछा कर रहे थे। मानो कोई अदृश्य शक्ति उन्हें जबरन् खींच रही थी, लोहे के कण को लोहचुंबक खींचे उसी तरह। धीरे-धीरे उन शब्दों का आकर्षण बढ़ता ही गया और आखिर इस रहस्य को सुलझाने के लिए उन्होंने अहमदाबाद जाना तय किया और तीन-चार दिनों की रज़ा लेकर वे निकल पड़े ।

वहाँ पहुँचने पर बालयोगी महाराज को ढूँढ़ने को समय नहीं लगा । उनके पास जाकर चरणों में प्रणाम कर के श्रीमोटा सामने जा बैठे ।

उन्हें देखकर महाराज हँस पड़े और बोले, 'आ गया बच्चा। इधर आ, मेरी पास बैठ ।' श्रीमोटा को उन्होंने अपने पास में ही बिठाया ।

पंछी का छोटा बच्चा जैसे पेड़ की एक डाली से दूसरी डाली पर कूदते हुए खेलता हो, वैसी ही बालयोगी महाराज भी अपनी ही मस्ती में इधर-उधर कूदते रहते थे, बच्चों की तरह खेलते रहते थे । कभी-कभी नदी के पानी में डुबकी लगाकर छोटे बालक की तरह पानी से खेलते रहते थे, पानी उछाल-उछालकर चित्कारते रहते थे । वे किस समय क्या करेंगे यह बताना कठिन ही नहीं बल्कि असंभव था । इतना करने पर भी उनके शरीर को थकान

जैसा कुछ भी न था । असीम शक्ति, स्फूर्ति, चैतन्य और आनंद की वे साक्षात् बालमूर्ति थे ।

उनके दर्शन के लिए अनगिनत लोग आते रहते । फल, फूल, पुष्पहार, मिठाइयाँ, पेड़े-बर्फी ऐसा कुछ-न-कुछ ले आते । बालयोगी महाराज वह सब श्रीमोटा को दे देते थे और आज्ञा करते थे, 'खा जा बच्चा ।' और श्रीमोटा वह सब कुछ खा जाते थे ।

दिनभर में कम-से-कम दस-बारह सेर इतनी मिठाईयाँ, भोजन की थालियाँ वे हजम कर सकते थे । पेट आकंठ भरा हुआ हो और उन्होंने खाने की आज्ञा की, तो श्रीमोटा सब कुछ हजम कर सकते थे, आधे-आधे घंटे में भी हजम कर सकते थे यह बड़ा आश्चर्य था । अंतिम दिन तो ढेर सारी तीखी मिर्च की खिचड़ी भी महाराज ने श्रीमोटा को खिलायी ।

कहते-कहते सात-आठ दिन गुजर गये, मानो किसी स्वप्न में ही श्रीमोटा विचरण कर रहे थे, अनोखे दिव्य आनंद में डूबे हुए थे ।

इतने दिन गुजर गये हैं, यह ख़्याल आते ही उनका मन नडियाद लौटने को आतुर हुआ । क्योंकि उन्होंने छुट्टी तो सिर्फ़ तीन-चार दिनों की ही ली थी । वे तुरंत महाराज के पास गये और लौटने के लिए अनुज्ञा की माँग की ।

'ठहर जा, ठहर जा बच्चा, घबरा मत । अभी तो तुझे दीक्षा देनी बाकी है । इसलिए ही मैंने तुझे बुलाया है ।'-अपनी ही मस्ती में रहनेवाले बालयोगी महाराज ने उनसे कहा ।

श्रीमोटा ने नम्रता से बताया, 'बापजी, मैं हूँ नौकरदार आदमी । मेरे पीछे कुटुंब की और पाठशाला की जिम्मेवारी है । यहाँ आने को सात-आठ दिन गुजर गये हैं । अब तो मुझे जाना ही चाहिए ।

इसलिए आप ही मेरे गाँव में आ जाएँ तो मुझपर बहुत एहसान होगा ।'

यह सुनकर महाराज ने कुछ प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की, मौन ही रहे । उन्हें प्रणाम कर के श्रीमोटा नडियाद लौट आये और अपने काम में फिर से जुड़ गये ।

नदी में बाढ़ आते ही उसके प्रवाह की दिशा बदल जाए वैसा स्थित्यंतर श्रीमोटा में प्रवेश कर चुका था और उनकी जीवननौका श्रीसद्‌गुरु के चरणकमलों की ओर गतिमान हुई थी । श्रीसद्‌गुरु ने ही उसे अपनी ओर खींचना प्रारंभ किया था ।

जहाँ से कोई वापसी नहीं, ऐसे अंतिम प्रवास का श्रीगणेश हो चुका था ।

✤ ✤ ✤

॥ हरिः ॐ ॥

३४. 'बंगला, एकांत और जलाशय !'

मीराखेडी में 'अंत्यज सेवा मंडल' की कार्यवाहक सभा में सम्मिलित होने के लिए श्रीमोटा घर से निकले । रेलवे स्टेशन पर आकर दाहोद का टिकट निकाला और अचानक उनकी दृष्टि पास में ही एक कोने में बैठे हुए बालयोगी महाराज की ओर गयी ।

उन्होंने वहाँ जाकर तुरंत ही बालयोगी महाराज को भावपूर्वक साष्टांग दंडवत् किया ।

'बच्चा, किधर जा रहा है ?'-उन्होंने पूछा ।

'मीराखेडी में मिटिंग को जा रहा हूँ ।'-दोनों हाथ जोड़कर श्रीमोटा ने जवाब दिया ।

'गधा कहीं का । मैं मिलने आया और तेरेकु जाना है ? वापस कर टिकट ।' उन्होंने फर्माया ।

श्रीमोटा ने टिकट वापस किया और 'मीराखेडी आना नामुमकिन है' ऐसा तार भी कर दिया । बाद में महाराज को घर पधारने के लिए उन्होंने प्रार्थना की । महाराज ने वह मंज़ूर की ।

घर आने पर बालयोगी महाराज ने कहा, 'बच्चा, मैं तुझे दीक्षा देने आया हूँ । मुझे एक बड़ा बंगला चाहिए ।'

स्तंभित होकर श्रीमोटा ने बताया, 'बापजी । मैं हूँ एक गरीब आदमी और ऐसा बड़ा बंगला दे सके ऐसे बड़े-बड़े लोगों से मेरी पहचान नहीं है ।'

उनके इस जवाब से महाराज बहुत क्रोधित हुए और हाथ उठाकर उन्हें पीटने को दौड़े । गालियाँ बरसाते हुए उन्होंने कहा, 'साला, तू तो गधा है, तेरे में कुछ अक्ल नहीं, बुद्धू है... ।' बाद में वे बोले, 'देख । सिर्फ़ बंगला ही काफ़ी नहीं, मुझे एकांत भी चाहिए ।'

'अरे ! प्रभु ! यहाँ ऐसा बड़ा बंगला मैं पा सकूँगा भी क्या, इसकी संभावना नहीं है, और आप मुझे एकांत में बंगले के बारे में कह रहे हैं ।...' श्रीमोटा ने मन-ही-मन शिकायत की ।

उनके मन में उत्पन्न हो गया हुआ यह विचारतरंग पढ़कर महाराज की सवारी फिर से क्रोधित हुई और गालियों का प्रसाद देते हुए उन्होंने डटकर कहा, 'सुन, बड़ा बंगला चाहिए, एकांत में चाहिए और वह भी जलाशय के पास । अब जा और इसका इन्तज़ाम कर के मेरी पास आ ।'

महाराज की शर्तें बढ़ रही थीं । 'अब यह बनेगा कैसे ?' श्रीमोटा के सामने यक्षप्रश्न खड़ा हुआ ।

बालयोगी महाराज को नमस्कार कर के रोज़ की तरह वे पाठशाला में जाने को निकल पड़े । पाठशाला के रास्ते पर बीच में कासमसेठ

नामक प्रतिष्ठित मुसलमान सद्‌गृहस्थ का घर लगता था । वे रोज़ अपने घर के बरामदे में श्रीमोटा की राह देखते खड़े रहते । श्रीमोटा घर के पास से गुजरने लगते, तब वे कासमसेठ को 'अस्सलाम आलयकुम्' कहकर उन्हें सलाम करते और कासमसेठ भी वह सलाम लौटाते । इस तरह उन दोनों का नित्यक्रम रहता था ।

लेकिन आज 'एक बड़ा बंगला, एकान्त, जलाशय' इन विचारों में डूबे हुए श्रीमोटा सलाम लिये-किये बिना ही उनके घर के सामने से गुजर गये । आज पहली बार ऐसा क्यों हो रहा है, इसका कासमसेठ को बहुत ही आश्चर्य हुआ । आगे जाने पर श्रीमोटा को स्मरण हुआ कि आज सलाम करना रह गया । वे तुरंत ही पीछे मुड़ गये और नज़दीक आकर उन्होंने कासमसेठ को सलाम किया ।

अचंभित कासमसेठ ने पूछा, 'भगत, आज सलाम कैसे भूल गये ? कौन से विचार में थे तुम ?'

'मेरे घर में एक औलिया आये हुए हैं और उन्होंने नामुमकिन ऐसी माँग की है, उसी के विचारों में डूबा हुआ था मैं ।' श्रीमोटा ने जवाब दिया ।

'आप मुझे सब कुछ विस्तारपूर्वक बताओ तो सही । औत्सुक्यपूर्वक कासमसेठ ने पूछा ।

शुरू से लेकर अंत तक सब किस्सा सुनाकर श्रीमोटा ने अंत में निराश होकर पूछा, 'अब तुम ही बताओ कासमसेठ, मुझ गरीब को यह मुमकीन है क्या ?'

इस पर हँसकर कासमसेठ ने आश्वस्त स्वर में कहा, 'अरे, भगत । इसमें इतना चिंतित होने की क्या बात है ? मिशन के दवाखाने के करीब ही अपना 'हाजी मंज़िल' बंगला है, आसपास लोगों की बस्ती भी नहीं है और बगल में ही 'राम तालाब' है।

तुम्हारे औलिया की सभी माँगे पूरी हो रही हैं। तुम इस्तेमाल करो वह बंगला, लो यह चाभी। चाहे जितने दिन खुशी से रखो उस औलिया को अपने बंगले में।'

अल्प समय में ही और अकल्पित रीति से प्रश्न सुलझाने के कारण श्रीमोटा आनंद से फूले न समाये। 'इसी क्षण जाकर बालयोगी महाराज के चरणों पर मस्तक रख दूँ' ऐसा भाव उनके हृदय में प्रगट हुआ, लेकिन 'पहले .फर्ज़' इस निष्ठा के कारण अपनी भावोर्मि अंदर ही दबाकर वे पाठशाला गये।

शाम को घर लौटने के बाद गद्‌गद होते हुए पहले उन्होंने महाराज को भक्तिभावपूर्वक प्रणाम किया, और बाद में 'किस तरह बंगले का इन्तज़ाम हुआ' यह उन्हें विस्तारपूर्वक बताया।

अब दीक्षा का क्षण करीब आ चुका था।

अनुभूतिसंपन्न शक्तिशाली दाता की ओर से पुरुषार्थी पक्व साधक को ईश्वरत्त्व का बीज दान दिये जाने के प्रसंग के साक्षी होने के लिए 'हाजी मंज़िल की वास्तु' और 'वह क्षण' दोनों ही अधीर होकर प्रतीक्षा कर रहे थे।

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

३५. दीक्षा

'हाजी मंज़िल' बंगला बहुत भव्य और हवादार था। आसपास बस्ती न होने के कारण वहाँ लोगों की भीड़भाड़ और शोरगुल नहीं था। वातावरण में केवल शांति और शांति ही भरी हुई थी। श्रीमोटा ने बंगले में प्रवेश किया। आज बसन्त-पंचमी का दिन था। सारी सृष्टि आनंदोत्सव मना रही थी।

बंगले में बालयोगी महाराज उनकी राह ही देख रहे थे। उनके पहुँचते ही महाराज ने आज्ञा की-'मेरे सामने आसन लगाकर बैठ, ध्यान लगा और निर्विचार हो जा।'

श्रीमोटा तुरंत ही पद्मासन में बैठ गये। ध्यान लगाकर निर्विचार होने की उन्होंने कोशिश की लेकिन जैसे तूफान मिट्टी और सूखे पत्तों को जमीन से उठाकर आकाश को दूषित और कलुषित बना देता है, वैसे ही तरह-तरह के विचार मन में उठ ही रहे थे। अंततः उन्होंने आँखें खोल दी और कहा, 'नहीं हो रहा है।'

'क्या कह रहा है?'

'जी हाँ! बापजी, विचारशून्य बनना संभव नहीं है, बहुत-सारे विचार आ रहे हैं।'

'ठीक है, तो अब मेरी मूर्ति दृष्टि के सामने रखकर ध्यान लगा,' महाराज ने सलाह दी।

फिर से प्रयत्न हुआ, लेकिन व्यर्थ गया। आँखें खोलकर महाराज की ओर देखते हुए श्रीमोटा ने कहा, 'बापजी, आपकी मूर्ति दृष्टि के सामने रहती है, लेकिन फिर भी विचार तो आते ही हैं।'

बालयोगी महाराज उनकी ओर तीक्ष्ण दृष्टिपात करते हुए बोले, 'मेरी मूर्ति दिखायी देती है और फिर भी विचार आ रहे हैं? इसका अर्थ यह है कि अब भी तुझमें मेरे लिए पूर्ण प्रेम उत्पन्न नहीं हुआ है।...ठीक है, फिर भी कोई हर्ज़ नहीं। तू अब मुझे देख ले, मेरा रूप दृष्टि में समा ले और फिर ध्यान कर।...' बालयोगी महाराज ने फिर से आज्ञा की।

आज्ञा का अमल हुआ, लेकिन इस बार भी निष्फलता ही हाथ आयी । निर्विचार अवस्था प्राप्त नहीं हुई । आँखें खोलकर नैराश्यपूर्ण स्वर में श्रीमोटा ने बताया, 'बापजी, विचार तो आ ही रहे हैं, बल्कि बढ़ गये हैं ।'

तीन बार कोशिश करने के बावजूद भी इप्सित साध्य नहीं हुआ यह देखकर अब बालयोगी महाराज क्रोधित हुए । उन्होंने करीब सात-आठ इंच लंबाई का कील अपने सामान में से बाहर निकाला और वह हाथ में पकड़कर श्रीमोटा के भ्रूमध्य में आज्ञाचक्र के स्थानपर जोर से उसका आघात किया ।

ध्यान लगाने का प्रयत्न व्यर्थ जानेवाला है, इसकी शायद पहले से ही महाराज को जानकारी थी, इसीलिए उन्होंने वह कील अपने पास रखा होगा ।

कील का आघात होते ही श्रीमोटा के अंतर का तूफान शांत हो गया । विचाररूपी धूल जमीन पर बैठ गयी, अवकाश निरभ्र पारदर्शी हो जाए वैसे ही निर्विचार अवस्था प्राप्त हुई । मन का लय हुआ, प्राण स्थिर हुआ और फिर उसका भी लय हुआ । शरीर का होश तो वे पहले ही खो चुके थे । सागर के पानी में पिघल जानेवाले नमक की तरह सब कुछ मिट गया था, शेष सिर्फ़ जागृति-चैतन्यपूर्ण जागृति ।

कुछ समय के बाद श्रीमोटा का होश लौट आया । उन्होंने देखा कि गुरुमहाराज स्वयं उनके पैरों को, बदन को मालिश कर रहे थे । उन्होंने श्रीमोटा से पूछा, 'क्यों बे लड़के, अब विचार आ रहे थे क्या ?'

'नहीं बापजी, विचार-बिचार कुछ न थे । सब कुछ मानो मिट गया हो ऐसी अवस्था थी ।'

'ऐसा कितने घंटों तक बैठा होगा ?'-महाराज ने हँसकर पूछा।

'होगा प्रंद्रह-बीस मिनिट ।'

'नहीं ।'

'घंटा ? आधा घंटा ?'

'अरे ! क्या घंटा, आधा घंटा ?'

'तो फिर...बीस घंटे ?'

'नहीं, तीन दिन गुजर गये हैं ।'-बालयोगी महाराज उन्हें ताकते हुए बोले ।

सुनकर श्रीमोटा को आनंद हुआ कि 'साधना मार्ग में बड़े-से-बड़ा अनुभव मुझे प्राप्त हुआ' लेकिन साथ-साथ हरिजन पाठशाला का काम तीन दिन चूक गया । इसका दुःख भी उन्हें तीव्रता से हुआ ।

बसन्त-पंचमी के दिन दीक्षा प्राप्त होने के बाद बालयोगी महाराज ने श्रीमोटा को बताया, 'पूज्य धूनीवाले दादा (साँईखेडा, तह. गाडरवाडा, जि. नरसिंहपुर, मध्यप्रदेश के पू. श्री केशवानंदजी दादा) की आज्ञा से ही मैं इस तरफ़ आया । तेरे गुरु वे ही हैं। तू उनसे मिलकर उनके आशीर्वाद लेकर आना । वैसी तैयारी कर के ही जाना ।'

'जी बापजी,' श्रीमोटा ने नम्रता से जवाब दिया ।

बालयोगी महाराज आगे बताने लगे, 'बेटा, **तू भगवान का स्मरण अखंड करते रहना, भजन-कीर्तन गाते रहना । लज्जा, संकोच छोड़ देना ।'**

'तू अभय, नम्रता, मौन और एकांत का पालन करते रहना । आत्मनिवेदन करते रहना । जागृति रखकर उठनेवाले हरएक विचार का, वृत्ति का, स्थूल कर्म का और संसार-व्यवहार का समर्पण करते रहना ।'

अनमोल संपदा की तरह श्रीमोटा सद्‌गुरु का एक-एक शब्द हृदय में धारण कर रहे थे । साधनामार्ग आलोकित करनेवाले वे दैवी शब्द थे, उनकी शक्ति से भरे हुए वे संजीवनी शब्द थे ।

दीक्षा प्राप्त हुई और एक अनाथ जीव सनाथ हुआ ।

नन्हें बच्च्वे को उसकी माँ मिल गयी थी और अब दोनों निश्चित थे ।

✤ ✤ ✤

॥ हरि:ॐ ॥

३६. स्मशानवास

बालयोगी महाराज की श्रीमोटा को आज्ञा थी कि, 'घर में नहीं सोना । डर लगे ऐसी भयंकर जगह में सोना ।' इसलिए किसी-न-किसी स्मशान में ही वे रातें गुजारते थे ।

नडियाद में संतराम मंदिर की पिछली ओर रहे हुए स्मशान में वे साधनाहेतु जाते थे । नामस्मरण करते-करते नींद न आए इसके लिए अपनी छाती और पेट वे पेड़ से बाँधकर रखते थे और फिर नामस्मरण, प्रार्थना, ध्यान, भजन, आत्मनिवेदन इस तरह अलग-अलग रीति से भोर तक साधना में जुड़े रहते थे । स्मशान में लकड़ियों का इन्तज़ाम करनेवाली एक बूढ़ी माँ उन्हें रोज़ मटके में ठंडा पानी लाकर दे जाती थी ।

स्मशान में धरणीमाता यही उनका बिछौना रहता था और पत्थर या ईंट का तकिया बनाकर अपने शरीर पर वे छोटी धोती औढ़ लेते थे ।

उस काल में सुविख्यात गोदड़िया स्वामी बहुत बार उस स्मशान में आया करते थे । फिर दोनों का समय तत्त्वचर्चा और सत्संग में आनंदपूर्ण बीत जाता ।

भोर में सूरज की लालिमा फैलने लगते ही वे अपनी साधना पूरी कर के घर की ओर चल पड़ते और फिर नन्हें शिशु की तरह माँ की गोद में घुसकर शांति से सो जाते । इतने बड़े होते हुए भी माँ की गोद में वे एक निरागस, निर्दोष बालक बन जाते थे ओर अनोखा आनंद प्राप्त किया करते थे । अपनी माँ के प्रति उनका बहुत भाव था, बहुत प्रेम था । अपने लाड़ले चुनिया को डाँटकर माँ उन्हें प्रेम से फटकारती और कहती-'अरे कलमुए, इतना भैंसे जैसा बड़ा हुआ तो भी माँ की गोद में सोता है ? शरम नहीं आती तुझे ? तू क्या अब छोटा है ?'

हँसकर माँ की डाँट-फटकार अनसुनी कर के श्रीमोटा तो माँ को और ही कसकर सो जाते ।

✤ ✤ ✤

॥ हरि:ॐ ॥

३७. 'बोकड'

उस समय नडियाद में 'बोकड'* इस नाम की एक बहुत ही भयंकर जगह थी । बबूल के पेड़ों से वह भरपूर भरी हुई थी। ऐसे डरावने स्थान में दिन में जाना भी ऐरा-गैरा नत्थु खैरा का काम नहीं था। पुलिस भी वहाँ जाने को हिचकिचाती थी ।

अपनी एकान्त साधना के लिए ऐसी जगह सर्वोत्तम है, ऐसा निश्चित कर के श्रीमोटा ने कई रातें वहाँ भी गुजारी । इस ख़तरनाक स्थान में चोर, लूटेरे, डाकू, खूनी नि:शंकता से आते थे । उनकी दृष्टि से यह स्थान पूर्णत: सुरक्षित था । श्रीमोटा की वहाँ की उपस्थिति उन्हें बुरी लगती थी । वे साधना के हेतु से वहाँ जाते

* यह स्थान अब पहले जैसा भयप्रद नहीं रहा । लोगों की बस्ती बसने से वह घनी झाड़ी भी अब नहीं रही ।

हैं, यह समझाना उनके बस की बात नहीं थी । श्रीमोटा को भगाने के लिए उन चोर-लूटेरों ने तरह-तरह की तरकीबें सोचीं, कई षड्यंत्र रचे, फिर भी श्रीमोटा पर उसका कुछ भी असर नहीं हुआ ।

एकबार श्रीमोटा साधना में मशगूल थे, उसी समय तीन-चार चोर वहाँ आ गये और चुराये हुए माल का बँटवारा करने लगे । अचानक उन्हें अहसास हुआ कि कोई व्यक्ति भी वहाँ मौजूद है । श्रीमोटा की तरफ देखते हुए उनमें से एक ने कहा, 'साले को ख़ात्म ही कर दो, जिससे हमें पहचानने का और पुलिस को खबर करने का सवाल ही नहीं उठेगा ।'

वे बोले तो सही, लेकिन वह अमल में लाने का साहस किसी को नहीं हुआ ।

बोकड की श्रीमोटा की साधना निर्विघ्नता से चलती रही ।

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

३८. श्रीधूनीवाले दादा-पूज्य केशवानंदजी महाराज

दीक्षा प्राप्त होने के बाद बालयोगी महाराज की सूचनानुसार पू. दादा के दर्शन करने जाने का श्रीमोटा ने निश्चित किया । महाराज ने कहा था कि, 'दादा के पास जाते समय पूरी तैयारी कर के जाना,' इसलिए उन्होंने सात-आठ दिन की छुट्टी ले ली, लेकिन महाराज को यह बताने पर वे बहुत नाराज़ हुए । 'तैयारी करने' का अर्थ 'पूर्णतः पाशमुक्त होकर जाना' ऐसा है, यह उन्होंने श्रीमोटा को समझाया ।

सब पाश तोड़ दिये :

'मैं दादा के पास जा रहा हूँ और अगर उन्होंने वहाँ ही रहने की आज्ञा की तो फिर उस आदेशानुसार मैं सदा के लिए वहाँ

ही रहूँगा' यह माँ को समझाना श्रीमोटा के लिए बहुत मुश्किल था । उन्होंने फिर यह सब कुछ ख़त द्वारा प्रभाबा को समझाया और माँ को मनाकर उसकी संमति प्राप्त करने का कठिन काम उन पर ही सौंप दिया ।

कैसे-वैसे प्रभाबा ने माँ को समझाया-मनाया-तैयार किया । 'तुम्हारे चरितार्थ का पूरा इन्तज़ाम कर के, उसके बाद ही श्रीमोटा दादा के दर्शन करने जाएँगे,' यह भी प्रभाबा ने माँ को बताया । माँ की संमति पाने का कठिन काम पूरा होते ही श्रीमोटा ने 'हरिजन सेवा संघ' को अपना इस्तीफ़ा दे दिया और नवसारी से परीक्षितभाई को बुलाकर नडियाद के काम की जवाबदारी उन्हें सौंप दी ।

इस तरह पिछली डोर काटकर पूर्णतः पाशमुक्त बनकर दादा के दर्शन करने जाने की तैयारी हो गयी ।

प्रथम दर्शन :

दादा का स्थान मध्यप्रदेश में गाडरवारा के नज़दीक 'साँईखेडा' में था । वहाँ पहुँचते ही एक धर्मशाला में अपना सामान रखकर स्नानादि से निवृत्त होकर बड़ी आतुरता से और उत्साह से श्रीमोटा दादा के दर्शन को निकल पड़े ।

लोग दादा से डरकर दूर-दूर रहते हैं, यह उन्हें मालूम नहीं था । वे तो सीधे पास गये और उनके चरणों पर अपना मस्तक रखा । वैसे तो दादा सभी को अपने पास आने नहीं देते थे । कभी-कभी दर्शन करने आये हुए व्यक्ति को वे अपने डंडे से मारते थे । श्रीमोटा जब दर्शन करने जा रहे थे, तब लोग चिल्लाने लगे, 'ए, दूर जा । दूर हो जा ।'...लेकिन दादा ने कुछ नहीं किया, वे अपनी मस्ती में शांत ही बैठे रहे ।

दर्शन कर के श्रीमोटा दादा से सात-आठ फूट दूरी पर बैठ गये और उनकी लीलाएँ देखने लगे ।

दादा-एक अद्‌भुत महापुरुष :

दादा यानी एक लोकविलक्षण महापुरुष । लोगों के उपद्रव से बचने के लिए उन्होंने अपना स्थान साँईखेडा गाँव से दूर जंगल में रखा था, फिर भी लोगों के झुंड उनके दर्शन हेतु उमड़ पड़ते।

दादा की शरीरयष्टी लाठी की तरह शिड़शिड़ीत थी । वे आजानबाहु थे और उनके पैर भी खासे लंबे थे । प्राय: वे दिगंबर ही रहते थे, लेकिन कभी-कभी किसी की नयी पोषाक भाने पर वे उससे माँग लेते थे और खुद पहन लेते थे ।

उनके सामने एक धूनी अखंड जलती रहती थी और वे वहाँ ही बैठे रहते थे । बारिश हो, तूफान हो या कड़ी धूप हो, उन्होंने अपना स्थान कभी नहीं छोड़ा ।

हनुमानजी की तरह दादा के गलें में और कमर पर आक के फूलों की ढेर सारी मालाएँ रहती थी । ये फूल बहुत उष्ण रहते हैं और उन्हें धारण करना यह साधारण व्यक्ति के वश की बात नहीं है । बहुत उष्ण प्रकृति के इन फूलों का स्पर्श होने पर चमड़ी पर वहाँ-वहाँ अंगार होकर छाले तक निकल सकते हैं । लेकिन दादाजी के शरीर पर उनका कुछ भी असर नहीं होता था । लौ-लौ करती धूनी के दाहक अग्नि के पास दादा ये ढेर सारी मालाएँ धारण कर के बैठे रहते थे, यह एक बड़ा आश्चर्य ही था ।

दादा अपने पास सतत एक डंडा रखते थे । अगर किसीको उसका प्रसाद मिल जाए तो उसका नसीब खुल जाता, लेकिन डंडे के मार के डर से लोग उनके पास जाने को झिझकते थे ।

बीभत्स वाणी का उगम और शंका :

दादा की वाणी बहुत ही बीभत्स और अर्वाच्य थी । असंबद्ध ऐसी उनकी वाणी समझ पाना और उसका अर्थ लगाना बहुत ही कठिन था ।

प्रथम दर्शन के समय जब श्रीमोटा ने दादा की यह यद्वातद्वा वाणी सुनी तब उनके मन में विचार आया, 'कैसी है ये वाणी? इतनी गालीगलौज ? दिल करता है कि यहाँ से निकल जाऊँ और नडियाद वापस चला जाऊँ ।'...लेकिन उसी क्षण उनका दूसरा मन उन्हें समझाने लगा, 'अरे ! जिन बालयोगी महाराज ने तुझे दीक्षा दी, उनके ये गुरु । जिन बालयोगी महाराज की अगम्य और अद्‌भुत भावलीलाओं का तुझे कई बार दर्शन हुए, जिनकी दिव्य और गूढ़ शक्ति से तुझे अनंत दिव्य अनुभव प्राप्त हुए, उनके ये सद्‌गुरु, वे कितने समर्थ होंगे ?'

इस वैचारिक मनोमंथन ने श्रीमोटा को एक निष्कर्ष दिया, 'उनके इस वाणी-वर्तन के पीछे कुछ तो रहस्य होना चाहिए ।'

शंका निवारण :

श्रीमोटा के मन में यह विचार आया-न-आया तो उसी क्षण दादा ने गालियाँ बरसायीं और सामनेवाले लोगों के समूह की ओर देखते हुए वे बोले, 'मैं बोलूँगा तब मेरे सामने उपस्थित लोगों के चेहरों पर नज़र रखना और जिसके चेहरे पर फेरफार नजर आए उसके पीछे-पीछे जाकर उसे ही पूछ लेना ।'

और कोई समझ न पाया, तो भी श्रीमोटा को तो तुरंत ख्याल आया कि, 'ये गालियों का प्रसाद और ये शब्द मेरे लिए ही है।'

दादा के सुझाव के अनुसार फिर उन्होंने छानबीन करना प्रारंभ किया । रोज़ कम-से-कम छ-सात आदमियों से वे मिलते और

उनसे पूछताछ करते कि दादा ऐसा क्यों बोलते हैं ? उन सभी ने श्रीमोटा को बताया कि दादा जो-जो गालियाँ बरसाते थे वे सभी, वैसी ही, शब्दशः वैसी ही, सभी ने अपने-अपने जीवन में दी थीं और दादा के शब्दानुसार ही उनके जीवन में घटा हुआ था ।

'वह दिख रहा है न, उसे पत्थर मार, लहुलुहान कर ।

श्रीमोटा के मन में दादा के बारे में पैदा हो गयी हुई शंका का पूर्णतः निराकरण करने के लिए ही शायद एक प्रसंग उनके सान्निध्य में घटा ।

नामस्मरण, प्रार्थना करते हुए श्रीमोटा दादा के सामने बैठे थे। अचानक दादा ने रास्ते पर शांति से चलनेवाले एक आदमी की ओर संकेत करते हुआ आज्ञा की 'वह आदमी दिख रहा है न, मार...मार साले को...लहुलुहान हो इस तरह उसे पत्थर मार ।'

शांति से गुजरनेवाले उस आदमी को पत्थर मारने को श्रीमोटा हिचकिचाने लगे, फिर भी गुरु की आज्ञा है, यह सोचकर भगवान का नाम लेते-लेते उन्होंने एक बड़ा पत्थर उठाकर उस आदमी को मारा ।

किस दिशा से पत्थर आया यह देखकर वह आदमी श्रीमोटा के करीब आया और गुस्से से लालपीला होकर उन्हें पूछने लगा, 'क्यों बे, मुझे पत्थर क्यों मारा ? मैंने तेरा क्या बिगाड़ा है ?'

श्रीमोटा ने उसे जवाब दिया, 'भाई, मैंने अपनी इच्छा से नहीं मारा, बल्कि ये जो मेरे गुरुमहाराज बैठे है न, उन्होंने कहा इसलिए मारा ।'

अब वह आदमी तिलमिलाते हुए दादा के पास गया और उन्हें कोसने लगा ।

वह सुनते ही दादा ने उसे ऐसा कुछ फटकारा और ऐसी गालियाँ बरसायीं कि वह तो क्या, सुननेवाले सभी दंग रह गये। वह कौन-सा कुकृत्य करने जा रहा था, वह दादा ने उसे कड़े शब्दों में गालियों की बरसात में कह बताया ।

दादा बोलते गये-वैसे उसका चेहरा उतरता गया, शर्म से झुक गया और अंत में पश्चात्तापदग्ध होकर वह फूट-फूटकर रोने लगा, उनके पैर पकड़कर गिड़गिड़ाने लगा, क्षमायाचना करने लगा ।

दादा ने उसे शांत किया और सांत्वना दी । दादा के चरणों पर मस्तक रखकर और उनका आशीर्वाद प्राप्त कर के शांत-शीतल हृदय से वह व्यक्ति आनंदपूर्वक घर चला गया ।

अपने अंतर्यामित्व की शक्ति की एक झलक दादा ने इस घटना द्वारा दिखाकर श्रीमोटा के संशय का पूर्णतः निराकरण किया।

दादा के इस बीभत्स वाणी की तथाकथित बुद्धिजीवी लोगों से टीका की जाती थी, उन्हें निंदित किया जाता था । चुनीलाल व्यास नामक श्रीमोटा के दोस्त उन्हें यह लिखाई नियमित रूप से पढ़ने को दिया करते थे, लेकिन उसके पीछे रहे हुए रहस्य को समझने के और अनुभव करने के अनगिनत मौके श्रीमोटा को प्राप्त हुए थे, इसलिए वे तो उसकी केवल उपेक्षा ही करते ।

राजा के बारे में बोल :

एक बार दादा एक राजा के बारे में और उसके अंग्रेज सरकार के साथ रहे हुए देशद्रोही संबंधों के बारे में बोल रहे थे, कम-से-कम आधा-एक घंटा वे बोल रहे थे । लेकिन सामनेवाले समूह में वैसा कोई भी व्यक्ति उपस्थित नहीं था ।

दादा के बोलने को सिर्फ़ घंटा-आधा घंटा ही गुजरा होगा-न-होगा तो दो-तीन घुड़सवार, पीछे मोटर और उसके पीछे फिर

घुड़सवार और सब के अंत में पुलिस इस तरह युवराज की बारात आयी ।

चाँदी की थालियों को लात मारी :

युवराज मोटर से नीचे उतरे । उसके आदमियों ने मोटर से दो थालियाँ निकालीं । एक में बहुत-से चाँदी के सिक्के थे और दूसरी में कुछ सोने के सिक्के थे । प्रणाम कर के युवराज ने वह सब दादा के सामने धरा । उसी क्षण दादा ने उन थालियों को इतने जोर से लात मारी कि वे बहुत दूर जाकर गिर गयी और सब सिक्के इधर-उधर गिर गये । पुलिस और युवराज के आदमियों ने कॉर्डन कर के वे सिक्के जमा किये । दादा ने तो उन सिक्कों पर थूका ।

'यहाँ किसलिए आया है ?'-गालियाँ देते हुए दादा ने क्रोधित होकर पूछा ।

थोड़ी देरतक चुपचाप खड़े रहकर फिर युवराज की सवारी लौट गयी ।

बाद में खोजबीन करने पर श्रीमोटा को मालूम हुआ कि इंदौर के महाराज का युवराज वह भेंट लेकर आया था । इंदौर के महाराजा ने उस समय कई षड्यंत्र रचे थे, एक का खून भी करवाया था और उस संदर्भ में एक 'बावला खून खटला' भी चल रहा था। इन सब के बारे में ही दादा बोल रहे थे ।

'पिताजी की गद्दी स्वयं को प्राप्त हो', इस हेतु से ही वह युवराज आया था और उन सिक्कों की भेंट दादा के चरणों पर चढ़ायी थी ।

संतों के यहाँ शंभुमेला :

दादा का दरबार सभी के लिए मुक्त था । वहाँ किसीको भी निमंत्रण नहीं था और किसीको प्रतिबंध भी नहीं था । सब तरह

के लोग दादा के पास आया करते थे । योगी-भोगी-रोगी आते थे, नर्तिकाएँ आती थीं, वेश्याएँ आती थीं, चोर-लफंगे आते थे, सट्टेबाज आते थे, साधु-संन्यासी-बैरागी आते थे, विद्वान-पंडित आते थे, राजे-महाराजे और गरीब भी आते थे ।

सब तरह के लोग दादा के यहाँ अड्डा जमाकर बैठे रहते थे और सभी को अपनी-अपनी श्रद्धानुसार उतना अल्पाधिक फल प्राप्त होता था ।

'घर लौट जाना, मेरी प्रार्थना करते रहना ।'

दादा के दरबार में श्रीमोटा आने को दस-बारह दिन गुज़र गये थे । एक दिन दादा ने बगल में पड़ा हुआ एक नारियल उठाया और जोर से श्रीमोटा की दिशा में फेंका, वह उनके सिर को लगा, वहाँ सूजन भी आ गयी ।

फिर दादा ने कहा, 'अब तू अपने घर लौट जा और वहाँ रहकर ही साधना करते रहना । तू मेरी प्रार्थना करते रहना । तुझे जो कर्म प्राप्त होंगे, उन्हें ही चिपके रहना ।'

दादा की आज्ञानुसार श्रीमोटा नडियाद लौट आये, फिर से 'हरिजन सेवा संघ' में दाखिल हुए और दादा ने जो बताया था उस तरह के कर्मसाधना में जुड़ गये ।

भगवतप्रसाद पंड्या को बीमारी से मुक्ति

श्रीमोटा के स्नेही भगवतप्रसाद पंड्या वडोदरा में 'डफरीन हॉस्पिटल' में अंडाशय के क्षय के उपचार के लिए भरती हुए थे। उन्होंने ठक्करबापा की दीर्घकाल तक सेवा की थी ।

दादा के दर्शन के बाद लौटते समय श्रीमोटा उनसे मिले । दादा का दरबार और उनकी दिव्यशक्ति के बारे में उन्होंने पंड्याजी को विस्तारपूर्वक बताया । 'दादा के दर्शन से शायद आपकी व्याधि

जड़ से मिट जाएगी, इसलिए कैसे भी कर के आप जाकर आओ।' –ऐसा प्रेमपूर्वक आग्रह श्रीमोटा ने किया ।

उनकी सूचनानुसार वे बाद में दादा के पास गये और उनकी कृपा से व्याधिमुक्त भी हो गये । दादा की आज्ञानुसार फिर वे सदा के लिए वहाँ उनके पास ही रहे । जीवन के अंतकाल में वे दादा की तरह दिगंबर ही रहते थे ।

प्रार्थना के वही शब्द—सर्वज्ञ दादा :

भगवतप्रसाद पंड्या सदैव दादा के साथ ही रहते थे । दादा जब श्रीमोटा के बारे में कुछ बोलने लगते, तब वे गौर से सुनते थे या फिर तुरंत ही लिख रखते थे ।

नडियाद के स्मशान में साधना करते समय श्रीमोटा जो प्रार्थनाएँ किया करते थे, उनके शब्द, वैसे-के-वैसे दादा कहकर बताते । ऐसी कम-से-कम दो प्रार्थनाएँ और एक भजन भगवत-प्रसादजी ने श्रीमोटा को वहाँ जानेपर एक बार दिखाये थे ।

इनमें से 'प्रभु ! शरण चरणमां राखो रे, पावले लागु' यह प्रार्थना पू. गांधीजी के आश्रम में आज भी गायी जाती है ।

दादा के दर्शन के लिए माँ को ले गये :

'दादा के आशीर्वाद प्राप्त हो' इस हेतु एक बार वे अपनी माँ को भी दादा के पास ले गये ।

उनकी माँ ने जब दिगंबरस्वरूप दादा को देखा, तब चिढ़कर वह बोली, 'कर्म मेरे! कलमुए, ये कौनसी जगह पर लाया तू मुझे ?'

अपनी माँ को पाँच रुपये देकर श्रीमोटा ने बताया कि 'दर्शन के समय ये रुपये उन्हें अर्पण कर ।' लेकिन वह ये मानने को तैयार ही नहीं हो रही थी । श्रीमोटा ने उसे बार-बार समझाया कि, 'अब तू पाँच रुपये दे दे, मैं तुझे बाद में दस रुपये दूँगा ।' लेकिन अंत

तक उसने अपनी ज़िद नहीं छोड़ी और रुपये भी अर्पण नहीं किये ।

वड़े बनाकर खिलाये :

अपनी माँ के साथ श्रीमोटा जब दादा के पास थे, तब एक बार उनकी माँ ने उन्हें कहा, 'चूनिया, तू मुझे सब सामान खरीदकर ला देना । मैं दादा को वड़े बनाकर खिलाऊँगी ।' श्रीमोटा ने उसके कहनेनुसार सभी चीजें उसे लाकर दे दी । उसने बाजरी के वड़े बनाये और दादा को अर्पण किये । दादा ने थोड़ा-सा खाकर बाकी प्रसादरूप में बाँट दिये ।

जीवनकेंद्र-केवल दादा ! :

दादा के दर्शन के लिए अपने जीवनकाल में श्रीमोटा ज़्यादा-से-ज़्यादा तीन-चार बार ही गये होंगे । उनसे बातचीत भी शायद ही हुई, फिर भी उनके संपूर्ण अस्तित्व का और जीने के हेतु का केंद्र थे सिर्फ़ दादा, दादा और केवल दादा ।

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

३९. सत्संग से सद्गति

एक बार श्रीमोटा दादा के दर्शन के लिए गए थे । घर लौटने के लिए उनसे आज्ञा लेने के लिए जब वे उनके पास गए, तब दादा कहने लगे, 'अगर कोई आदमी अनुभवी और चैतन्य में स्थिरता प्राप्त किये हुए* महात्मा से सच्चे ह्रदय से जुड़ गया हो, तो उसका उद्धार हो जाता है ।'

श्रीमोटा के मन में विचार आया, 'अपनी महत्ता प्रदर्शित करने के लिए ही गुरुमहाराज ऐसा कह रहे हैं ।'

* साक्षात्कारी

सर्वज्ञ ऐसे उस अवधूत दिगंबर महात्मा से यह विचारतरंग जाना न जाना नामुमकिन था। श्रीमोटा को निर्देशित करते हुए वे फिर से कहने लगे, 'अरे, यहाँ से करीब पंद्रह मील दूरी पर एक गाँव है, वहाँ तू जा। वहाँ एक मनुष्य मृत्युशय्यापर है। उसे मिलना, वह क्या-क्या बोलता है, वह सब सुनना, सब देखना, विचार करना और फिर यहाँ वापस आ जाना।'

अपने मन का कोलाहल दादा जान सके, इस बात से श्रीमोटा बहुत प्रभावित हुए और उनकी सूचनानुसार उस गाँव में जाकर कौनसा व्यक्ति मृत्युशय्या पर है, वह उन्होंने ढूँढ़ निकाला।

जब वे उस आदमी के घर पहुँचे, तब वह बेहोश था और ज़िंदगीभर के किये हुए दुष्कृत्य और कुकर्म याद करके अर्वाच्य बक रहा था, गालियाँ दे रहा था। थोड़े समय के बाद उसकी आवाज़ में और वक्तव्य में परिवर्तन हुआ।

उसने दादा का स्मरण किया और प्रार्थना की, 'हे धूनीवाले दादा। हे गुरुमहाराज। मैं कितना पापी हूँ, फिर भी प्रभुकृपा से मुझे तुम्हारा सत्संग प्राप्त हुआ और तुमने मुझे प्रेम से अपने हृदय को जकड़ लिया, यह मेरा कैसा अहोभाग्य है। अब मेरा उद्धार करो। तुम्हारे सिवा इस दुनिया में मेरा और कोई नहीं है। मैं तुम्हारी शरण आया हूँ।-इतना कहकर वह चुप हो गया। उसके चेहरे पर शांति छा गयी। उसके चेहरे पर घटा हुआ वह परिवर्तन, वह संतोष, वह शांति, वह आभा किसीको भी महसूस हो इतनी स्पष्ट थी। मानो गुरुमहाराज का हाथ उसके माथे पर था और वे उसकी बगल में ही उपस्थित थे। और सच कहें तो सचमुच वैसा ही था।

उस आदमी ने शांतिपूर्वक देहत्याग किया। उसे सद्भाग्य का मरण प्राप्त हुआ था।

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

४०. 'मुझे एक मगरमच्छ देखनेकु ले चल!'

बालयोगी महाराज का दीर्घकालीन दिव्य अमृतसहवास और साधना में मार्गदर्शन श्रीमोटा को दो बार प्राप्त हुआ। एक बार देढ़ महीना और दूसरी बार ढाई महीने 'हाजी मंज़िल' बंगले में।

'हाजी मंज़िल' बंगला एकांत में था, गाँव से बाहर था। उन दोनों के अलावा वहाँ और कोई रहता नहीं था। दूसरे किसीको आने की अनुमति भी नहीं थी। वहाँ एक बार गुरुमहाराज ने उनसे कहा, 'मुझे एक मगरमच्छ देखनेकु ले चल।'

उनका यह आदेश सुनकर उनको चरणस्पर्श कर के प्रणाम करते हुए श्रीमोटा बोले, 'गुरुदेव ! आपकी आज्ञा का पालन करने की मेरी तैयारी है, लेकिन मेरे पास पैसे नहीं हैं।'

बालयोगी महाराज ने पूछा, 'बिलकुल नहीं ?'

श्रीमोटा ने जवाब दिया, 'नहीं बापजी।'

'तो फिर किसी से माँग के ले ले।'-महाराज ने सुझाव दिया।

श्रीमोटा ने स्पष्टता से बताया, 'बापजी। मैं हूँ गरीब आदमी, मुझे कौन देगा ? मैं मुफ्त में तुम्हारे साथ आता हूँ, नहीं तो हम दोनों यहीं बैठे रहेंगे।'

'नहीं। पैसा चाहिए।'-महाराज ने दृढ़तापूर्वक श्रीमोटा को बताया।

'महाराज, मेरे पास कुछ गहनें-सिक्के नहीं हैं कि जिन्हें बेचकर मैं पैसे ला दूँ।'-श्रीमोटा ने प्रत्युत्तर दिया।

'ऐसा है ? देख, अभी आ जाएगा।' महाराज बोले।

यह बातचीत हुई और दूसरे दिन ही महाराज के दर्शन के लिए आठ-दस आदमी आये और उन्हें प्रणाम कर के उन्होंने उनके सामने कई रुपये रखे। वहाँ कभी कोई आता नहीं था, किसीको

अनुमति भी नहीं थी, फिर भी वे लोग आये थे, यह आश्चर्य ही था ।

'बच्चा, देख पैसा आ गया । अब तू मुझे मगरमच्छ देखने कु ले चल ।' महाराज ने श्रीमोटा को फिर से आज्ञा की । वैसे तो महाराज पैसे का स्वीकार कभी करते नहीं थे, लेकिन आज शिष्य के प्रेम के वश होकर उन्होंने वे स्वीकार किये थे ।

पैसे का इन्तज़ाम होने के बाद अब जाना तो सुनिश्चित हुआ। 'जाना तो है, लेकिन कहाँ ?' श्रीमोटा के सामने प्रश्न खड़ा हुआ।

'प्रभु ! आपको मैं ले जाऊँगा, लेकिन मगरमच्छ है कहाँ यह मुझे अगर बता दोगे, तो मैं तुम्हें वहाँ ले जाऊँगा ।...'

इस प्रश्न का महाराज ने कोई उत्तर नहीं दिया । वे तो सिर्फ़ 'मगरमच्छ' 'मगरमच्छ' इस शब्द का ही रटन करते रहे, मानो दूसरे शब्द उन्हें मालूम ही नहीं थे । छोटे बालक की तरह वे कम-से-कम सौ बार 'मगरमच्छ, मगरमच्छ' बोलते रहे । निर्णय करना उन्होंने अपने शिष्य पर ही छोड़ दिया था ।

उत्तर न पाने से निराश होकर श्रीमोटा ने अंत में निश्चित किया, 'मैं उन्हें आणंद तक ले जाऊँगा । वहाँ वडोदरा, खंभात और डाकोर ऐसी तीन दिशाओं में जाया जा सकता है, इसलिए आणंद पहुँचते ही महाराज से ही वहाँ फिर से पूछ लूँगा ।'

योजनानुसार श्रीमोटा बालयोगी महाराज को रेलवे से आणंद तक ले आये । महाराज डब्बे से प्लॅटफॉर्म पर उतरते ही महाराज के चरणों में उन्होंने वंदन किया और बताया, 'यहाँ से समुंदर की शुरूआत होती है । समुंदर में तो मगरमच्छ होंगे ही । इस तरफ़ बंबई जाते वक्त वडोदरा स्टेशन आता है । वहाँ पानी के बड़े-बड़े कुंड हैं । उसमें बड़े जबरदस्त मगरमच्छ हैं । और इस तरफ़

रणछोड़जी का मंदिर है । अगर आप रणछोड़जी को मगरमच्छ कहते होंगे, तो वहाँ हैं । आप कहें तो वहाँ...'

उनको बीच में ही अटकाते हुए महाराज बोले, 'इस लाईन ऊपर जाने का नहीं है ।'

'ठीक है, खंभात की ओर एक लाईन जाती है, वहाँ भी समुंदर है, शायद वहाँ मगरमच्छ हो ।' श्रीमोटा ने बताया ।

इसपर बालयोगी महाराज फिर से मौन हो गये । निर्णय करना फिर से श्रीमोटा के सिर पर ही आया ।

'डाकोर या खंभात ?' उलझन खड़ी हो गयी ।

'डाकोर में गोमती नदी में बड़े-बड़े कछुए हैं, कुरमुरे डालकर महाराज को वे दिखा दूँगा ।' उन्होंने निर्णय ले लिया और डाकोर की दिशा में सफ़र शुरू हुआ ।

वहाँ पहुँचकर नदी तक जाने के लिए पर्याप्त पैसे न होने के कारण घोड़ागाड़ी का सवाल ही नहीं उठता था । पदयात्रा करते-करते जाना यही एकमात्र मार्ग रहा । नदी की ओर चलते-चलते रास्ते में एक दुकान से श्रीमोटा ने दो पैसों के कुरमुरे खरीदे । थोड़ी देर में वे नदीतट तक आ पहुँचे । नदी का विशाल पात्र संथ गति से बह रहा था । श्रीमोटा ने पानी में कुरमुरे डाले । तुरंत ही बड़े-बड़े कछुए ऊपर तैर आये और कुरमुरे खाने लगे ।

महाराज को वे कछुए दिखाते हुए श्रीमोटा ने कहा, 'महाराज ! प्रभु ! देखो ये कछुए ।'

'अरे ! साला ! कैसा गधा जैसा है, बेवकूफ ! तेरे में अक्ल नहीं ।' गालियों की खैरात करते हुए डाँटकर महाराज बोलने लगे ।

'अगर ये मगरमच्छ नहीं है, तो फिर बापजी आप कौनसे मगरमच्छ की बात कर रहे हैं ? मेरी तो कुछ भी समझ में नहीं

आ रहा है । मैं बहुत उलझ गया हूँ । तुम्हें मगरमच्छ दिखाने अब मैं कहाँ ले जाऊँ ?'

महाराज ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया और वे चलने लगे। डाकोर में गोमती नदी के किनारे पर जिस स्थान में भगवान की तुला की थी, वहाँ तराजू की बायीं ओर कुएँ के पीछे एक पागल जैसा और मैले कपड़े पहना हुआ मनुष्य जमीन पर लेटा हुआ था। महाराज सीधे उसकी ओर चलते गये । उसके करीब जाकर वे नीचे बैठ गये और दोनों की बातचीत शुरू हुई ।

'तुम कहाँ सोते हो ?' उस पागल जैसे दिखायी देनेवाले आदमी ने महाराज से पूछा ।

'मैं तो आकाश में सोता हूँ । तुम कहाँ सोते हो ?' महाराज ने उसे प्रतिप्रश्न किया ।

'मैं तो सोता हूँ कभी वायु पर, तेज पर, कभी पृथ्वी पर या फिर जल पर । सतत आकाश में सोना अब तक हुआ नहीं है।' उस गंदे-मैले आदमी ने जवाब दिया ।

श्रीमोटा यह सब कुछ सुन रहे थे, लेकिन उसका कुछ भी अर्थ वे लगा नहीं सके, वे तो पागल की तरह उन्हें देखते ही रहे, उनकी बातें सुनते ही रहे ।

बालयोगी महाराज ने श्रीमोटा की ओर अँगुलीनिर्देश कर के उस आदमी को बताया, 'इस लड़के को मैं तुम्हारे पास इसलिए लाया हूँ कि मेरे पास आ सके ऐसी उसकी स्थिति नहीं है । उसके पास पैसे होते नहीं है, लेकिन डाकोर नज़दीक ही है, इसलिए वह यहाँ आ सकेगा । साधना में विघ्न उपस्थित होने पर कभी-कभी वह तुम्हारे पास जब आएगा, तब उसे सीधा जवाब देना, उलटी-सीधी भाषा में नहीं बताना, उसे समझ में आए इस तरह बताना।'

बाद में डाकोर में छानबीन करने पर श्रीमोटा को मालूम हुआ कि उनका नाम नथ्थूराम शर्मा था । लोग उन्हें 'मस्तराम' कहकर पुकारते थे । वे बालपिशाचवृत्ति के एक महान संत थे । उनका बर्ताव किस समय कैसा होगा, यह बताना बहुत कठिन था । आसपास कोई बाजेवाला हो, तो वे उसे बुला लेते और उसे वह बाजा बजाने को कहते । श्रीमोटा जब-जब उन्हें मिलने जाते, तब-तब तो वे बिना चुके बाजेवाले को बुलाकर उससे बाजा बजवाते।

कोई मस्तरामजी के पास गया हो और अगर उनकी इच्छा हुई तो वे कहते, 'ए । चाय लाव, भजिया लाव ।' श्रीमोटा जब-जब उन्हें मिलने जाते, तब-तब बड़े भक्तिभाव से श्रीमोटा उन्हें प्रणाम करते ।

एक बार उन्होंने मस्तरामजी से प्रार्थना की, 'महाराज, आप अगर मुझे कुछ सेवा करने का मौका दोगे तो मुझे बहुत आनंद होगा ।' उनके मन की आस पूरी करने के लिए एक बार मस्तरामजी ने उन्हें पौसेर भजिया लाने को कहा । श्रीमोटा वह तुरंत ले आये ।

मस्तरामजी ने सब भजिये ख़त्म कर दिये । भजिया खाते समय छोटे बालक की तरह उन्होंने श्रीमोटा से कहा, 'तुझे एक भी नहीं दूँगा ।' श्रीमोटा ने हाथ जोड़कर कहा, 'प्रभु ! जैसी आपकी मर्जी । मेरी इच्छा नहीं है कि आप मुझे भी दें ।'

साधनामार्ग के बहुत-से प्रश्नों के जवाब और आंतरिक मार्गदर्शन उन्हें मस्तरामजी से प्राप्त हुआ और तब उन्हें समझ में आया कि 'ओ हो ! यह तो बहुत ही पहुँचा हुआ दिव्यात्मा है ।'

आध्यात्मिक क्षेत्र में उच्चातिउच्च कक्षा में जो पहुँच गया है, प्राण पर जिसने काबू पा लिया है जैसा कि मगर पानी में गहरा श्वास लेकर बहुत अधिक देर तक रह सकता है,

इसलिए मस्तरामजी को 'मगरमच्छ' कहते थे। यह श्रीमोटा को मस्तरामजी के संपर्क के बाद समझ में आया ।

अवधूत सद्गुरु के शब्द, उनके गूढ़ार्थ और उनका समझाने का तरीका-सब कुछ अनोखा था । अद्‌भुत था ।

✤ ✤ ✤

॥ हरि:ॐ ॥

४१. 'नर्मदे मात की जय !'

माथे पर आया हुआ सूरज आग बरसा रहा था । भट्ठी के कोयलों की तरह जमीन उत्तप्त हो गई थी । बदन से पसीने की धाराएँ छूट रही थीं । बालयोगी महाराज श्रीमोटा को लेकर नर्मदा किनारे पर 'चाणोद-करनाली' आये थे ।

सामने एक धर्मशाला दिखायी दी और महाराज को विश्राम करने के लिए वहाँ चलने की श्रीमोटा ने प्रार्थना की । उनकी संमति पाने पर दोनों धर्मशाला में गये और एक कमरे में मुकाम रखा। कमरे में से नर्मदामाता का विशाल पात्र संथरगति से बहता हुआ दिखायी दे रहा था । उस जल के केवल दर्शनमात्र से ही आँखें और बदन शीतल-शांत हो रहे हैं, ऐसा श्रीमोटा को प्रतीत हुआ। महाराज भी नर्मदामाता को एकटक निहार रहे थे ।

'बच्चा जाओ ! और नर्मदामैया का पानी लेकर आओ ।' महाराज ने श्रीमोटा को आज्ञा की । हाथ में लोटा लिये श्रीमोटा निकल पड़े। किनारे पर जाकर उन्होंने लोटा जल से भर लिया और वह लाकर महाराज के सामने रखा ।

लोटे को देखते हुए महाराज ने पृच्छा की, 'लोटा माँज के लाया है ?'

'नहीं गुरुदेव !' उन्होंने गर्दन झुकाकर जवाब दिया । लज्जित होते हुए श्रीमोटा लोटा लेकर फिर से नदीतट पर गये ।... 'लोटा ठीक से साफ़ कर के बाद में ही पानी भरना चाहिए यह छोटी-सी बात मैं कैसे भूल गया ?' उन्हें खुद को ही आश्चर्य हुआ ।

लोटा ठीक तरह से माँजकर, धोकर नर्मदामैय्या का शीतल जल उसमें भरकर वे प्रसन्नता से महाराज के सम्मुख आये ।

महाराज ने उनकी आँखों में झाँकते हुए पूछा, 'किनारे से लाया कि दूर से ?'

'बापजी, मैं पात्र में नहीं गया था, किनारे से ही लाया हूँ ।' श्रीमोटा ने सच्चाई कथन की ।

इस पर महाराज एकदम नाराज़ हो गये, 'ऐसा जल नहीं चलेगा। जाओ, नर्मदामैया के अंदर जाकर ले आव ।'

'ठीक है गुरुदेव !' उन्होंने नम्रता से हाथ जोड़कर कहा और नदी की ओर चलने लगे । चलते-चलते उनके मन में विचार आया, 'मुझे बार-बार भेजने के लिए महाराज कोई निमित्त तो नहीं ढूँढ़ रहे हैं न ?'... मन में उभरी हुई शंका दबाकर उन्होंने नदी के विशाल पात्र में प्रवेश किया । धोये हुए लोटे में पात्र की गहराई में से जल भर लिया और लौट आये ।

वे महाराज के पास पहूँचे भी न थे तो महाराज क्रोधित होकर उनके पैरों की ओर ताकते हुए चिल्लाये, 'जूता पहन के जल लाया? गधा कहीं का । अब जाव, जूता उतार के जल ले आव ।'

'निश्चित ही इसमें कोई रहस्य है ।' श्रीमोटा के मन में विचार आया ।...'महाराज को पानी चाहिए, इसलिए वे मुझे भेज रहे हैं ऐसा नहीं है । किसलिए वे बार-बार भेज रहे हैं ? क्या कारण हो सकता है ? मेरी परीक्षा ले रहे हैं ? मैं उनका आज्ञापालन करता

हूँ या नहीं यह देख रहे हैं ? सहनशीलता की कसौटी कर रहे हैं ?...या और कोई कारण ?'–बहुत सोचकर भी प्रश्न का जवाब हाथ आया नहीं, तब वह वृथा प्रयास छोड़कर वे नंगे पैर भट्ठी की तरह तपी हुई रेत पर चलने लगे । उनकी जबान पर 'हरिःॐ' का रटन था, शरीर को होनेवाले कष्टों की उन्हें कोई परवाह न थी । 'महाराज कितनी ही बार आज्ञा करें तो भी मुझे थकना नहीं है और संयम खोना नहीं है,' यह उन्होंने अपने मन से कहा । वे फिर से नदी में गये, जल भर लिया और नंगे पैर लौटकर लोटा महाराज के सामने रखा ।

श्रीमोटा ने लोटा रखा सही, लेकिन इस बार महाराज का ध्यान उनकी तरफ़ या लोटे की तरफ़ नहीं था । वे तो दूसरी ओर ही देख रहे थे । निरागस बालक की तरह उनके चेहरे पर मोहक हास्य था । उनकी दृष्टि का श्रीमोटा ने पीछा किया । उन्होंने देखा कि एक सुकोमल और सुंदर बालिका हाथ में चाँदी का थाल लिये उनकी ओर आ रही थी ।

उस बालिका का सौंदर्य मुग्ध और मोहक था, वैसे ही उसकी चाल में भी एक लयबद्धता थी, कोई अनोखा जादू था ।

उस बालिका ने कमरे में प्रवेश किया और महाराज के सामने वह भोजन की थाली रखकर, बिना कुछ कहे उसी तरह धीमी गति से चली गयी ।

थाली देखते ही पेट में दौड़नेवाले चूहों का श्रीमोटा को अहसास हुआ । बालयोगी महाराज ने उनकी ओर हँसकर देखा और आज्ञा की, 'खा ले बच्चा ।' श्रीमोटा ने वह अमृततुल्य भोजन ग्रहण किया । वह खाने के बाद उन्हें एक अद्‌भुत तृप्ति और शांति का अनुभव हुआ ।

शाम को भी एक गडरिये की लड़की रोटियाँ, दूध और मक्खन लेकर आयी ।

'महाराज धर्मशाला में उतरे हुए हैं, यह इन लड़कियों को बताया किस ने ?' श्रीमोटा को अचरज हुआ । उनकी विचारधारा तोड़ते हुए महाराज ने उन्हें वह खाना खा जाने की आज्ञा की । आज्ञा होते ही उन्होंने वह सादासुदा लेकिन अत्यंत स्वादिष्ट भोजन ग्रहण किया । उनको लगा कि रोज़ के खाने से यह कुछ अलग ही है । उस भोजन में एक विशिष्ट गंध था, अनोखा स्वाद था और परिपूर्ण तृप्ति थी ।

'अब चलो, जहाँ से आये वहाँ वापस चलें ।' महाराज ने श्रीमोटा से कहा । निकलते समय उनकी दृष्टि थालियों पर गयी । दोनों लड़कियाँ थालियाँ ले जाने को आयी नहीं थी । 'ये थालियाँ भी उन्होंने महाराज को अर्पण की होंगी ।' श्रीमोटा ने मन ही मन निष्कर्ष गढ़ा और वे थालियाँ उठाकर उन्होंने साथ ले लीं ।

धर्मशाला के बाहर आते ही बालयोगी महाराज के कदम गाँव की ओर जाने के बजाय नदी की ओर मुड़े तो श्रीमोटा को जरा आश्चर्य हुआ । फिर भी आज्ञाधारक शिशु की तरह वे उनके पीछे-पीछे चलने लगे ।

नर्मदाकिनारे पर पहुँचते ही महाराज ने श्रीमोटा को आज्ञा की, 'सब बरतन नदी में डाल दो ।'

'उन्होंने झिझकते हुए पूछा, 'यह चांदी की थाली थी ?'

बालयोगी महाराज क्रोध से आगबबूला होकर चिल्लाये, 'साले, तो क्या यह तेरे बाप की हैं ? जिसकी हैं उसे देनी चाहिए कि नहीं ?'

यह सुना मात्र, और श्रीमोटा का बदन रोमांचित हुआ, अष्टसात्त्विक भाव जागृत हुए, हृदय भर आया और आँखों से गंगा-जमुना बरसने लगी ।

'मतलब कि दोनों लड़कियाँ यानी प्रत्यक्ष नर्मदामाता थीं ? साक्षात् नर्मदामाता ? कितना नसीबवान हूँ मैं । सद्गुरुमाऊली की अपार कृपा से आज नर्मदामाता का दो बार दर्शन हुआ । सिर्फ़ दर्शन ही नहीं, बल्कि उनके हाथ से अमृततुल्य भोजन ग्रहण करने का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ । देवदुर्लभ कृपा प्राप्त हुई ।' श्रीमोटा आनंदविभोर हो गये । उनके भरे कंठ से भावपूर्ण शब्द बाहर निकले, 'नर्मदे मात की जय !' इस जयजयकार के साथ ही उन्होंने सब बर्तन नर्मदामाता को अर्पण कर दिये ।

श्रीमोटा को नर्मदामाता के दर्शन हुए ।...

और नर्मदामाता को बालयोगी महाराज के दर्शन हुए ।

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

४२. 'यहाँ तेरा आश्रम होगा !'

नडियाद शहर से पाँच मील दूर शेढी नदी के किनारे पर एक शांत जगह थी । नदी को लगाकर कुएँ की बगल में एक छप्पर जैसा झौंपड़ा बनाकर एक कबीरपंथी साधु वहाँ रहते थे । गर्मी में नदी के पानी की धारा क्षीण होने पर पानी पीने के लिए बहुत-से लोग उस कुएँ पर चले जाते, पानी पीकर तृप्त हो जाते और महाराज के पास थोड़ी देर बैठकर फिर चले जाते । विशाल वटवृक्ष की घनी छाया के नीचे बसे हुए उस झौंपड़े में बैठने के बाद मन हलका-हलका हो जाता था ।

एकान्त में बसी हुई इस शांत और रम्य जगह पर श्रीबालयोगी महाराज अपने शिष्य को-श्रीमोटा को १९२२-२३ के अरसे में ले आये ।

वहाँ उन्होंने श्रीमोटा को उस वटवृक्ष की एक मोटी डाल पर बिठाकर रातभर 'हरिःॐ' का नामस्मरण उनसे करवा लिया । पेड़ की डाली पर बैठकर श्रीमोटा की साधना चल रही थी और श्रीबालयोगी महाराज अपनी ही मस्ती में पेड़ के नीचे इधर-उधर घूमते रहते थे या पेड़ के नीचे ही सलगायी हुई धूनी के पास ब्रह्मानंद में लीन होकर बैठे रहते थे ।

रात काफ़ी हो चुकी और नामस्मरण करते-करते श्रीमोटा की आँखें नींद से भारी होने लगी । महाराज की काकदृष्टि से यह छूटना असंभव था । उन्होंने एक पत्थर उठाकर जोर से अपने सद्शिष्य को मारा । जाँघ पर जोर से लगे इस पत्थर की चोट से श्रीमोटा की नींद तुरंत उड़ गयी और नामस्मरण की धारा फिर से बहने लगी ।

महाराज ने उन्हें डाँटकर फटकारा, 'भगवान का नाम बराबर जागृत हो के ले । अगर दूसरी दफ़ा जरा भी गफ़लत हुई तो दूसरा पत्थर लगाऊँगा ।'...उनकी इस डाँट-फटकार के पीछे और छाती पर बैठकर नामस्मरण करवा लेने के पीछे कितना प्रेम और असीम करुणा भरे हुए हैं यह श्रीमोटा जानते थे ।

महाराज ने श्रीमोटा को बताया, 'बच्चा, तेरा इधर आश्रम होगा और जैसा तू ईश्वर का नाम लेता है, वैसा सब लोग इधर ईश्वर का नाम लेंगे ।' उन्होंने यह सुना सही, लेकिन यह घट सकेगा ऐसा मानने को उस समय उनका मन तैयार नहीं हुआ ।

इस स्थान पर जिस कबीरपंथी साधु का स्थान था, उनकी परंपरा के 'पहेलदासजी महाराज' (प्रह्लादजी महाराज का अपभ्रंश) ने इस स्थान का माहात्म्य प्रगट करानेवाली भविष्यवाणी कथन की थी । वडोदरा के विष्णुप्रसाद ईश्वरलाल पंड्या ने अपनी उम्र के पंद्रहवें साल में, ३० अक्तूबर १८४५ के दिन वह लिपिबद्ध कर रखी थी ।

'इस जगह पर एक तपस्वी होगा । दस साल तक यहाँ कोई नहीं रहेगा । उसके बाद यह रमणीय स्थान बन जाएगा । यहाँ रहनेवाले को कभी भी, किसी से कुछ भी माँगने की जरूरत न पड़ेगी । सद्गुरु बालकदासजी की यहाँ की गादी भविष्य में कोई भी न तोड़े । इस जगह पर भजनभाव करनेवाला* कभी भी दुःखी नहीं होगा ।

उनकी सूचनानुसार बालकदासजी महाराज की समाधि को जतन कर के और सुस्थिति में रखकर उसका आश्रम के एक नंबर के मौनमंदिर में समावेश कर दिया गया है । वहाँ बैठकर या लेटकर भी साधक अपनी इष्टसाधना कर सकता है ।

श्रीबालयोगी महाराज श्रीमोटा को लेकर यहाँ आये उसके करीब सतहत्तर बरस पहले कथन की गयी भविष्यवाणी सच साबित हुई ।

इस जगह पर आश्रम होनेवाला है, यह संकेत जान लिया था पहेलदासजी महाराज ने । और श्रीबालयोगी महाराज ने भी । इसके पीछे केवल ईश्वरेच्छा ।

✤ ✤ ✤

* भावपूर्वक साधना, भजन इ. करनेवाला

॥ हरिःॐ ॥

४३. 'तुज चरणे !'

मिशन रोडपर जो 'हाजी मंज़िल' बंगला था, उसके पीछे ही हरिजन बालकों का आश्रम था । आश्रम के सामने एक पादरी रहता था । हिंदू धर्म के बारे में उसने थोड़ा-बहुत पढ़ा था और उसकी श्रीमोटा से महीना-पंद्रह दिन में मुलाकात हुआ करती थी और धार्मिक चर्चाएँ भी होती थीं ।

एक बार सत्संग-चर्चा में उसने हिंदू धर्म की निंदा करनेवाला भाव प्रकट किया । उसने कहा, '**मोटा,** तुम्हारे धर्म में कितने पंथ, कितने ही देवी-देवता और कई ग्रंथ हैं, लेकिन हमारे धर्म में एक ही एक देव है और एक ही एक किताब है । बाइबिल यही मात्र हमारी एकमेव धार्मिक किताब है और ईसु ख्रिस्त यही मात्र हमारा एकमेव भगवान है । हमारे यहाँ तुम्हारे जैसी भीड़भाड़ और मेला नहीं है ।'

श्रीमोटा ने हँसकर जवाब देते हुए उससे कहा कि, 'साहब, वैसा नहीं है । तुमने अपने मन में निष्कारण ही गाँठ बाँध रखी है । भले ही, हमारे यहाँ देवी-देवता और धार्मिक ग्रंथ और पंथ बहुत-सारे होंगे, **लेकिन सभी की नींव और सार एक ही है । एक ही एक ईश्वर पर, उसकी सत्ता पर हमारी दृढ़ श्रद्धा है और वही सत्ता, वही ईश्वर साकार और निराकार दोनों हैं, अलग-अलग रूप धारण कर के प्रकट हो रहा है, लीला कर रहा है ।'**

पादरी को श्रीमोटा का कहना सुसंगत, तर्कबद्ध और सत्य प्रतीत हुआ तो सही, फिर भी वह अपनी ज़िद पर अड़ा ही रहा ।

उसने माँग की, 'ऐसा प्रतिपादन करनेवाली कोई किताब या आधार आप दिखाओगे, तो ही मैं मानूँगा ।'

इसपर श्रीमोटा ने कुछ नहीं कहा, लेकिन उसी रात एक ही बैठक में अखंडितता से उन्होंने एक प्रदीर्घ और सुंदर काव्य रचा। 'ईश्वर कैसा है, चराचर मैं कैसा व्याप्त है, सत्-असत् दोनों में कैसा है, सगुण-साकार और निर्गुण-निराकार में कैसा वह ही है'-इसका उन्होंने उस काव्य में बहुत-ही सुंदर और भावपूर्ण शब्दों में और प्रवाही शैली में वर्णन किया। ईश्वर की प्रार्थना करते-करते, उसकी महिमा गाते-गाते उन्होंने इस उत्स्फूर्त काव्य में उपासना कैसी करनी चाहिए, इसका भी वर्णन किया है। शब्द, सौंदर्य, काव्यात्मकता, सत्य, अनुभूति, उत्स्फूर्तता, भावपूर्णता, प्रार्थना इन सब का संगमरूप ऐसा धारावाही काव्य उन्होंने दूसरे दिन सुबह ही पादरी महाशय को पढ़कर सुनाया और उसका भावार्थ भी समझाया, क्योंकि पादरी महाशय गुजराती पढ़ना जानते नहीं थे। इस काव्य के नीचे लेखक का नाम श्रीमोटा ने जानबूझकर नहीं लिखा था।

यह काव्य सुनकर पादरी महाशय बहुत खुश हुए और उन्होंने हिंदूधर्म के तत्त्वज्ञान की हृदयपूर्वक प्रशंसा की।

प्रकाशानंदजी महाराज भी यह काव्य सुनकर बहुत खुश हुए थे और उन्होंने श्रीमोटा को, उस काव्य के जपमाला की मणियों जितने, १०८ श्लोक करने का सुझाव दिया। बाद में यह काव्य 'तुज चरणे' इस नाम से प्रसिद्ध हुआ और आज तक करीब पच्चीस हजार भक्तों के संग्रह में यह काव्य बिराज रहा है।

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

४४. ब्याह

'अपनी जीवननौका किस दिशा में जा रही है और कौनसा ध्येय स्वयं को प्राप्त करना है' इसकी समझ श्रीमोटा को थी। वह

ध्येय साकार करना, या वह करते-करते खुद को होम करना, यही मात्र उनकी एकमेव इच्छा थी। इसलिए ब्याह के बंधन में और उसकी जिम्मेवारी में अटकना उस इच्छा के सुसंगत न था, अनुकूल न था।

फिर भी माँ की तो इच्छा थी कि चुनिया ब्याह रचे। दो-चार बार उसने यह भाव प्रकट भी किए, लेकिन उन्होंने दृढ़ता से इनकार कर के इस विषय की चर्चा ही बंद करायी।

आखिर एक दिन मा की सहनशक्ति का अंत हो गया और उन्हें बुलाकर उसने जरा गुस्से में ही उनसे पूछा, 'चुनिया, तुझे बड़ा करने लिए मैंने क्या-क्या नहीं किया ? बर्तन माँजे, कपड़े धोये, मज़दूरी की, कैसे-कैसे कष्ट उठाये, उस माँ की आज्ञा का पालन अगर तुझसे होता नहीं, तो तू गुरुमहाराज की आज्ञा का पालन क्या करनेवाला है ? तुझसे पहले भी अनेकों भक्त हो गये, उन्होंने तो शादी-ब्याह रचे थे। वे तेरे जैसे बिना शादी के अड़े नहीं रहे थे। मैं जानती हूँ कि तू ईश्वर का साधन-भजन करता है, घर में सोता नहीं, शरीर बीमार हो तो भी रात गाँव के बाहर कहीं भी गुजारता है, लेकिन हमें संसार में रहना है और तेरे दूसरे भाईयों को भी रहना है । तू ही अगर ब्याह के लिए 'ना' कहने लगेगा तो अपने कुटुंब की, कुल की इज़्ज़त मिट्टी में मिल जाएगी। तेरे दूसरे भाईयों का क्या होगा ? तुझे शादी करनी ही पड़ेगी।'

माँ के कहने में उन्हें कुछ सार लगा, खास कर 'तुझे बड़ा करने के लिए जिसने तरह-तरह के कष्ट उठाये, कड़ी मेहनत की उस माँ की आज्ञा का पालन अगर तुझसे होता नहीं, तो तू तेरे गुरु की आज्ञा का पालन क्या करनेवाला है ?'-ये उसके शब्द उनके हृदय में तीर की तरह 'सूंऽऽ सूंऽऽ' कर के घुस गये। उनका चेहरा उतर गया और वे गहन विचारों में डूब गये।

श्रीमोटा की संमति प्राप्त करने के लिए माँ ने और एक तरकीब की । वह गोदड़िया स्वामी से मिलने गयीं । नडियाद में संतराम मंदिर के पास 'छांगेश्वर महादेव' का मंदिर है, वे प्राय: वहाँ आते थे । श्रीमोटा उन पर बहुत भक्तिभाव रखते थे, यह बात वह अच्छी तरह से जानती थी । उनसे मिलकर उसने आँखों में पानी लाकर गिड़गिड़ाकर उनसे प्रार्थना की कि, 'महाराज, कुछ कर के मेरे चुनिया को शादी के लिए राज़ी करो । मेरी उतनी एक ही इच्छा रह गयी है ।'

महाराज ने उन्हें आश्वासन दिया, 'माताजी, आप घर जाओ। मैं सब कुछ ठीकठाक करता हूँ, आप बिलकुल चिंता न करना।'

कुछ दिनों के बाद श्रीमोटा का महाराज के यहाँ जाना हुआ। उस समय महाराज ने उन्हें प्रेम से पूछा, 'चुनीलाल, तू माँ का ऋण मानता है या नहीं ?'

आज ही यह प्रश्न महाराज क्यों पूछ रहे हैं, यह श्रीमोटा समझ नहीं पाये । अपनी उलझन दबाते हुए उन्होंने कहा, 'जी बापजी, निश्चित ही ।'

'तो फिर जिस माँ ने तेरी टट्टी-पेशाब सम्हालकर, बीमारियाँ झेलकर और दु:ख-कष्ट भोगकर तुझे बड़ा किया उसकी बात तुझे माननी चाहिए या नहीं ? उस बेचारी की एक ही माँग है कि 'मेरा लाड़ला ब्याह करेगा तो सुखी होगा ।'... बेटा, माँ की माँग को ठुकराकर उसके हृदय को दु:खी न करना ।'—गंभीरता से महाराज ने श्रीमोटा को समझाया ।

महाराज की इस प्रकार की अप्रत्यक्ष आज्ञा के बाद अब माँ को 'ना' कहने का सवाल ही नहीं उठता था । माँ को तो मानो आसमान ही हाथ में आ गया । वह आनंद से फूली न समायी,

लेकिन श्रीमोटा ने माँ को दृढ़ता से चेतावनी दी, 'मैं ब्याह रचाऊंगा, लेकिन अनावश्यक और आडंबर का खर्चा मैं होने न दूँगा और कर्ज़ लेकर कुछ भी नहीं करना ।'

बेटे ने 'हाँ' कही दी इसमें ही उस माऊली को आनंद था। उसने यह सब कुछ स्वीकार किया ।

श्रीमोटा ने मन में विचार किया, 'ब्याह अगर होनेवाला ही है, तो हो जाने दो । तुझमें आदर्श के प्रति निष्ठा कितनी दृढ़ है, उससे तू कितना ढल जाता है, इसका अनुभव तो हो जाएगा । इस संग्राम में से तुझ में शौर्य, पराक्रम, तेजस्वीता ये गुण प्रगट होंगे।'

शादी की सब तैयारी हो चुकी । नडियाद से अहमदाबाद जाने के लिए वरपक्ष की मंडली तैयार हुई । सामान-सुमान बाहर निकालकर सब घोड़ागाड़ी की प्रतीक्षा में बाहर ही खड़े रहे । लेकिन यह क्या ? वरराजा (श्रीमोटा) अपना सामान खुद उठाकर स्टेशन की ओर पैदल चलने लगे । मजबूरन् सभी को वर के पीछे-पीछे चलते ही जाना पड़ा ।

रेलवे से अहमदावाद स्टेशन पर आने के बाद वहाँ से विवाहस्थान में भी वरपक्ष चलकर ही पहुँचा । यह आत्यंतिक कंजूसी और मूर्खता है ऐसी निंदा कइयों ने की, लेकिन लोकनिंदा की परवा श्रीमोटा को कहाँ थी ? वे अपने विचारों में, धारणाओं में दृढ़ थे। सिद्धांतों के बारे में किसी तरह का समझौता करना उनके खून में ही नहीं था ।

ब्याह की विधियाँ शुरू हुईं । महाराज ने आकर 'शुभमंगल' उच्चारना शुरू किया । श्रीमोटा का स्मरण और प्रार्थना ये तो जब वे नडियाद से निकले, तभी से अखंडित रूप से जारी थे । उसमें

इतनी गहनता थी कि उन्हें भजन गुनगुनाकर प्रयत्नपूर्वक शरीर का होश रखना पड़ता था ।

अब महाराज का मंत्रउच्चारण शुरू हुआ और वह बाह्यभाव टिकाये रखना भी श्रीमोटा के लिए कठिन होने लगा । लग्नमंडप में सब लोगों के सामने भजन गाना किसी हालत में संभव न था। अगर वैसा करते, तो उसकी माँ को लगता कि, 'चुनिया ने मेरी इज़्ज़त मिट्टी में मिला दी । थोड़े ही समय में उन्हें ऐसी भावावस्था प्राप्त हुई कि उनका बाह्यभान पूर्णतः लोप हो गया । उनका शरीर निष्कंप हुआ और अधखुले नेत्रों से अश्रुबिंदु टपकने लगे ।

इस अकल्पित और अनाकलनीय घटना से मंडप में हाहाकार मच गया । उन्हें कुछ बीमारी ने पकड़ा होगा या कुछ बाधा हो गयी होगी ऐसी शंका कइयों के मन में आयी ।

वरपक्ष के लोगों ने वधूपक्ष को समझाया कि, 'इन्हें ऐसा होने की आदत है । आप डरना नहीं । थोड़े-ही समय में वे होश में आ जाएँगे ।'

यह सब देखकर उद्विग्नता से माँ चिढ़कर बोली, 'कलमुए ने ब्याह के समय भी नाटक करना नहीं छोड़ा ।' करीब एक घंटे के बाद वे भावसमाधि से होश में लौटे और उसके बाद बाकी विधियाँ प्रारंभ हुईं और यथोचित रूप से और निर्विघ्नता से पूर्ण हुईं । अब उनका गृहस्थाश्रम में पदार्पण हुआ था ।

शादी के दिन भी वधू को बुखार था । वैसे तो वह बहुत दिनों से बीमार ही थी । शादी पूरी होते ही उसके चाचा उसे मायके ले गये । बीमारी के कारण फिर उसका नडियाद आना भी संभव नहीं हुआ । क्षय की बीमारी ने उसके शरीर को ग्रस लिया । 'शादी के मंडप में उपस्थित रहने का अपना ऋणानुबंध' पूर्ण कर के

सौभाग्य का तिलक माथे पर लेकर चार-छ महीनों में ही उसने शरीर छोड़ दिया ।

शादी के बारे में पूछने की हिम्मत, श्रीमोटा की माँ, फिर कभी भी जुटा न सकी ।

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

४५. 'जब तक तू मुझे देखता नहीं, तब तक सब व्यर्थ !'

श्रीसद्गुरु ने दी हुई साधना श्रीमोटा कर रहे थे । साधना में बाधाएँ, विघ्न, संघर्ष तो रहनेवाले ही हैं । उनका अतिक्रमण किये बिना यशोमंदिर में प्रवेश होगा भी कैसे ? छैनी के घाव सहे बिना पत्थर में से मूर्ति प्रगट होगी भी कैसी ?...हरएक साधक को शुद्धिकरण के लिए इस अग्निदिव्य से गुजरना पड़ता ही है ।

उनके आयुष्य में भी वह घड़ी आ चुकी । विकारों की उद्दाम लहरों का तांडवनृत्य शुरू हुआ । जंगल में आग लगने पर पशुपक्षी और जानवर इधर-उधर भागने लगते हैं, वैसी उनकी स्थिति हुई। नामस्मरण और प्रार्थना के जलप्रपात से वह आग बुझाने के उन्होंने प्राणपूर्वक प्रयत्न किये, लेकिन सब कुछ नाकामयाब रहा, निष्फल रहा ।

बड़े-बड़े तपस्वियों के और योगियों के जीवन में भी इन विकार की लहरों ने झंझावात खड़े किए हैं । श्रीमोटा की भी वैसी ही दयनीय स्थिति हुई । पानी के भँवर में अटककर वे अंदर-अंदर गहराई तक डूब गये और उनके प्राण कंठ तक आ गये, श्वास अटक गया, जीव व्याकुल हुआ ।

ऐसी घनघोर स्थिति में भी उनके पुरुषार्थ में खंड न था। स्मशान के पास तालाब में खड़े होकर वे आर्तता से और आर्द्रता से जोर-जोर से सारी रात आक्रंद करते रहते थे, उन्हें रिझाते रहते थे। गंगाप्रपात की तरह स्मरणधारा तो अखंडितता से बह रही थी। कुछ स्थूल उपाय भी कर के देखे, लेकिन सभी का परिणाम शून्य।

एक तूफानी बाढ़ की वेगवान जलधारा में वे फँस गये थे और वह जलधारा उन्हें जबरन् खींचकर ले जा रही थी। ऐसी आणीबाणी की स्थिति में* एक श्रीसद्गुरु बिना और कोई तार सकेगा ऐसा लगता नहीं था।

उस समय, श्रीसद्गुरु को हृदय में प्रगट करने की कला उन्हें हस्तगत नहीं हुई थी, इसलिए उनसे प्रत्यक्ष मिलकर, उनके चरणों में लीन होकर उनकी याचना करने का और मार्ग प्राप्त करने का उन्होंने दृढ़ निश्चय किया।

'श्रीसद्गुरु को कहाँ ढूँढ़ना और कैसे ?' यह भी एक यक्षप्रश्न था। उस समय हरिद्वार में कुंभमेला चल रहा था। **कुंभमेला यानी साधुसंतों का मायका**। तीन-चार साल स्थूल रूप से मिल न पानेवाले साधुसंत इस मौके पर इकट्ठे होते हैं, और अपनी उपस्थिति से वहाँ नये प्राण का संचार करते हैं। कुंभमेले में सभी स्थानों के साधुसंत, संन्यासी, मुनि, बैरागी, योगी, महंत, सिद्ध आते हैं। सभी को आकर्षण रहता है वहाँ आने का। गुरुदेव की मुलाकात वहाँ ही होगी ऐसा श्रीमोटा के मन में आया और उनके कदम चलने लगे कुंभमेला की तरफ।

कुंभ के वातावरण में एक अनोखा चैतन्य था। वहाँ हजारों-लाखों आदमियों का अथाह समुंदर फैला हुआ था। जगह-जगह पर साधुसंतों के अखाड़े, धूनियाँ, तंबू, राहुटियाँ, पड़ाव लगे हुए

* ऐसी कठिन, महत्त्वपूर्ण और नाजुक घड़ी में।

थे। दर्शन के लिये चिउँटियों की तरह भीड़ लगी हुई थी। इतने बड़े कुंभमेले में श्रीसद्गुरु को खोजना यानी घास की गंजी में सुई खोजने जैसा ही था। हरएक जगह पर जाकर वे श्रीसद्गुरु की खोज करने लगे।

अपनी माँ से बिछड़े हुए बछड़े की तरह वे सर्वत्र श्रीसद्गुरु की खोजमें घूम रहे थे। अपने देह की, खाने-पीने की, निद्रा की उन्हें कोई सुध-बुध नहीं थी। दो दिन और दो रातें इसी तरह गुजर गयीं। एक पल का भी विश्राम किये बिना अखंडितता से उनकी खोज चल रही थी। आख़िर वे थककर चूर-चूर हो गये, एक कदम भी आगे उठाना मुश्किल हो इतना शरीर भारी हुआ, गुरुदेव से मुलाकात न होने के दुःख से आक्रंदित होकर अंतर के आक्रोश की परिसीमा हुई और थककर वे गंगामाता के किनारे पर बैठ गये। तीसरा दिन गुजर गया था और सांझ ढल चुकी थी। रात ने चमचम करनेवाले तारों से सजायी हुई काली चद्दर सृष्टि के बदन पर ढाँकने की शुरुआत की थी। सहज ही उनकी दृष्टि बगल में गयी और उन्हें अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ। पेड़ के नीचे अपनी ही मस्ती में बालयोगी महाराज बैठे हुए थे।

अंधेरे कमरे में अचानक बिजली कौंधने से प्रकाश हो जाए वैसा ही श्रीमोटा को प्रतीत हुआ। वे दौड़ते-दौड़ते उनकी ओर गये और अपने शरीर को उनके चरणों पर डाल दिया। एक समर्पित पुष्प की तरह वे वहीं पड़े रहे। आँखों से आँसुओं की पावन धाराएँ बह रही थी और उसके अभिषेक से श्रीसद्गुरुचरण धोये जा रहे थे। पैंतालीस मिनट तक वे उसी स्थिति में श्रीचरणों में पड़े रहे, प्रार्थना करते हुए खुद को रिक्त करते रहे।

आखिर गुरुमहाराज ने उन्हें उठाया।

श्रीमोटा ने कहा, 'गुरुदेव ! मैं आपको तीन दिन से खोज रहा हूँ, लेकिन तुम तो पास ही होते हुए भी दिखायी नहीं दिये ?'

हँसकर श्रीबालयोगी महाराज ने कहा, 'मैं तो तुझे देख ही रहा था, लेकिन जब तक तू मुझे देखता नहीं, तब तक सब व्यर्थ ।'

श्रीमोटा तो अवाक् हो गये ।

'लेकिन बापजी । मुझे थोड़ा-सा बुला लिया होता तो ? तुम्हें ऐसा नहीं लगा क्या कि यह लड़का बेचारा भूखा-प्यासा अपने गुरु को खोज रहा है, सुध-बुध खो गया है ?' श्रीमोटा ने मीठे स्वर में प्रेमपूर्वक शिकायत की ।

'तुझे बुलाना मेरा काम नहीं है । मुझे बुलाने का काम तेरा है । तू मुझे देखता नहीं, तब तक बुलाना व्यर्थ ही है ।'-श्रीबालयोगी महाराज ने कहा ।

श्रीसद्‌गुरु के इन सीधेसादे लगनेवाले शब्दों में भरा हुआ गहन और सूक्ष्म अर्थ समझने की शक्ति उस समय उनमें नहीं थी । उसका संपूर्ण आकलन उन्हें बाद में हुआ । जिस हेतु से श्रीसद्‌गुरु के पास जाना हुआ था, उससे मुक्त होने की सूक्ष्म कला और सूक्ष्म साधना उनके श्रीसद्‌गुरु ने उन्हें तब प्रदान की । वह साधना करते-करते प्राण कंठ तक आ जाएँ इतनी वह कठिन थी, फिर भी श्रीमोटा ने वह दृढ़ता से पूरी की और विकारों के चक्रीतूफान से बाहर निकलकर खुद में स्थिर बन गये, शांत हो गये ।

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

४६. शाप या वरदान ?

प्रार्थना, स्तवन, भजन, धारणा, ध्यान, नामस्मरण इत्यादि द्वारा भगीरथ प्रयासों के बावजूद भी श्रीमोटा अपना नामस्मरण सोलह

घंटों से अधिक बढ़ा नहीं सके, यह बात उन्हें काँटे की तरह चुभ रही थी ।

एक बार 'बोदाल हरिजन आश्रम' के उद्‌घाटन निमित्त से सरदार वल्लभभाई पटेल आनेवाले थे । श्रीमोटा और हेमंतकुमार नीलकंठ ये दोनों सभा के संचालक थे ।

सभा का समय हुआ और सरदारश्री आये । खचाखच भरे हुए जनसमुदाय ने हर्षध्वनि करते हुए उनका जयजयकार किया । 'हरिजन आश्रम के उद्‌घाटन के लिए इतने लोग इकट्ठे हुए हैं यह बड़ी खुशी की बात है और इसके लिए मैं आपका अभिनंदन करता हूँ । अस्पृश्यता का कलंक समाज से दूर हो इसके लिए आप और हम प्राणपूर्वक प्रयत्न करें' ऐसा आह्वान भी उन्होंने किया ।

सभा विसर्जित हुई और सभामंडप एकदम खाली हो गया । दिनभर के कठिन परिश्रम से थके हुए श्रीमोटा सोने के लिए खेत में चल गये । उन्हें साथ देने के लिए श्रीठक्करबाप्पा और श्रीकान्त सेठ भी आये । उन दोनों के बीच में श्रीमोटा सो गये ।

दिन में मंडप खड़ा करते समय खेत की सफ़ाई करनी पड़ी थी, उस वक्त एक साँप लोगों ने देखा था । लोग उसे मार डाले उसके पहले श्रीमोटाने ही उसे बचा लिया, जिससे इधर-उधर चला गया था । अब सब कुछ शांत होने पर उस निर्जन जगह पर वह साँप फिर से लौट आया। उसने श्रीठक्करबाप्पा और श्रीकान्त सेठ को छोड़कर केवल श्रीमोटा की ही जाँघ पर गहरा दंश किया और आया था वैसे ही झट से चला गया ।

पीड़ा से कराहते हुए, चिल्लाकर श्रीमोटा एक झटके में जग गये और उठकर बैठ गये । उनके सिर में मानों जोर से झटका

लगा, माथे के मध्यभाग में कुछ 'सूंऽऽ सूंऽऽ' करते घुस गया हो, ऐसा भी लगा और माथा एकदम भारी हो गया । जिस जगह पर जाँघ में दंश हुआ था, वहाँ भी पीड़ा हो रही थी ।

श्रीमोटा के चिल्लाने से श्रीठक्करबाप्पा और श्रीकान्त सेठ भी हड़बड़ाकर जग गये । सर्पदंश हुआ है, यह जानते ही उन्होंने नीम के पत्ते और नमक श्रीमोटा को खाने के लिए दिया । नीम की कड़वाहट उन्हें जरा भी महसूस नहीं हुई । अब वे धीरे-धीरे अपना होश खो रहे थे । **उसी समय गांधीजी का एक वचन उन्हें अचानक याद आ गया । 'जिसे साँप ने काटा हो, उसे मार-मार के भी जागृत रखना, उसमें हिंसा नहीं बल्कि केवल अहिंसा ही है ।'**

श्रीमोटा ने दृढ़ता से निश्चित किया कि, 'सर्पदंश हुआ है और इसमें से ज़िंदा रहना हो, तो किसी भी हालत में सभान-जागृत रहना ही चाहिए ।' इसलिए उन्होंने जोर-जोर से 'हरिःॐ' का जप शुरू किया । एक तरफ़ सर्प का ज़हर उन्हें बेहोशी में ले जा रहा था और दूसरी तरफ़ प्राणपूर्वक और गहराई से होनेवाले नामस्मरण से जागृत रहने का प्रयत्न भी अखंडता से शुरू था ।

इस अचानक घटी हुई घटना से सभी बहुत डर गये और श्रीमोटा को 'आसोदर' इस गाँव में साँप का ज़हर उतारनेवाले आदमी के पास ले जाया गया । लेकिन उसके सारे मंत्र-तंत्र और प्रयत्न निष्फल रहे । श्रीमोटा की पीड़ा, हरिःॐ का स्मरण और ज़हर का फैलाव ये तीनों चालू ही थे । उन्हें फिर से बोदाल लाया गया । श्रीठक्करबाप्पा को यह सब बताया गया ।

अब यह मंत्र-तंत्र का चक्कर छोड़कर किसी अस्पताल में ही श्रीमोटा को ले जाना उचित है, यह सोचकर ठक्करबाप्पा ने 'बोरसद' से टॅक्सी मँगवाकर तुरंत ही आणंद के 'मिशन हॉस्पिटल' में श्रीमोटा को ले जाया गया ।

डॉ. कुक उस समय अस्पताल के प्रमुख थे । उन्होंने सब हकीकत गौर से सुन ली और श्रीमोटा की जाँच की । अपनी नाराजगी दर्शाते हुए जरा गुस्से में ही उन्होंने कहा, 'आपने लाने में बहुत देर कर दी है । छिहत्तर घंटे बीत चुके हैं और ज़हर सारे शरीर में फैल गया है । मैं पूरी कोशिश करता हूँ, लेकिन मैं कोई वादा नहीं करता । अब बाज़ी भगवान के ही हाथ में है ।'

श्रीमोटा को तुरंत ही ऑपरेशन थिएटर में ले जाया गया । वहाँ उन्हें 'स्टमक वॉश' और 'एनिमा' दिया गया । उसमें जो पानी निकला उसका पृथक्करण किया तो मालूम पड़ा कि उसमें बहुत भारी मात्रा में क़ातिल ज़हर था ।

'एनिमा' और 'स्टमक वॉश' देना जारी रहा । धीरे-धीरे पानी में ज़हर की मात्रा कम होती चली और आखिर ऐसा पानी निकला कि जिसमें ज़हर करीब-करीब नहींवत् था । वह देखते ही डॉक्टर के सिर का भार उतर गया और चेहरे पर का तनाव दूर हो गया।

निश्चिंत होकर डॉक्टर ने कहा, 'पेशेंट का सतत हरिस्मरण, ईश्वर की कृपा और मेरे प्रयत्न इन तीनों के कारण ही पेशेंट ज़िंदा है । अन्यथा इतना क़ातिल ज़हर सारे शरीर में फैलने के बाद शायद ही कोई बच सकता है । सब ईश्वर की ही दया है । अब आप पेशेंट को घर ले जा सकते हैं, मेरा काम अब ख़त्म हुआ ।'-इतना कहकर थके हुए डॉक्टर विश्राम करने चले गये । एक पेशेंट को वे बचा सके, इसका समाधान उनके चेहरे पर हर कोई पढ़ सकता था ।

कहा गया है कि 'हरएक शाप के लिए एक वरदान भी होता है ।' 'For every curse, there is a blessing for it.' नियति द्वारा घटी हुई इस घटना के बाद श्रीमोटा के नामस्मरण में अखंडता आ गयी, उनके अंदर अजपाजप प्रगट हुआ ।

नियति हँसकर उन्हें पूछ रही थी, 'जो घटा वह शाप था या वरदान ?'

उनके मन में विचार आये, 'हरएक कर्म करते समय, नामस्मरण अखंडता से करने के लिए मैंने कितने प्रयत्न किये । कई बार हार भी हुई । लेकिन अब की घटना के कारण मुझे मृत्यु का अनुभव भी प्राप्त हुआ और साथ-साथ, जो परिश्रम से भी साध्य नहीं हुआ था, वह सरल और सहज बन गया । सचमुच ही यह भगवान की कृपा ही है ।'

'जीवन के भले और बुरे दोनों प्रसंगों में उस भगवान की केवल कृपा ही होती है, केवल कृपा ।'

अपने अंदर अखंडता से चलनेवाला अजपाजप श्रीमोटा शांति से अनुभव कर रहे थे । अंदर हृदयसिंहासन पर आरूढ़ होकर श्रीसद्‌गुरु छैनी से जीवत्व की ख़पचियाँ (कंकडियाँ) तोड़ रहे थे और उसमें से ही वह अजपाजप की ध्वनि स्पंदित हो रही थी ।

मूर्ति जल्द ही प्रगट होनेवाली है, यह अब सुनिश्चित था ।

✤ ✤ ✤

॥ हरिः ॐ ॥

४७. अवधूत का समागम

एक बार नडियाद के 'मरीडा' विभाग के बच्चों को पाठशाला ले जाने के लिए श्रीमोटा उन्हें इकट्ठा कर रहे थे । उसी समय एक हरिजन बंधु ने आकर उन्हें समाचार दिया, 'चुनीभाई, अपने कुंड के पीछे के खेत में एक नग्न आदमी सोया हुआ पड़ा है । बहुत देर से वहाँ सोया हुआ है । किसी भी तरह का हलनचलन करता नहीं है ।'

सुनकर उन्हें आश्चर्य हुआ ।-'ऐसा आदमी या तो पागल होगा, या फिर उच्च स्थिति का कोई अवधूत होगा । इन दोनों के अलावा और किसी की मजाल नहीं है कि इस तरह नग्न पड़ा रहे ।' उनके मन में विचार आया ।

पाठशाला का अपना काम दूसरे शिक्षक को सौंपकर श्रीमोटा तुरंत घर चले गये और नये कपड़े पहनकर खेत की ओर चल पड़े । रास्ते में उन्होंने एक बड़े लोटे में दो सेर दूध भी ले लिया ।

खेत में पहुँचकर देखा तो वह नग्न व्यक्ति अब भी सोया हुआ ही था ।

कुछ दूरी पर बैठकर श्रीमोटा ईश्वरस्मरण करने लगे । एक-दो घंटे के बाद उस व्यक्ति में कुछ चलनवलन दिखायी पड़ा । और कुछ समय बीत गया । फिर उसने करवट बदली और वह फिर से सो गया । थोड़ी देर के बाद फिर से करवट बदलकर आँखें खोलकर उसने श्रीमोटा की ओर देखा ।

श्रीमोटा ने अपने हाथ का लोटा उस अवधूत के सामने धरा और प्रेम से निवेदन किया 'प्रभु ! कृपा करके इस दूध को स्वीकार करोगे, तो आपकी बड़ी कृपा होगी ।'

एक शब्द भी कहे बिना उन्होंने लोटा हाथ में ले लिया और गटगटाकर सब दूध पी गये ।

अब शाम के छ बजने को आये थे । उन्होंने श्रीमोटा को फ़र्माया, 'मुझे किसी मुसलमान के घर ले चल ।'...वे मराठी में बात कर रहे हैं, ऐसा उनके मन में निश्चित हुआ ही था ।

'ऐसी नग्न स्थिति के व्यक्ति को कौनसा मुसलमान अपने घर में रख लेगा ? ऐसी अवधूत विभूति किस समय कैसा बर्ताव करेगी यह क्या कहा जा सकता है ?'-विचारों के भँवर में श्रीमोटा फँस गये ।

विचार करते-करते उन्हें हकीमसाहब का स्मरण हुआ । 'मेरा उनसे प्रेमसंबंध है, इसलिए उनसे ही पूछ लूँगा ।'-उन्होंने निश्चित किया ।

वे हकीमसाहब के घर गये । सद्‌भाग्य से वे घर में ही थे। श्रीमोटा ने नम्रता से उन्हें पृच्छा की, 'हकीमसाहब, कुंड की पिछली ओर एक अवधूत आये हुए हैं और उन्हें किसी मुसलमान के घर में ही रहना है, इसलिए आपसे प्रार्थना करता हूँ। अपने घर में उन्हें रखने की अनुमति अगर आप से प्राप्त हो, तो मैं खुद उनकी सेवा में उपस्थित रहूँगा और तुम्हें किसी बात की तक़लीफ़ न हो इसका ख़्याल रखूँगा ।'-हकीमसाहब ने प्रेमपूर्वक यह बात स्वीकार कर ली।

श्रीमोटा ने स्पष्टता से आगे कहा, 'हकीमसाहब, अवधूत संपूर्णतः नग्नावस्था में है, लेकिन आप डरना नहीं। मैं उन्हें समझाऊँगा और बारदान के टुकड़े से उन्हें ढाँक दूँगा ।'

यह सुनते हकीमसाहब के चेहरे पर नाराज़गी दिखायी दी और वे सोच में पड़ गये । यह देखकर श्रीमोटा ने बात आगे चलायी— 'हकीमसाहब, इस महात्मा को मुसलमान के घर में रहना है, इसीलिए मैं आप से विनती करता हूँ। हिंदू के घर में रहना अगर उन्हें मंज़ूर होता, तो मैं उन्हें अपने खुद के घर में ही ले जाता, या अन्यत्र भी उनका इन्तज़ाम करना मुमकिन था। अगर आप 'हाँ कहें, तो मैं अंधेरा होने पर उन्हें घोड़ागाड़ी में ले आऊँगा। घोड़ागाड़ी के चारों ओर में पर्दे लगा लूँगा, जिससे कोई उन्हें देख न सकेगा । तुम्हारे घर के सामने आने पर त्वरित उन्हें सीढ़ियों से ऊपर ले आऊँगा । फिर कोई जान भी न पाएगा । उसमें तो आपको कोई आपत्ति नहीं है न ?'

इसपर हकीमसाहब ने गंभीरता से कहा, 'भगत, तुम्हारे अवधूत का बर्ताव ऐसा न हो, कि जिससे हमें उन्हें 'बाहर जाओ' कहना पड़े और इसकी जवाबदारी आपके ही सिर पर होगी यह ठीक से समझ लो ।'

हकीमसाहब के राज़ी होने के बाद घोड़ागाड़ी का इन्तज़ाम करने के लिए श्रीमोटा चले गये । घोड़ागाड़ी लेकर जब वे कुंड पर पहुँचे, तब तक सात बज चुके थे और सर्वत्र अंधकार का साम्राज्य फैल रहा था। श्रीमोटा ने हाथ जोड़कर अवधूत से प्रार्थना की, 'बाबा ! हमें बस्ती में से जाना है, इसलिए यह छोटा-सा बारदान का टुकड़ा कमर पर लपेट लो और घोड़ागाड़ी में बैठ जाओ । घर आने पर तुरंत सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर चले जाना ।'

अवधूत ने कुछ कहा नहीं, लेकिन श्रीमोटा की प्रार्थनानुसार कमर पर बारदान लपेटकर वे घोड़ागाड़ी में बैठ गये । श्रीमोटा ने घोड़ागाड़ी के सब पर्दे नीचे गिराये और हकीमसाहब के घर की ओर घोड़ागाड़ी चलने लगी ।

हकीमसाहब के घर की सीढ़ियों के पास घोड़ागाड़ी पहुँचते ही श्रीमोटा ने उसे रुकवाया और बाबा को गाड़ी से उतरने की प्रार्थना की। बाबा नीचे उतर आये और एक झटके में ही सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर चले गये । उनका शरीर स्थूलकाय होते हुए भी वे ऐसी त्वरा-से और स्फूर्ति से ऊपर चले गये कि वह देखकर श्रीमोटा तो स्तंभित हो गये ।

गाड़ीवान को किराये की रकम देकर श्रीमोटा भी ऊपर चले आये और उन्होंने अवधूत से निवेदन किया-'बाबा, अब थोड़ी देर के लिए आराम करो । मैं तुम्हें बैठने के लिए गद्दी, भोजन के

लिए प्रसाद, पानी का मटका और दो गिलास इत्यादि आवश्यक वह सब ले आता हूँ ।'

इन सब वस्तुओं का इन्तज़ाम कर के श्रीमोटा तुरंत ही लौट आये, साथ-साथ मलमूत्र विसर्जन के लिए मिट्टी के चौड़े बर्तन, ईंटें, मिट्टी और झाड़ू भी ले आये ।

फिर उन्होंने ईंटें ढंग से रखकर ऊपर मिट्टी का बर्तन रखा और उसमें मिट्टी डाल दी । बाबा के शौच के लिए इस तरह का आयोजन हुआ । फिर झाड़ू लेकर उन्होंने जमीन ठीक से साफ़ कर ली और पानी से भरा हुआ मटका भी एक कोने में रख दिया।

इतना होने के बाद उन्होंने बाज़री की रोटी, सब्जी और दूध उनके सामने रखा । उन्होंने वह सब खा लिया । इससे उन्हें वह भाया होगा ऐसा श्रीमोटा ने तर्क किया ।

'बाबा, रात में सोने के लिए शतरंजी, गद्दी-तकिया इत्यादि ले आऊँ ?'-श्रीमोटा ने बाबा को दो-तीन बार पूछा, लेकिन उन्होंने उनके प्रश्न की उपेक्षाा की और अपनी ही मस्ती में बैठे रहे, फिर वह बात श्रीमोटा ने आगे चलायी नहीं ।

'मुझे बाबा की सेवा करनी चाहिए' ऐसा भाव श्रीमोटा के अंतर में उत्पन्न हुआ और वे उनके पास गये और उनके पैरों पर धीरे-धीरे हाथ फेरने लगे । बाबा ने कुछ विरोध नहीं किया, फिर उन्होंने हाथ-पाँव रगड़ना शुरू किया । यह सेवा करने का सद्‌भाग्य उन्हें सिर्फ़ एक दिन ही प्राप्त हुआ, बाद में बाबा ने इनकार किया।

अवधूत श्रीमोटा को कुछ भी कहते-बताते नहीं थे, इसलिए श्रीमोटा खुद-स्वयं ही, सूझे वैसी सेवा किया करते थे । बाबा को मलमूत्र विसर्जन के लिए श्रीमोटा ने मिट्टी के चौड़े बर्तनों का इन्तज़ाम किया था, फिर भी वे तो उसका उपयोग न कर के मन

में आये वहाँ और मन में आये तभी टट्टी-पेशाब की विधि करते थे । श्रीमोटा वह सब प्रेम से साफ़ कर लेते और बाबा का गुह्य अंग भी धोकर साफ़ कर लेते, क्योंकि शौचविधि करने के बाद बाबा कुछ भी साफ़सफ़ाई रखते नहीं थे । उन्हें अपने शरीर का मानो होश ही नहीं था । बाबा की सेवा में किसी प्रकार की भी कमी न हो, इसके लिए श्रीमोटा सतत सावधान और जागृत रहते थे । सेवा करते समय उनका नामस्मरण, प्रार्थना, भजन यह भी चलता ही रहता था । बाबा यह सब कुछ देखते थे, सुनते थे, लेकिन उन्होंने अपना मौन कभी नहीं छोड़ा ।

ऐसे कुछ दिन गुज़र गये और फिर एक विस्मयजनक घटना घटी । अवधूत का खाना-पीना सब ठीकठाक चल रहा था, लेकिन चार-पाँच दिन उन्होंने मलमूत्र विसर्जन किया ही नहीं । फिर भी उनका शरीर तो संपूर्णतः स्वस्थ था । बीमारी या विकृति का कोई लक्षण नज़र न आया । 'मलमूत्र त्यागपर अपना पूर्ण काबू है' यह उन्होंने इस घटना द्वारा स्पष्टरूप से श्रीमोटा को बता दिया ।

अवधूत के आगमन को दस-बारह दिन इस तरह गुज़रने के बाद उन्होंने 'अब लौट जाना है' ऐसा श्रीमोटा को संकेत दिया । फिर श्रीमोटा ने पहले जैसे ही घोड़ागाड़ी का प्रबंध किया और उसी तरह 'उत्तरसंडा' की ओर घोड़ागाड़ी चलने लगी ।

कुछ अंतर पार करने पर बाबा ने घोड़ागाड़ी रोकने का इशारा किया । अब इसके आगे उन्हें चलकर जाना है, यह श्रीमोटा जान गये और उन्होंने घोड़ागाड़ी रोककर बाबा को नीचे उतरने दिया और उनके चरणों में प्रणाम किया ।

अवधूत चलने लगे । श्रीमोटा भी उनके साथ-साथ चलने लगे। कुछ समय के बाद अवधूत ने कहा, 'तू भी मेरे साथ चल।'

श्रीमोटा ने हाथ जोड़कर बताया, '**प्राप्त हो गये हुए व्यक्ति-परिस्थिति-ऋणानुबंध के संयोगानुसार, उनके प्रति मुझसे अपेक्षित धर्म का, ईश्वर के लिए, हो सके उतना, प्रेमभक्तिपूर्वक पालन करना, इसीको में 'प्रत्यक्ष धर्म' मानता हूँ ।** फिर भी, आप अगर मुझे आगे साधना में उच्च गति प्राप्त करा देनेवाले होंगे, तो मैं आऊँगा ।'

इस पर कुछ समय मौन रहकर फिर बाबा बोले, 'जरूर, तू मेरे स्थान में आना ।'

श्रीमोटा ने जवाब दिया : 'आप मेरी इन तीन बातों का स्वीकार करें : मेरी साधना फलद्रुप होने के लिए आप कृपा करें, मुझे आपका सतत दर्शन हो और आपके प्रति उत्कट भावभक्ति मुझमें प्रगट हो, और आप जहाँ कहीं भी होगे वहाँ आने-जाने की रकम मुझे अनायास किसी से प्राप्त हो—ये तीन बातें अगर पूरी होंगी, तो ही मैं आपके स्थान आ पाऊँगा । आप मेरी इन तीन बिनतियों का स्वीकार करें ।'

इस पर कुछ न बोलते हुए अवधूत चले गये और श्रीमोटा गाँव में लौट आये । लौटने पर पहले हकीमसाहब के घर जाकर उन्होंने उनकी जगह साफ़सूफ़ कर दी और उन्होंने किये हुए सहकार के लिए उनके प्रति हृदयपूर्वक आभार निवेदन किये ।

हकीमसाहबने बताया, 'भगत, तुम्हारे अवधूत और कोई नहीं, बल्कि साकोरी के 'उपासनीबाबा' थे । तुम्हारी सेवा से वे प्रसन्न हुए और तुम्हें ले जाने के लिए वे आये थे ।'

बाबा से हो गयी हुई बातचीत श्रीमोटा ने हकीमसाहब को विस्तारपूर्वक बतायी । उन्होंने वह सब गौर से सुना और अपना मत प्रदर्शित किया, 'भगत, आप अगर बाबा के साथ जाते, तो बहुत अच्छा होता ।'

लेकिन, अपने कर्म, कौटुंबिक और बाकी जिम्मेवारियाँ और कर्तव्य छोड़कर मैं बाबा के साथ नहीं गया, इसमें कुछ अनुचित किया है ऐसा श्रीमोटा को नहीं लगा और अपने नित्यनैमित्तिक कार्य में वे पूर्व की तरह जुड़ गये ।

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

४८. भजन एक - परिणाम दो!

एक दिन सुबह नित्यक्रमानुसार श्रीमोटा हरिजन पाठशाला जा रहे थे । आते-जाते भजन गाते-गाते जाने की उनकी आदत थी। कौनसा भजन कब गाना यह कुछ निश्चित न था । उत्स्फूर्तता से जो भजन गाने की इच्छा हो, वह भजन वे गाया करते थे ।

हरिजन पाठशाला के रास्ते पर ही एक वैष्णव हवेली* लगती थी । नीचे मंदिर था और ऊपर महाराजश्री रहते थे । हवेली में सुबह-सुबह भगवान के दर्शन के लिए वैष्णव भक्तों की भीड़भाड़ और भागदौड़ यह रोज़ का ही क्रम था ।

आज पाठशाला में जाते समय जब श्रीमोटा उस हवेली के सामने से गुज़र रहे थे तब उनकी जबान पर था एक भजन :

'वैष्णव बना नहीं तू,
हरिजन बना नहीं तू,
क्यों अकड़ में घूमता है ?...वैष्णव...'

जब श्रीमोटा भजन गाया करते, तब उसमें इतने लीन हो जाते कि वे सारी दुनिया भूल जाते । किसीके टीका-निंदा की या स्तुति की परवा किये बिना वे अपनी ही मस्ती में भजन गाते-गाते मार्गक्रमण कर लेते । आज भी वे उसी तरह अपने ही रंग में रंगे गाते-गाते जा रहे थे ।

* वैष्णवों का मंदिर

वैष्णव हवेली में एक वैष्णव भगत ने यह भजन सुना और उसे लगा कि यह आदमी जानबूझकर मुझे चिढ़ाने को और नीचा दिखाने को यह भजन गा रहा है। वह गुस्से से आगबबूला होकर दौड़कर श्रीमोटा के पास आया और उनके मुँहपर उसने एक जोरदार चाँटा लगाया। अचानक पड़ी हुई इस मार से श्रीमोटा तो एकदम स्तंभित हो गए। वे जान ही न पाए कि, 'यह आदमी मुझे क्यों मार रहा है ? मुझसे ऐसी कौन-सी ग़लती हो गयी ?'

चाँटा लगानेवाले उस आदमी का क्रोध अब भी शांत नहीं हुआ था। गुस्से से उसका बदन काँप रहा था। पागल की तरह चिल्लाचिल्लाकर वह कहने लगा, 'साऽऽला, सुबह-सुबह वैष्णवों की निंदा करता है ? जानबूझकर हमें चिढ़ाने के लिए हवेली के सामने ही भजन गाता है ? हम नहीं, तो क्या फिर तू अपने आप को वैष्णव समझता है ? बेशर्म...'

उसकी मार और कटु वचन सहन कर के श्रीमोटा ने दोनों हाथ जोड़कर शांति से स्पष्टीकरण दिया, 'साहब, यह भजन मैं आप को संबोधित करके नहीं गा रहा था, यह तो मैं अपनेआप को सुधारने के लिए गा रहा था और वह भी आज पहली बार ही नहीं, बल्कि कई दिनों से गा रहा हूँ। आपको निष्कारण ग़लतफ़हमी हुई है।'

यह सुनकर क्रोध से बड़बड़ाते हुए वह आदमी चला गया और श्रीमोटा ने हवेली के प्रभुजी को बाहर से ही मानसिक प्रणाम किया और फिर से भजन गाते-गाते पाठशाला की तरफ़ वे चलने लगे।

'प्रभुजी ने ही मेरी परीक्षा करने के लिए उनके द्वार पर लीला कर के उन्हीं के भक्त को चाँटा लगाने को उद्युक्त किया, 'यही भाव उनके मन में था।'

कुछ दिन ऐसे ही बीत गये। उनका दिनक्रम पूर्ववत् चल रहा था।

उपासनी महाराज के नडियाद पधारने के कई दिन बीत गये थे। आजकल उन्हें उस दिगंबर अवधूत का दर्शन बार-बार हो रहा था। साकोरी जाने का दिल भी हो रहा था। दो-चार दिनों में अगर पैसों का इन्तज़ाम हो जाए तो साकोरी जाने का उन्होंने निश्चित किया।

उसी समय, १९२८ में, बारडोली का सत्याग्रह भी जोरों से चल रहा था और स्वयंसेवकों की सूची में श्रीमोटा ने भी अपना नाम दिया था।

बारडोली में बुलावे का ख़त उन्हें आज ही प्राप्त हुआ था। रोज़ की तरह वे आज भी हरिजन शाला में जाने को निकल पड़े और भजन गाते-गाते उसी वैष्णव हवेली के सामने से गुज़रने लगे।

इत्तफ़ाक़ से उनकी जबान पर आज भी वही भजन था :
'वैष्णव बना नहीं तू, क्यों अकड़ में घूमता है ?'

इतने में एक वैष्णव भक्त दौड़ते-दौड़ते उनके पास आया और उसने उनके हाथों में पैंतालिस रुपये रखे।

श्रीमोटा तो अवाक् हो गये। उन्होंने पूछा, 'भाई ! यह रकम किसकी ? और मुझे क्यों दे रहे हो ?'

उस व्यक्ति ने कहा, 'आप रोज़ इस रास्ते से भजन गाते-गाते आते-जाते रहते हो, यह मैं रोज़ देख रहा हूँ। वैसे ही, संतराम मंदिर में दर्शन कर के लौटते समय भी मैंने आपको कई बार वहाँ भी भजन गाते हुए सुना है और इसीलिए मेरे मन में तुम्हारे प्रति प्रेम और एक विशिष्ट भाव पैदा हुआ और कई दिनों से मन में

था कि तुम्हें कुछ दूँ । आज वह इच्छा बहुत प्रबल हो गयी और हाथ में आये उतने रुपये लेकर मैं तुम्हारी ही राह देख रहा था... इसलिए यह अल्प-सी प्रेमभेंट है । कृपया आप इसको स्वीकार करें ।'

यह सुनकर श्रीमोटा का हृदय भर आया । मन-ही-मन उन्होंने प्रभुजी को, श्रीसद्‌गुरु को, उपासनीबाबा को साष्टांग दंडवत् किये ।

अब साकोरी जाना सुनिश्चित हुआ ।

छुट्टी की अरज़ी लिखकर डाकघर में डालकर श्रीमोटा ने प्रस्थान किया साकोरी को, उपासनी महाराज के दर्शन के लिए ।

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

४९. साकोरी में, श्रीउपासनी महाराज के सान्निध्य में !

साकोरी पहुँचनेपर अपना सामान एक जगह रखकर शौच-स्नानादि से निवृत्त होकर श्रीमोटा श्रीउपासनी महाराज के दर्शन के लिए गये ।

उस वक्त बाबा लकड़े के बड़े पिंजरे में बैठे रहते थे और एक छोटी-सी तेरह-चौदह साल की लड़की बाबा की सेवा में रहती थी, जो बाद में 'गोदावरी माता' के नाम से सुविख्यात हुई ।

श्रीमोटा ने बाबा के करीब जाकर साष्टांग दंडवत् किया । बाबा ने उन्हें पिंजड़े के पास ही बैठने की आज्ञा की । वे वहाँ बैठ गये और अपनी नित्य की साधना में जुड़ गये ।

पाँच-छ घंटे इसी तरह बीत गये । बाद में श्रीमोटा को लघुशंका करने की वृत्ति हुई । उन्होंने उठने का प्रयास किया तो उठा नहीं जाता था । बैठकर पैर अकड़ गये होंगे ऐसा भी नहीं था, क्योंकि पैर हिलते थे, घुटने मुड़ते भी थे ।... 'फिर, ऐसा होने

का कारण क्या ?'-उन्हें आश्चर्य हुआ । बाबा ने जहाँ बैठने की आज्ञा की थी वहाँ हाथ-पैर हिलाना संभव हो रहा था, लेकिन उठकर खड़ा होने का प्रयास या दूसरे स्थान पर जाने का प्रयास व्यर्थ साबित हो रहा था ।

यह कुछ अजीब-सी घटना है, इसका श्रीमोटा को अहसास हुआ, लेकिन उसका कारण वे जान न सके । फिर तो, उसके बारे में सोचना बंद कर के वे फिर से अपनी साधना में जुड़ गये । दो-ढ़ाई घंटे बीत गये होंगे । अब लघुशंका रोक रखने की भी सीमा हो गयी थी । संयम रखे भी तो किस हद तक ? उन्होंने फिर से उठने का, हिलने का प्रयास किया, लेकिन शरीर को मानो किसी अदृश्य शक्ति ने उस वर्तुल में जकड़ रखा था । यह क्या और कैसे हो रहा है, उसका निराकरण उन्हें बाद में हुआ । जब वे नामस्मरण, प्रार्थना, ध्यान में निमग्न हुए, तब उन्हें ख़्याल हुआ कि यह सब उपासनी महाराज की ही करामत थी, उन्हीं की लीला थी और उसमें उनका कुछ विशिष्ट हेतु था । उनके शरीर को कुछ भी नहीं हुआ था ।

'यह ज्ञान अंतर में होते ही उस पवित्र जगह में लघुशंका करने का श्रीमोटा का संकोच दूर हुआ । और फिर क्या । पानी की मानो धारा ही बहने लगी । बाद में शौच भी वहीं होने लगा । वहाँ टट्टी-पेशाब का मानो बिस्तर ही बन गया ।

यह सब देखकर बाबा के दर्शन करने आये हुए लोग बहुत क्रोधित हुए । फिर वे दूर से ही उन्हें ईंटें और पत्थर फेंककर मारने लगे ।

'साले को बाबा बनना है'-किसी एक ने कहा ।

'हरामखोर को उठाकर बाहर ही फेंक दो न ।'-दूसरे ने दूर से सलाह दी, लेकिन करीब आकर वह अमल में लाने का साहस किसी में नहीं था । उस गंदगी में पाँव कौन रखे ?

टट्टी-पेशाब छूटने की मात्रा अब बहुत बढ़ गयी थी । श्रीमोटा के सारे कपड़े भर गये । करीब-करीब चार फूट तक की जगह में टट्टी-पेशाब भरे हुए थे ।

यह सब कुछ श्रीउपासनी महाराज अपने पिंजड़े में बैठकर साक्षीवत् देख रहे थे । उन्होंने एक शब्द भी नहीं कहा, या किसी को भी नहीं रोका । मात्र, बाबा की सेवा में रत रहनेवाली वह छोटी लड़की सभी लोगों को ईंट-पत्थर मारने से परावृत्त करने का भरसक प्रयास कर रही थी, सभी को शांत करने की कोशिश कर रही थी ।

चार-पाँच दिन तक यह चलते रहा । उस कालावधि में खाने की तो बात ही दूर, पानी की घूँट भी श्रीमोटा को नसीब न हुई ।

उस समय बाह्यतः उनका शरीर इतना अस्वच्छ और नरकमय स्थिति में था, फिर भी उनका मन तो उच्च भूमिका में था । समाधि स्थिति में वे अपने ही शरीर की शुद्धिकरण की क्रिया को साक्षीवत् देख रहे थे और लोगों द्वारा मार देने को भी वैसे ही साक्षीवत् भाव से देख रहे थे, मानो वह शरीर उनका नहीं बल्कि किसी और का ही था ।

पाँच-छ दिनों के बाद श्रीउपासनी महाराज ने गरम पानी मँगवाकर वह श्रीमोटा को पीने के लिए दिया । गरम पानी देना भी दो-तीन दिन तक चला । मलमूत्र विसर्जन का यह प्रकार अब भी चल रहा था ।

इन दो-तीन दिनों के बाद बाबा ने उन्हें सूखी रोटी का एक टुकड़ा खाने को दिया ।

करीब ग्यारह दिनतक श्रीमोटा इस स्थिति में थे । बाद में उन्हें लगा कि अब उठना मुमकिन है । फिर वे त्वरा-से उठ गये । दूर जाकर गंदे हो गये हुए सब कपड़े उन्होंने फेंक दिये, शरीर साफ़ किया और लंगोटी पहनकर फावड़ा और पाटी की सहायता से बाबा के पिंजड़े के पास की वह जगह ठीक तरह से साफ़ की । बाद में पानी से धोकर जमीन गीले कपड़े से पोंछ दी ।

यह साफ़सफ़ाई उन्होंने मन की एक तरह की बेभान अवस्था में ही की । बाद में वे बाज़ार से चंदन के तेल की एक शीशी ले आये और वह तेल उन्होंने सर्वत्र छिड़क दिया ।

यह सब पूरा होने के बाद बाबा को प्रणाम कर के नडियाद लौटने के लिए उन्होंने उनसे आज्ञा माँगी । आधे घंटे के बाद बाबा ने उन्हें अनुमति दी और बोले, 'अब तेरी यह स्थिति सदा जीवंत रहेगी ।'

श्रीमोटा जब शुरू-शुरू में उनके गुरुमहाराज के यहाँ (श्रीकेशवानंदजी महाराज के यहाँ) जाते थे, तब कई बार श्रीमोटा ने उनके मुख से सुना था, 'मैं साँईबाबा हूँ, मैं ताजुद्दीनबाबा हूँ, मैं उपासनी महाराज हूँ, मैं अक्कलकोट स्वामी हूँ ।'...और बाद में श्रीमोटा के जीवन में इन सभी सिद्ध महात्माओं ने उन्हें प्रत्यक्ष मिलकर साधना में मार्गदर्शन किया और ध्येयसिद्धि के लिए मदद की, तब उन्हें श्रीसद्गुरु की वाणी का गूढ़ अर्थ समझ में आया । इन सब सिद्ध महात्माओं में उन्हें अपने श्रीसद्गुरु का ही दर्शन हुआ, 'जीवंत-जागृत' प्रत्यक्ष दर्शन हुआ ।

✤ ✤ ✤

॥ हरि:ॐ ॥

५०. लाठीमार में कसौटी

१९३० में स्वराज्य के जंग की घोषणा हुई । गांधीजी ने दांडीयात्रा का आयोजन किया । आश्रम छोड़ते वक्त उन्होंने कहा, 'कव्वे-कुत्ते की मौत से मरेंगे, लेकिन स्वराज्य प्राप्त किये बिना नहीं लौटेंगे ।'

'ब्रिटिशों के अत्याचार और जुल्म को ठुकराकर शूरवीर बनकर, घर के बाहर निकलकर उनका विरोध करो और उनसे लड़ो' ऐसा गांधीजी ने आदेश दिया ।

नमक का सत्याग्रह शुरू हुआ । लोगों ने नमक के आगारों से नमक लाकर उसे बेचने की शुरूआत की ।

चुटकीभर नमक के लिए लोगों ने हजारों रुपये दिये और वह खरीदा, और उसी नमक के लिए सरकार ने लोगों के सिर फोड़े, स्त्री-पुरुषों के बदन पर से घोड़े दौड़ाए ।

ऐसे संग्राम में और तूफानी वातावरण में श्रीमोटा को शांत बैठे रहना संभव न था । वे भी इस जंग में शामिल हुए ।

'बोरसद' तालुके के 'दहेवाण' गाँव में एक सभा का आयोजन होनेवाला था और किसी भी हालत में वह हो न पाए ऐसी सरकार की इच्छा थी । सत्याग्रही भी दृढ़ थे, अटल थे और कुछ भी कर के सभा होनी ही चाहिए ऐसी उनकी भी ज़िद थी । उनका वज्रलेप निर्णय कोई तोड़ सके, यह संभव नहीं था ।

सभा का समय नज़दीक आया । टोलियाँ बना-बनाकर लोग इकट्ठा होने लगे । जिस ठाकुरसाहब का वह दहेवाण गाँव, वे भी अंग्रेज सरकार से हाथ मिलाकर उनके पक्ष में थे, इसलिए सभा में कुछ-न-कुछ गड़बड़ होगी ही, यह सभी को निश्चित रूप से लगता था ।

आखिर सभा प्रारंभ हुई और भाषण की शुरूआत हुई । आधा भाषण हुआ-न-हुआ तो पुलिस लोगों पर टूट पड़ी । उनके हाथों में लाठियाँ थीं और निष्ठुरता से छोटे-बड़े, स्त्री-पुरुष, बूढ़े-बच्चे देखे बिना वे लाठियाँ बरसाने लगे । सारी सभा बिखर गयी और भागदौड़ शुरू हुई । फिर तो पुलिस में मानो शैतान का संचार हुआ । उनकी लाठियों की चोटों से कइयों के हाथ-पाँव टूटे, सिर फूटे, खून की धाराएँ बहने लगीं ।

मात्र, इस सारे झंझावात में श्रीमोटा अपनी जगह पर स्थिर थे । सब लोग भाग गये और मैदान खाली हो गया, लेकिन उस मैदान में-जंग में खड़े थे अकेले श्रीमोटा । उन्होंने हाथ की मुट्ठियों में नमक पकड़ रखा था और कई पुलिस उस निहत्थे सत्याग्रही पर लाठियों से प्रहार कर रहे थे । जैसे-जैसे लाठियाँ उनके शरीर पर चोट करती, वैसे-वैसे वे 'हरि:ॐ' का उच्चारण करते थे । 'हरि:ॐ' के नारे से उनमें मानों अटूट शक्ति का संचार हो रहा था ।

लाठियाँ बरसानेवालों को अब खुद की ही शरम आने लगी । पुलिसप्रमुख तक यह विचित्र और आश्चर्यकारक घटना पहुँच गयी और वह भी इस दृढ़ मनोबलवाले निडर और निर्भय सत्याग्रही को देखने आ गया ।

एक चिउँटी पर हाथी आक्रमण करे उसी तरह उस निहत्थे, नि:शस्त्र, स्थिर, धीरगंभीर सत्याग्रही पर सभी पुलिस लाठियाँ बरसा रही थी और फिर भी उसका कुछ भी असर हो नहीं रहा था ।

पुलिसप्रमुख ने पूछताछ की, 'यह स्वयंसेवक कौन है ?' उन्हें बताया गया, 'ये नडियाद के 'हरिजन सेवा संघ' के संचालक चुनीलाल भगत है ।' फिर पुलिसप्रमुख ने तुरंत लाठीमार बंद करवाया ।

श्रीमोटा को लाठियों से कई जगह पर सख़्त चोटें आयी थीं और कई जख्म भी हुए थे । तुरंत ही उन्हें उपचारार्थ अस्पताल में ले जाया गया ।

स्वराज्य की लड़ाई में अपना शांतिपूर्ण सहयोग देकर श्रीमोटा ने धैर्य, सहनशीलता, दृढ़ता और निर्भयता की साक्ष दी थी।

✤ ✤ ✤

॥ हरि:ॐ ॥

५१. 'तू त्राटक कर !'

स्वातंत्र्य-संग्राम में श्रीमोटा को साबरमती, नासिक, येरवडा, विसापुर और खेड़ा सबज़ेल इन स्थानों पर १९३० से १९३२ के अरसे में रखा गया था ।

उस वक्त अगर किसी जेल में कैदियों की संख्या बढ़ जाए, तो उन्हें एक जेल से दूसरे जेल में भेजा जाता था ।

एक बार इसी तरह श्रीमोटा को साबरमती जेल से खेड़ा सबजेल में बाकी कैदियों के साथ ले जानेवाले थे ।

जेल के महाकाय दरवाज़े के सामने अंदर प्रवेश करनेवाले राजकैदी एक कतार में खड़े थे । जेल के उस बड़े दरवाज़े को एक छोटा-सा दिंडी-दरवाज़ा था । हरएक कैदी को एक के पीछे एक उस दरवाज़े से अंदर जाना पड़ता था ।

जब वह कैदी झुककर अंदर जाता था, तब जेल की एक पुलिस उसे अपने डंडे से जोर से फटका लगाती थी । उस मार की इतनी जोर से आवाज़ होती थी कि वह सुनकर कतार में खड़े रहे हुए बाकी कैदियों का दिल ही कँप जाए । उनका उद्देश्य स्पष्ट था । जेल में प्रवेश करते समय ही इतनी दहशत पैदा करनी कि अंदर जाने पर कोई कुछ गड़बड़ या दंगा-फ़साद न करें । इसीलिए उन्होंने उस क्रूर और अघोर मार्ग का अवलंबन किया था ।

श्रीमोटा की अंदर प्रवेश करने की घड़ी नज़दीक आ रही थी । डंडे की मारपीट की आवाज़ से वे तनिक भी अशांत नहीं हुए थे, न ही डर उनमें प्रवेश कर सका । कतार में उनका नंबर अब सातवां-आठवां ही होगा, तब अचानक फटके की आवाज़ सुनते ही उन्हें एक और आवाज़ भी सुनाई दी-'तू त्राटक कर ।'

विठ्ठलभाई कोठारी और शिवाभाई ये उनके दो सहकारी मित्र भी उनके साथ ही कतार में खड़े थे । श्रीमोटा ने उन्हें पूछा, 'तुम्हें कुछ सुनायी दिया ?'...उन्हें कुछ भी सुनायी नहीं दिया था । स्वयं को कोई भ्रम हुआ होगा ऐसा श्रीमोटा को लगा ।

लेकिन उसके बाद फिर से दो-तीन बार वही आवाज़ श्रीमोटा को सुनाई दी । अब तो उन्हें दृढ़ विश्वास हो गया कि वह आवाज़ यानी श्रीसद्‌गुरु का आदेश ही था ।

आखिर श्रीमोटा की जेल के दरवाज़े से अंदर प्रवेश करने की घड़ी आ गयी । अंदर प्रवेश करते ही उन्होंने फटका लगानेवाली उस पुलिस की आँखों में आँखें डालकर त्राटक करना शुरू किया । हरएक को अपनी सारी ताकात लगकर डंडे से जोरदार फटका लगानेवाली वह पुलिस अब कठपुतली जैसी वहीं खड़ी रही । यह देखकर निरीक्षक जमादार को बहुत आश्चर्य हुआ और उसने दूसरी पुलिस को बुलाकर उसे श्रीमोटा को डंडे से मार देने की आज्ञा दी ।

अपने श्रीसद्‌गुरु के आदेशानुसार श्रीमोटा ने उस पुलिस की भी आँखों में देखकर त्राटक करना दोहराया । परिणामत: वह व्यक्ति भी कुछ न कर सका, मूढ़ की तरह वह भी केवल खड़ा ही रहा ।

अब कोई विचित्र घटना घट रही है, इसका जमादार को आभास हुआ और उसने जेलर से मिलकर उसे यह प्रसंग विस्तारपूर्वक बताया ।

जेलर भी यह बात सुनकर भौंचक्का रह गया और उसने उस चमत्कारिक कैदी को तुरंत अंदर भेजने की जमादार को आज्ञा दी।

श्रीमोटा को लेकर जमादार जेलर के कमरे में आ गया।

जेलर ने उन्हें औत्सुक्य से ऊपर से नीचे तक देखकर डाँटकर पूछा, 'क्यों बे, तुझे पुलिस मार न सकी, इसका रहस्य क्या है? तेरे पास कौनसी विद्या है ?'

श्रीमोटा ने नम्रता से और निर्भयता से जवाब दिया, 'साहब, मेरे पास ऐसी कोई भी विद्या नहीं है। मैं तो सिर्फ़ भगवान का नाम लेना ही जानता हूँ।'

'तो फिर इस राजकारण के झंझट में किसलिए आया ?'- उसने आश्चर्य प्रगट करते हुए अपनी शंका प्रदर्शित की।

मंद-मंद मुसकराते हुए श्रीमोटा ने कहा, 'ऐसे उल्कापात* में और ऐसी धमाल रहते हुए भी, मेरे मन-बुद्धि-अंतःकरण-इंद्रियाँ ये सब, किसी में भी लिप्त न होकर समत्व दिखा सकते हैं क्या, इसीकी कसौटी करने मैं आया हूँ।'

दूसरे राजकीय कैदियों से निराला ऐसा यह 'साधक कैदी' देखकर जेलर के मन में उनके प्रति आत्मीयता और आदर पैदा हुआ और 'श्रीमोटा को जेल की अवधि ख़त्म होने तक रोज़ चपाती, गुड़ आदि खास और विशिष्ट चीजें दी जाएँ' ऐसे आदेश देकर उसने रजिस्टर में नोट किया।

मात्र, श्रीमोटा उन्हें प्राप्त होनेवाला वह 'खास राशन' बाकी कैदियों को दे देते थे और स्वयं तो 'सी' क्लास के कैदियों को समूह में दिया जानेवाला भोजन ही लिया करते थे।

✤ ✤ ✤

* झंझावात में और कठिन, प्रतिकूल, तूफानी परिस्थिति में

॥ हरिःॐ ॥

५२. जेलयात्रा - जीवनसाधना

स्वराज्य की जंग में देश... स्वातंत्र्य के लिए जेल में जाने के बाद श्रीमोटा ने उसका 'जीवनसाधना' के लिए उपयोग किया। वे जेलयात्रा को 'वैकेशन' मानते थे, क्योंकि अंदर जाने के बाद हरिजन पाठशाला का काम, घर का कामकाज और दूसरी उपाधियों से मुक्ति रहती थी।

जेल में वे कभी भी साथी जमा कर के, टोलियाँ बनाकर गपशप करने में समय बर्बाद नहीं करते थे, बल्कि जेल में सौंपा हुआ कामकाज झटपट और ढंग से पूर्ण कर के शेष समय साधनायज्ञ में ही बिताते थे। जेल में प्राप्त होनेवाला भोजन बहुत ही दोयम प्रकार का था। वहाँ नियमों का और हुक्मों का कड़ी तरह से पालन करना पड़ता था। जेल के बाहर की कोई भी चीज इस्तेमाल करने की अनुमति नहीं थी-इन सब के कारण और अन्य कई कारणों से उन्हें अपने 'संयम' का होश होता था।

'जीवन में घटनेवाली हरएक घटना, प्राप्त होनेवाली हरएक स्थिति और कर्म ये सभी जीवनविकास के हेतु से साधना की तरह ज्ञानभक्तिपूर्वक करने चाहिए और स्वीकार करनाा चाहिए' ऐसी उनकी निष्ठा थी, और उसके अनुरूप ही उनका आचरण और बर्ताव प्रत्यक्ष कृति में जीवन में दिखायी देता था।

विसापुर जेल में खाली समय में श्रीमोटा ने गीता लिखी।

आश्रम में कई बार विद्यार्थियों उनकी समझ में आए इस तरह सीधी-सादी गुजराती भाषा में गीता लिखने के लिए श्रीमोटा को आग्रह किया करते थे। इसलिए उन्होंने समय का सदुपयोग कर के गीता को सरल गुजराती भाषा में शब्दबद्ध किया। यह लिखाई पूरी करने के बाद श्रीमोटा ने कहा, 'मैंने गीता को पूर्णतः पचाया

है, ऐसा मेरा दावा नहीं है, फिर भी गीता का भाव मैं सुयोग्य रीति से प्रतिपादन कर सका, इसका कारण मेरी ईश्वर पर रही हुई श्रद्धा ही है ।'

जेल से छूटने के बाद जब वे घर लौट आये, तब एक बार उन्होंने माँ को बताया, 'माँ, मेरे एक दोस्त ने छोटे-बड़े सभी के समझ में आए ऐसी गीता लिखी है । तू उसे सुनेगी क्या ?'

घरखर्च में मदद हो इस हेतु से माँ तूर की दाल चुनने का काम किया करती थी । वह काम करते-करते उसने वह गीता सुनी। अपना वाचन पूरा करने के बाद श्रीमोटा ने माँ से अभिप्राय माँगा।

वह बोली, 'हमारी कथा में वे 'महाराज' जो गीता पढ़कर सुनाते हैं और समझाते हैं, उससे तूने सुनायी हुई गीता ज़्यादा सरलता से समझ में आयी । तेरे दोस्त की बताने की रीति, भाषा और रचना सहज-सीधी और आसान है ।'... यह सुनकर श्रीमोटा को पूर्ण समाधान हुआ । आबाल-वृद्धों को, सभी को यह गीता समझ में आएगी, सभी उसे पचा सकेंगे और सब की हृदयरूपी धरती में उनके शब्दरूपी बीज बोये जा सकेंगे, इसका उन्हें दृढ़ विश्वास हो गया ।

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

५३. एकमेव लक्ष्य — साधना

हरिजनसेवा, कारावास, लाठीमार—साधना यही एकमेव लक्ष्य :

श्रीमोटा का हरएक कर्म, हरिजनसेवा, कारावास, लाठियाँ झेलना...इन सब का एक ही एक लक्ष्य था, और वह था साधना का हेतु ।

स्वयं को कितने गुण प्राप्त हुए हैं, इसकी खोज करने का वह मार्ग था ।

भय में अभय, अशांति में शांति, हिंसक वातावरण में अहिंसक रहना, अनासक्त रहना, निर्विकार रहना ये सभी गुण कितने प्राप्त हुए हैं, यह देखना उद्देश्य था ।

कारावास में भी श्रीसद्‌गुरु का कृपाछत्र :

कारावास में श्रीमोटा को खड़े रहकर ढेर सारा अनाज पीसना पड़ता था । चक्की का डंडा पकड़कर और अनाज पीस-पीसकर हाथ में छाले पड़ जाते थे, फिर भी काम तो पूरा ही करना पड़ता था । निश्चित की हुई अवधि समाप्त होने को आयी, और फिर भी बहुत-सारा अनाज पीसे बिना पड़ा होगा, तब श्रीमोटा गुरुमहाराज को प्रार्थना किया करते, 'हे प्रभु ! शक्ति दो कि जिससे मेरा काम पूर्ण हो । काम करने से मैं डरता नहीं !...' और सचमुच देखते-देखते ही सारा काम खत्म हो जाता ।

सामने प्रत्यक्ष श्रीसद्‌गुरु हैं और अपना ख़्याल रख रहे हैं, इसकी प्रतीति पाकर श्रीमोटा का हृदय भर आता ।

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

५४. सेवाभाव

खेड़ा जिले के बोरसद तालुके में 'बोदाल' नामक एक गाँव है । बोदाल में एक हरिजन आश्रम था और श्रीमोटा उसमें काम करते थे ।

आश्रम के हरएक कार्यकर्ता को आश्रम के काम के अलावा सेवा के और काम भी दिये जाते थे । श्रीमोटा को दवाखाने का काम सौंपा गया था । वैसे तो वे कोई वैद्य या डॉक्टर नहीं थे,

फिर भी उन्हें जो सूझता वैसा उपचार वे किया करते थे ।

एक बार एक आदमी दौड़ते-दौड़ते उनके पास आया ।

'चुनीभाई, चुनीभाई आपको बुलाया है ।'

'क्या काम है ?'-श्रीमोटा ने पूछा ।

हाँफते-हाँफते वह बोलने लगा, 'एक औरत के पेट में बहुत दर्द हो रहा है और पीड़ा से व्याकुल होकर वह लोट रही है, कराह रही है ।'

'कितने दिनों से दर्द हो रहा है पेट में ?'-श्रीमोटा ने पूछा।

'तीन दिन हो गये हैं । और तीन दिन से शौच भी नहीं हुआ है ।' उसने बताया ।

पेट दरद करने का कारण श्रीमोटा के ख़्याल में आ गया । उन्होंने घर के लोगों से पूछा, 'बोलो, क्या करना है ?'

'हमें क्या पता ? आप ही जैसा ठीक समझो वैसा करो और दवादारू दो ।'

'तीन दिन शौच न होने के कारण, पेट साफ़ होने के लिए 'एनिमा' देना पड़ेगा ।' श्रीमोटाने इलाज बताया ।

'ठीक है' घर के लोगों ने संमति दी । लेकिन उस स्त्री को संकोच होने लगा ।

श्रीमोटा ने उसे आश्वस्त करते हुए कहा, 'संकोच की कोई बात नहीं । आप मुझे अपना लड़का या भाई मानना ।'

फिर वह स्त्री भी इलाज को तैयार हुई ।

घर के लोगों की उपस्थिति में श्रीमोटा ने उस स्त्री को सादे पानी का एनिमा दिया, लेकिन कोई फ़ायदा नहीं हुआ ।

फिर दूसरी बार अरंडी का तेल और साबुनपानी मिलाकर 'एनिमा' दिया, फिर भी मल नहीं छूटा ।

तीसरी बार भगवान का नाम लेकर फिर से अरंड़ी का तेल और साबुनपानी मिलाकर 'एनिमा' दिया । वह पानी पेट में गया और उसके साथ ही इतना दुर्गंधित मल बाहर आया कि पास में बैठना भी कठिन हो जाए ।

पेट साफ़ होते ही उस स्त्री की पेटपीड़ा दूर हो गयी और उसके चेहरे पर मुसकराहट छा गयी । वैसे तो वह स्त्री सगर्भा थी । इसलिए 'एनिमा' देने में बड़ा जोखिम था, फिर भी ईश्वरकृपा से सब कुछ ठीक-ठीक हुआ ।

श्रीमोटा को सेवा कर के दुःखमुक्ति देने का आनंद प्राप्त हुआ। वे आश्रम में लौट आये, नहा-धो लिया और कपड़े धोकर-सुखाकर वे अपने काम में जुड़ गये ।

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

५५. कलंक से रक्षण

सूरत के नज़दीक 'नवसारी' में भी एक हरिजन आश्रम था। श्रीमोटा वहाँ भी कुछ दिन कामकाज किया करते थे ।

आश्रम के पास में एक तालाब था । बारिश में वह पानी से लबालब भरकर मानो एक सरोवर ही बन जाता। श्रीमोटा ने सोचा, 'बच्चों को पानी में सैर कराने को एक बेड़ा (तराफा) बनाया जाए।' आश्रम को खर्चे का भार उठाना न पड़े, इसलिए बच्चों ने और श्रीमोटा ने मिलकर यहाँ-वहाँ से लकड़ी की पट्टियाँ, रस्सी आदि आवश्यक सामान लाकर एक बड़ा, सुंदर और मज़बूत बेड़ा बनाया।

श्रीमोटा कई बार बच्चों को उस बेड़े पर बिठाकर सरोवर समान उस दूधिया तालाब की सैर कराने ले जाते। वह बेड़ा इतना प्रशस्त

था कि बहुत-से लड़के उसपर बैठ सकते थे और खड़े भी रह सकते थे । फिर भी श्रीमोटा ने नियम बनाया था कि केवल उनकी उपस्थिति में ही बेड़ा निकाला जाए और सैर की जाए, अकेले विद्यार्थियों को उसे सैर कराने ले जाने की अनुमति नहीं थी।

एक बार श्रीमोटा आश्रम के पैसे निकालने के लिए बैंक में गये थे । उनकी अनुपस्थिति की जानकारी होते ही कुछ शरारती और उपद्रवी विद्यार्थियों ने इस मौके का फ़ायदा उठाया और वे तालाब की ओर गये । उन्होंने बेड़ा खोल दिया और उस पर बैठकर वे तालाब में इधर-उधर घूमने लगे ।

श्रीमोटा जब बच्चों के साथ रहते, तब बेड़े को समतोल रखने की तरफ़ उनका पूरा ध्यान रहता और बच्चों पर उनकी कड़ी नज़र रहती, जिससे कोई शरारत करने का मौका उन्हें कभी नहीं मिलता। आज तो विद्यार्थी अकेले ही थे । फिर क्या । आज श्रीमोटा का अंकुश न होने से वे कैसे भी यहाँ-वहाँ बैठने लगे, इधर-उधर खड़े रहने लगे और हँसी-मज़ाक और शोरगुल करने लगे । इसका परिणाम जो होना था, वही हुआ । अचानक बेड़ा पानी में एक तरफ लुढ़क गया और वहाँ के बच्चे 'धप्' कर के पानी में गिर पड़े । फिर तो ज़ोरों से शोरगुल हुआ, बाकी बच्चे भी ज़ोर-ज़ोर से रोने-चिल्लाने लगे । एक क्षण में ही यह सब बिजली की तरह घटा ।

इत्तफ़ाक़ से और ईश्वरकृपा से उसी समय बैंक का अपना काम निबटाकर श्रीमोटा आश्रम तक पहुँच चुके थे । उन्होंने दूर से ही यह हादसा देखा और वह शोरगुल सुना और अपनी साइकिल त्वरा-से किनारे तक दौड़ाकर, उसे वहाँ ही फेंककर, कुछ विचार

किया बिना बदन पर पहने हुए कपड़ों के साथ वे पानी में कूद पड़े । बैंक से लाये हुए पैसे पानी से भीग जाएँगे इसकी चिंता किये बिना क्षणमात्र में उन्होंने पानी में छलाँग लगायी और डूबनेवाले बच्चों को, एक-एक को पकड़कर किनारे पर फेंकने लगे । जो विद्यार्थी तैरना जानते थे, वे भी उनकी मदद कर रहे थे । इस तरह बच्चों को उठाकर फेंकने से शायद उनकी हड्डियाँ टूट जाने की या चोट आने की संभावना थी सही, लेकिन उससे भी महत्त्व का था उनकी जान बचाना ।

इस अड़ी की स्थिति में अपने प्रयत्न जी-जान से जारी रखते हुए, दूसरी ओर उनकी प्रार्थना भी अखंडरूप से चल रही थी ।- 'हे भगवान ! अब तू ही मुझे मदद कर । इन बच्चों में से किसी को कुछ भी होने न पाये, अन्यथा मेरे माथे पर कलंक का धब्बा लगेगा । अब तू ही मेरा रक्षक है, तू ही मेरा वाली है।'

कुछ ही समय में दूसरे बच्चों की मदद से श्रीमोटा ने डूबनेवाले सभी विद्यार्थियों को बाहर निकाले और फिर वे निश्चिंत होकर किनारे पर आ गये । उनकी छाती पर का बोझ दूर हो गया था।

गद्‌गद होकर श्रीमोटा की आँखें भर आयी । 'हे प्रभु ! आज तूने मेरी लाज रखी । अगर डूबकर कोई मर गया होता, तो वह कलंक सदा के लिए मेरे पर लगता । तूने मुझे उससे बचाया यह तेरी कितनी कृपा है ।' श्रीमोटा की आँखों से गंगा-यमुना बह रही थी । श्रीसद्‌गुरु के रक्षाकवच ने ही उन्हें बचाया था, इसमें उन्हें कोई शक न था ।

बच्चों के अनुचित बर्ताव के कारण और उनकी भूल के कारण ही बेड़ा डूब गया था, इसमें कोई शंका नहीं थी, फिर भी बेड़ा बनानेवाले तो श्रीमोटा ही थे, इसलिए अगर किसीको कुछ

हो जाता और अगर कोई अपनी जान गँवा बैठता, तो उसका दोषारोपण श्रीमोटा पर ही किया जाता । इस बदनामी से वे ईश्वरकृपा की वजह से बाल-बाल बच गये थे ।

पूर्णतः समर्पित ऐसे अपने भक्त की सर्वोपरि और अंतर्बाह्य रक्षा कर के, शरणागत की रक्षा करने का अपना बिरद ईश्वर ने सम्हाला था ।

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

५६. श्रीसद्गुरु का स्थूल देह में पुनरागमन

सारे गुजरात के हरिजन आश्रमों का और पाठशालाओं का संचालन करने की जिम्मेदारी श्रीमोटा के सिर पर थी । हरएक संस्था को आर्थिक मदद पहुँचाने का कठिन काम उन्हें ही करना पड़ता था ।

उस समय नवसारी के गायकवाड़ सरकार की सरहद में जो आश्रम था, उसमें कई राजकीय प्रवृत्तियाँ चल रही थी और वह पुलिस की और सरकार की आँख में कंकड़ की तरह चुभ रहा था । आश्रम के सेवाभावी कार्यकर्ताओं को उनसे बचाना यह भी श्रीमोटा की ही जवाबदारी थी, उनका ही फ़र्ज़ था ।

एक तरफ़ ये प्राप्तकर्म प्रामाणिकता से, निष्ठापूर्वक करने थे और उसी समय दूसरी तरफ़ जीवनविकास की साधना भी उत्कटता से, समग्रता से, असिधारावत् और भावपूर्णता से जागृतिपूर्वक करनी थी ।

समतोल रखने की यह कसरत करने को श्रीमोटा जी-जान से और प्राणपूर्वक प्रयत्नशील थे ।

ऐसे में एक बार 'सूपा गुरुकुल' के पास में रहे हुए जंगल

में वनभोजन के लिए जाना तय हुआ । श्रीमोटा ने विद्यार्थियों की भी संमति पा ली और सभी ने जंगल की ओर प्रस्थान किया ।

बातचीत, हँसी-मज़ाक और आनंद-प्रमोद करते हुए सभी चलने लगे और सूपा नदी के किनारे पर एक अनुकूल जगह देखकर वहाँ अपना डेरा डाला । वहाँ विद्यार्थियों ने इधर-उधर जाकर लकड़ियाँ इकट्ठी की और श्रीमोटा ने एक जगह पर धूनी सुलगायी ।

रात के साढ़े दस बजे तक पड़ाव के आसपास छोटे विद्यार्थी निगरानी करते और साढ़े दस बजे के बाद बड़े विद्यार्थी ।

श्रीमोटा धूनी के पास में बैठकर नामस्मरण, ध्यान, प्रार्थना, आत्मनिवेदन ऐसे कई प्रकार से अपनी साधना में मग्न थे । रात काफ़ी हो चुकी थी, चारों ओर सन्नाटा था और वे प्रार्थनाभाव हृदय में धारण कर के उच्च भावावस्था में आकंठ डूबे हुए थे । वे समय को और अपनेआप को भी भूल गये थे । आधी रात होने के बाद उन्हें अचानक दिखायी पड़ा कि 'अपने सामने सद्गुरु श्री बालयोगी महाराज प्रत्यक्ष खड़े हैं ।' वे अचानक कहाँ से और कैसे आ गये इसका श्रीमोटा को आश्चर्य हुआ । वे तो एकदम स्तंभित हो गये । गद्गद होते हुए करीब जाकर उन्होंने उनके चरणों में भावपूर्वक प्रणाम किया ।

धूनी के सामने श्रीसद्गुरु को अपनी आँखों से प्रत्यक्ष देखते हुए भी श्रीमोटा के मन-बुद्धि ने शंका का भूत खड़ा किया । वे सोचने लगे, 'गुरुदेव ने शरीर का त्याग तो कब का किया है । वह शरीर पंचमहाभूतों में विलीन भी हो गया, तो फिर वे यहाँ आ सकेंगे यह कैसे मुमकिन है ? तेरे अंतर में उनके प्रति जो प्रेमभक्तियुक्त उत्कट भाव है, उसीकी वजह से वह भाव यहाँ साकार बनकर तुझे आभास होता होगा ।'

उनके मन के ये विचार पढ़कर तुरंत बालयोगी महाराज उन्हें कोसते हुए बोले, 'अरे मूर्ख ! मैं यहाँ सचमुच ही प्रत्यक्ष, सदेह और वास्तविकता में उपस्थित हूँ और वह भी तुझे चेतावनी* देने को ही ।

'तेरा जो महत्त्व का कर्म है और जिस कर्म को तू जीवनवकिास की साधना मान रहा है, वह साधना का भाव दृढ़ करने के लिए ही तुझे प्रभुकृपा से यह परिस्थिति प्राप्त हुई है । **जो 'जीव' प्रेमपूर्वक और ज्ञानभक्तिपूर्वक हृदयांतरी हृदयपूर्वक ईश्वर का भक्त बनता है, उसका योगक्षेम ईश्वर ही, कृपा कर के अपने हाथ में ले लेता है।**

'लेकिन ऐसा यह योगक्षेम एक ही प्रकार का 'केवल स्थूल' ऐसा होता नहीं है। योगक्षेम के कई अर्थ होते हैं। जीवन में घटनेवाली हरएक घटना, प्राप्त होनेवाली हरएक परिस्थिति 'साधना का भाव' प्राप्त करने के लिए ही होती है । और जो प्रभुकृपा से जीवन के हरएक प्रसंग में साधना का 'जीवंत भाव' सातत्यपूर्वक और समग्रता से टिकाये रखता है, उसे ईश्वर अपना मानकर, उसका सब कुछ वह ही करता है । इसलिए तू निश्चिंत रहना और तेरा सब कुछ वह ईश्वर ही कृपा कर के चलानेवाला है, इसके बारे में निःशंक रहना ।'

यह बताते समय श्रीमोटा के श्रीसद्गुरु ने उन्हें प्रेमपूर्वक जो गालियाँ बरसायीं उन्हें यहाँ लिखना संभव नहीं है ।

गुरुदेव आगे कहने लगे, 'मेरे अदृश्य होने के बाद तेरे मनबुद्धि फिर से तुझमें संशय निर्माण करेंगे, इसलिए उसका निराकरण करने के लिए मैं तुझे बता रखता हूँ कि यहाँ सचमुच ही एक मृत शरीर

* जीवंतता का अहसास कराकर निश्चिंत कराने के लिए ।

पड़ा हुआ है ठीक वैसे ही मैं यहाँ सचमुच स्थूल देह से प्रत्यक्ष हुआ हूँ ।

...इतना कहकर श्रीबालयोगी महाराज अदृश्य हो गये ।

पूर्णतः जागृति में श्रीसद्गुरु के प्रत्यक्ष होने से श्रीमोटा के अंतर में प्रचंड स्फूर्ति और चैतन्य का आविर्भाव हुआ । अनेक जन्मों में पुरुषार्थ कर के भी जो गति, जो भाव, जो अनन्य शरणागति, जो समर्पण प्रगट होना दुष्कर था, वह सब कुछ इन कुछ मिनिटों में ही घटी हुई घटना से घट गया ।

पूज्य गुरुदेव के अदृश्य होने के बाद सचमुच ही श्रीमोटा के मनबुद्धि ने एक कोने में फिर से शंका का जाल खड़ा किया । 'क्या ऐसा सचमुच ही घट सकता है ? यह संभव है भी ? यहाँ मृत शरीर कहाँ है ?'-प्रश्नों की मालिका खड़ी हुई ।

उसी समय उनका दूसरा मन उन्हें समझा रहा था, 'अरे ! मैंने अपनी खुद की आँखों से श्रीसद्गुरु को देखा, कानों से उनकी वाणी सुनी, स्पर्श कर के प्रणाम किया । इतना ही नहीं, जाते समय उन्होंने अपने पाँव के अँगूठे से वर्तुल बनाकर बताया भी कि 'यहाँ वह मृत शरीर पड़ा हुआ है ।'

श्रीमोटा ने निगरानी करनेवाले उन दो विद्यार्थियों को बुलाया और पूछा, 'क्योंरे, तुम्हें रेती में वर्तुल किया हुआ दिखायी देता है ?'

उन्होंने बैटरी के प्रकाश में देखा तो सचमुच ही वहाँ वर्तुल स्पष्टरूप से दिखायी देता था । जिस स्थान पर वर्तुल बनाया था, वहाँ दिन में बच्चे कूदाकूद, भागदौड़ करते थे, खेल खेलते थे । इसलिए अगर दिन में किसी ने वहाँ वर्तुल बनाया होता तो वह अब तक मिट गया होता ।

श्रीमोटा ने उन बच्चों को उस वर्तुल किये हुए स्थान पर रेत की खुदाई करने को कहा ।

बच्चे रेत की खुदाई करने लगे । करीब-करीब दो हाथ तक खुदाई कर के भी कुछ नहीं मिला ।

श्रीमोटा के संशयग्रस्त मन ने आनंदित होकर कहा, 'देख ! मैंने कहा था न ! कुछ भी नहीं है ।'

फिर भी श्रीमोटा ने बच्चों को और खुदाई करने को कहा । बच्चों ने फिर से खुदाई शुरू की । थोड़े ही समय में पानी लगा और उस पानी में करीब एक फूट अंदर, मरे हुए 'पंडुक' का मृत शरीर दिखायी दिया ।

बच्चों ने वह मृत शरीर श्रीमोटा के हाथों में दिया । आश्चर्य तो यह था कि वह मृत शरीर पानी में रहते हुए भी किसी प्रकार की सड़न नहीं थी, दुर्गंध नहीं थी, मानो वह पंछी अभी ही मरा हो, इस तरह वह शरीर सुस्थिति में था, ताज़ा था ।

यह प्रत्यक्ष सबूत प्राप्त होते ही श्रीमोटा के मन-बुद्धि का भी संपूर्ण समाधान हो गया ।

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

५७. 'योगक्षेमं वहाम्यहम्'

हिंदू युनिवर्सिटी निधि :

पंडित मदनमोहन मालवीयजी ने हिंदू संस्कृति जीवंत रखने के हेतु से काशी में 'हिंदू युनिवर्सिटी' की स्थापना की । उसके कामकाज के लिए हिंदूओं को निधि प्रदान करने का उन्होंने आह्वान किया ।

जीवन की नींवरूप और जड़रूप जो संस्कृति, उसके प्रति अपार भाव और आकर्षण होने के कारण श्रीमोटा को भी लगा

कि अपना सहयोग भी उसमें होना चाहिए । लेकिन सिर्फ़ पचास रुपयों में ही जहाँ घरखर्च निभाना पड़ता था, वहाँ देने के लिए पैसे हाथ में कहाँ से हों ? उस समय तो वे हजामत भी महीने में एक बार ही करते थे, इतनी विकट परिस्थिति थी अर्थात् पैसे देने की बात यानी हवा में महल बनाने जैसा ही था ।

कुछ दिनों बाद वे अपने काम के लिए साबरमती आश्रम से शहर जाने के लिए निकल पड़े । आश्रम के बाहर आते ही, आश्रम के पास ही जो पेड़ है, वहाँ लघुशंका के लिए जाने की उन्हें इच्छा हुई ।

वहाँ से लौटते समय उनकी दृष्टि पास में ही पड़े हुए काग़ज़ पर गयी । उन्होंने वह सहज ही उठाया तो वह एक क़ागज़ की पुड़िया थी और उसमें सोने की दो अँगूठियाँ थीं । काग़ज़ पर लिखा हुआ था, 'यह तेरे उपयोग के लिए है ।'

बाज़ार में जाकर उन्होंने, वे अँगूठियाँ बेचकर जो धनराशि प्राप्त हुई, उसे बनारस भेज दिया ।

श्रीमोटा की प्रामाणिक और प्राणांतिक इच्छा भगवान ने पूरी की थी ।

ठक्करबाप्पा की सत्तरी-फंडनिधि :

१९३८ में श्रीमोटा रक्त-पेचिस से बीमार हुए । बीमारी बढ़ने पर वे कराची गए और वहाँ इलाज कर के चंगे हो गये । जब वे वहाँ थे, तब उनके पढ़ने में आया कि ठक्करबाप्पा की सत्तरी के शुभ अवसर निमित्त सत्तर हजार रुपयों की थैली उन्हें अर्पण करने का गांधीजी ने निश्चित किया था और वैसा आह्वान भी उन्होंने अपनी 'हरिजनबंधु' पत्रिका में किया था ।

श्रीठक्करबाप्पा जैसे नि:स्वार्थ कर्मयोगी ने आदिवासी, भील और हरिजनों की जो सेवा की है, जो आयोजन किया है, जो व्यवस्था की है, उसके लिए श्रीमोटा के मन में उनके प्रति अत्यंत आदर था । उनके साथ काम करने का सद्‌भाग्य भी श्रीमोटा को प्राप्त हुआ था और उस निमित्त से दोनों में गहरा प्रेमसंबंध भी था ।

'श्रीमोटा ने भी (गिलहरी की तरह) अपना अल्प-स्वल्प फिर भी महत्त्वपूर्ण सहयोग देकर हाथभार लगाना चाहिए' ऐसी इच्छा भी पू. गांधीजी ने एक भगिनी से बातचीत करते हुए प्रगट की थी ।

यह सब पढ़कर-सुनकर सेवानिधि देने की इच्छा श्रीमोटा के मन में हुई सही, फिर भी वह तो आकाशपुष्प की इच्छा करने जैसा ही था, फिर भी उनकी वह भावना 'जीवंतता' से और तीव्रता से जागृत थी ।

कुछ दिनों बाद दीपावली की शुभकामनाएँ व्यक्त करने के लिए श्रीमोटा अपने कुछ साथियों के साथ कराची के मेयर श्री चागला साहब से मिलने उनके बंगले पर गये ।

बंगले के पास गाड़ी पार्क कर के वे अंदर प्रवेश करनेवाले ही थे, तब अचानक श्रीमोटा की नज़र रास्ते पर पड़े हुए एक काग़ज़ पर पड़ी । कराची के रास्ते सदा ही बहुत साफ़सुथरे रहते हैं । इसलिए वह छोटा-सा काग़ज़ भी उन्हें आसानी से दिखायी पड़ा था । उन्होंने वह काग़ज़ अपनी सहकार्यकारिणी भगिनी को दिखाया । वहाँ जाकर तुरंत ही वह काग़ज़ वे ले आयी । उस काग़ज़ की पुड़िया के अंदर पाँच रुपये का एक नोट था । उस पर उर्दू भाषा में लिखा हुआ था, 'यह तेरे मनचाहे उपयोग के लिए है ।'

प्रभुकृपा से प्राप्त हो गयी हुई यह रकम श्रीमोटा ने श्रीठक्करबाप्पा की निधि में भेज दी ।

सोने की कंठी मिली :

आर्थिक तंगी तो श्रीमोटा के साथ साये की तरह थी, वह तो उनकी संगिनी-साथी थी । एक बार श्रीमोटा को किसी काम के लिए बहुत बड़ी धनराशि की जरूरत आ पड़ी ।

किसी से कुछ माँगने का उनका स्वभाव नहीं था और किसी से उन्होंने उसके बारे में बताया भी नहीं ।

जिसने जरूरत पैदा की वह पूरी भी कर देगा ऐसा उनका विश्वास था । भगवान अपने सच्चे भक्त को विपत्ति के समय निश्चित ही किसी-न किसी रीति से मदद करता है ही, यह उनकी दृढ़ श्रद्धा थी । विपत्ति के समय भगवान से प्रार्थना कर के उसकी मदद की याचना करने की भी जरूरत होती नहीं है, ऐसा उनका भाव था । 'जो सर्वज्ञ है उसे क्या बताना ?...'

एक बार शाम को श्रीमोटा (कुंभकोणम् तामिलनाडु में) हसमुखभाई, नानुभाई और दूसरे स्वजनों के साथ एक साधुमहाराज के दर्शन करने निकले थे । साधु महाराज ने अपना मुकाम नदी के तट पर एक स्थान में रखा था। वहाँ जाते समय नदी किनारे पर एक जगह पर उन्हें पुराने और फटे हुए कपड़े की एक गठरी दिखायी दी ।

उन्होंने पास जाकर वह गठरी उठायी और खोलकर देखा तो उसमें एक सोने की कंठी मिली । उस गठरी में तामिल भाषा में लिखी हुई एक चिट्ठी भी थी । उस चिट्ठी में भी 'तेरे निजी उपयोग के लिए है' ऐसा लिखा था ।

वह कंठी हसमुखभाई ने बाज़ार में जाकर सुनार को बेच दी और उन पैसों से श्रीमोटा की तत्कालीन अड़चन दूर हुई ।

✤ ✤ ✤

॥ हरि:ॐ ॥

५८. एकांत साधना

साल में एक बार एकांत स्थान में साधना :

साल में एक बार एक महीने की छुट्टी लेकर श्रीसद्‌गुरु के आदेशानुसार अलग-अलग स्थानों पर जाकर साधना करने का श्रीमोटा का रिवाज था ।

अभय, साहस, हिंमत, शौर्य, अंतर्मुखता और एकाग्रता इन गुणों की प्राप्ति यह उन साधनाओं का उद्देश्य रहता था ।

जहाँ उन्हें जाना होता, वह जगह श्रीसद्‌गुरु उन्हें चलचित्र की तरह दिखा देते । नदी, पेड़, पर्वत, गुफ़ा, मंदिर, जंगल...सब कुछ स्पष्टता से दिखायी देता । कई बार, जिस जगह जाना हो, उसका नाम भी वे बता देते । फिर वह स्थान खोजकर श्रीमोटा वहाँ जाकर साधनामग्न हो जाते ।

नामस्मरण, भजन, प्रार्थना, ध्यान, आत्मनिवेदन इनमें उनका समय बीत जाता । रात में सिर्फ़ दो-तीन घंटों की नींद लेकर वे फिर से उत्साहपूर्वक साधना में लग जाते । वहाँ जंगल, गुफाओं में कौनसा बिछौना और कौनसा तकिया ? वहाँ तो धरणीमाता ही उनका बिछौना बन जातीं और पत्थर या ईंट उनका तकिया बन जाते ।

एकांत स्थान में वे प्राय: नग्न ही रहते थे ।

घनघोर जंगल में कहीं कोई झरने के नज़दीक तपश्चर्या करते रहते थे । शुरू के दो-चार दिन बिना भोजन के ही गुज़ारने पड़ते । अगर भूख और प्यास लगे तो जय गंगामैया कर के झरने का पानी पी लेते । फिर कोई व्यक्ति उन्हें ढूँढ़ते-ढूँढ़ते आ जाता और साग, रोटी, दाल ऐसा भोजन दे जाता ।

वे कभी-कभी औत्सुक्य से पूछते, 'भाई, तुम्हें कैसे मालूम हुआ कि मैं यहाँ हू, भूखा-प्यासा हूँ ?'...और प्राय: जवाब प्राप्त होता, 'बापजी, मुझे सपना आया और उसमें किसी एक साधु ने मुझे बताया कि तू अभी, इसी वक्त अमुक-अमुक स्थान पर जा । वहाँ मेरा भक्त भूखा-प्यासा भगवान का नाम ले रहा है । तू उसके लिए भोजन का प्रबंध करना । तुरंत जाना, देर न करना ।...इसलिए आपको ढूँढ़ते-ढूँढ़ते मैं यहाँ चला आया । महाराज, कृपा कर के इस भोजन का स्वीकार करो ।'-आँखों में पानी लाकर वह व्यक्ति प्रार्थना करने लगता ।

इसपर श्रीमोटा उसे कहते, 'ठीक है । ले आओ तुम भोजन ! लेकिन दिन में सिर्फ़ एक बार ही, और वह भी सिर्फ़ रोटी और दाल या साग-सिर्फ़ दो चीजें ही लाना ।'

करुणानिधान श्रीसद्‌गुरु की कूर्मदृष्टि, भक्त कहीं भी हो, उस पर प्रतिक्षण रहती ही है । नन्हे बच्चे का ख्याल माँ नहीं करेगी तो और कौन करेगा ?

सद्‌गुरु के इस असीम और अपार प्रेम से श्रीमोटा द्रवित होकर गद्‌गद हो जाते, और अंतर्चक्षु के सामने साकार बनी हुई उनकी प्रतिमा को बार-बार प्रणाम करते रहते ।

✤ ✤ ✤

॥ हरि:ॐ ॥

५९. चित्रकूट का तांत्रिक ब्राह्मण

एक बार साधनानिमित्त श्रीमोटा चित्रकूट गये हुए थे । वहाँ उनके साधनकाल में एक विद्वान पंडित ब्राह्मण उन्हें रोज़ भोजन ला दिया करता था । जब श्रीमोटा की साधना की अवधि पूरी हुई और वे लौटने को निकल पड़े, तब उस ब्राह्मण ने उनका पता माँगकर ले लिया ।

कुछ दिनों बाद अचानक नडियाद के श्रीमोटा के घर में उस ब्राह्मण का आना हुआ। वह किसी प्रयोजनवश ही यहाँ आया है, यह श्रीमोटा के ख़्याल में तुरंत आ गया। उन्होंने उस ब्राह्मण का बड़े प्रेम से स्वागत किया।

दूसरों के हाथ का खाना उस ब्राह्मण के लिए वर्ज्य था। इसलिए श्रीमोटा की माँ उसे सीधासामग्री दिया करती और वह अपना भोजन खुद बनाकर खा लेता। उसका एक दूसरा भी नियम था।–'रात में घर में सोना उसके लिए निषिद्ध था।' उसके इस नियम की जानकारी होते ही श्रीमोटा उसे रात में अपने साथ स्मशान में ले गये।

वह पंडित ब्राह्मण तंत्रविद्या का अभ्यासी था। उस मैली विद्या में उसने दीर्घकाल कड़ा अभ्यास कर के काफ़ी ऊँची स्थिति प्राप्त कर ली थी। स्मशान में श्रीमोटा को उसने अपनी साधना के और मंत्रसामर्थ्य के बल से प्रेतयोनि को साकार कर के दिखलाया।

'मैं आपको यह विद्या सिखाऊँगा, फिर आप उस विद्या के प्रभाव से राजकारण में मनचाहे फेरफार कर सकेंगे, धूमधाम मचा सकेंगे, कौनसा भी कृत्य कर सकोगे।'–उसने श्रीमोटा को ललचाने का प्रयास किया।

यह सब सुनकर शांति से श्रीमोटा ने जवाब दिया, 'पंडितजी, मुझे मेरे श्रीसद्‌गुरु ने दी हुई साधना से पूर्ण संतोष है और उनके अलावा और किसी से उनकी इच्छा बिना सीखने में मुझे कोई रुचि नहीं है, इसलिए आपकी यह विद्या सीखने की मेरी इच्छा नहीं है।'

उसकी यह मैली शवसाधना देखकर श्रीमोटा को उसका डर नहीं लगा या घृणा भी नहीं हुई, बल्कि, 'साधना करने से, पुरुषार्थ

करने से अगर प्रेतयोनि को भी साकार किया जा सकता है, तो फिर, मैं अगर उस भगवान की विशुद्ध भावना से और सच्चे प्रेम से आराधना करुँगा, तो वह निश्चित ही प्रसन्न होकर मेरी मनोकामना पूर्ण करेगा' ऐसा आत्मविश्वास और भाव उनके अंतर में उत्पन्न हुआ।

जाने से पहले उस ब्राह्मण ने अपनी इच्छा व्यक्त की। उसने बताया, 'मेरी साधना की सिद्धि होने को सिर्फ़ एक ही विधि बाकी है। और वह पूरी करने के लिए मुझे पैसों की सख़्त जरूरत है, इसलिए ही आप मुझे कुछ मदद करेंगे ऐसी आशा लेकर, उस भावना से ही मैं यहाँ आपके पास आया हूँ।'

इसपर अपनी असमर्थता व्यक्त कर के श्रीमोटा ने उसे अहमदाबाद तक जाने का किराया दिया और उसे बिदाई दी।

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

६०. हृदय जीता

एक बार श्रीसद्‌गुरु का आदेश हुआ, 'जबलपुर के पास नर्मदाकिनारे पर 'धुआँधार' नाम की जगह पर साधना के लिए एक महीना जा।' आज्ञापालन करने श्रीमोटा निकल पड़े, लेकिन सफ़र में ही उनकी जेब कट गयी और उनको बीच में ही उतर जाना पड़ा।

न आगे जा सकते हैं न पीछे लौट सकते हैं, ऐसी विचित्र परिस्थिति निर्माण हुई। फिर भी, कोई न कोई रास्ता ढूँढ़ना अनिवार्य था। वे जबलपुर एक गुजराती ब्यापारी के दुकान के सामने खड़े रहे। सेठजी अपनी लिखापढ़ी में व्यस्त थे। उन्होंने अपना सिर उठाकर उनकी ओर ताकते हुए पूछा, 'बोलो, क्या चाहिए आपको?'

श्रीमोटा ने जवाब दिया, 'सेठजी, मैं कुछ खरीदने नहीं आया हूँ। मैं आपत्ति में फँस गया हूँ, इसलिए नौकरी की तलाश में हूँ। आप अगर मुझे काम पर रख लेंगे तो बड़ी मेहरबानी होगी।' उन्होंने नम्रता से अपनी माँग रखी।

सेठजी ने उन्हें सिर से पाँव तक घूरघूरकर देखा और फिर कहा, 'देखो। मेरे पास नौकरवर्ग पर्याप्त हैं, इसलिए मैं तुम्हे यहाँ कोई नौकरी नहीं दे सकता। लेकिन हमारे घर में हर तरह का काम कर सके ऐसे हट्टेकट्टे आदमी की सख़्त जरूरत है। काम मेहनत का है और उस आदमी को हमारे यहाँ ही रहना पड़ेगा। और जो-जो काम बताया जाए वह बिना हिचकिचाट से उसे करना पड़ेगा। इस तरह का काम करना अगर तुम्हें मंज़ूर हो तो मैं इन्तज़ाम करता हूँ।'-सेठजी ने थोड़े विस्तार से ही काम का स्वरूप बताया।

'कोई हर्ज़ नहीं, चलेगा मुझे।'-श्रीमोटा को आनंद हुआ। काम सहजता से मिल गया था और उससे पैसों का प्रबंध किया जा सकता था। मेहनत से तो वे कभी डरते नहीं थे। कर्म और तप तो उनके जीवन के अविभाज्य अंग थे।

सेठजी के भेजे हुए आदमी के साथ श्रीमोटा उनके घर गये। घर बड़ा प्रशस्त था और काम भी तरह-तरह का था। कपड़े धोना, बर्तन माँजना, झाडू लगाना, बाज़ार से सामान ले आना, सेठानी को रसोई में हाथ बँटाना, बच्चों पर ध्यान देना, उनके साथ खेलना, उन्हें पाठशाला में ले जाना और ले आना, रात सोते समय बिछौने बिछाना...सुबह से रात देर तक घड़ी की तरह काम चलता ही रहता था। समय कैसे गुज़रता था इसका उन्हें ख्याल भी नहीं होता था।

श्रीमोटा सब काम जी-जान से और प्रेमपूर्वक कर रहे थे। किसी भी काम में थोड़ी-सी भी त्रुटि न रहे, इसके बारे में सदा सतर्क रहते थे। काम चुराने की आदत उन्हें नहीं थी और व्यर्थ गपशप करने का भी उनका स्वभाव नहीं था। सेठ-सेठानी उनके काम से बहुत प्रसन्न हुए। धीरे-धीरे सेठानी के मन में इस नये नौकर के प्रति ममत्व निर्माण हुआ। 'उसे मदद करनी चाहिए' ऐसी भावना उत्पन्न होने से वह श्रीमोटा को मदद करने लगी।

अब तक पाँच-छ दिन गुज़र गये थे। श्रीमोटा की कर्मसाधना अखंडित रूप से शुरू थी, वह एक दिन फलद्रुप हुई। एक दिन सेठजी के मन में आया, 'जिस तरह से यह आदमी काम कर रहा है, उससे यह कोई नौकर होगा ऐसा लगता नहीं है। उसमें जो संस्कार दिखायी देते हैं, वे मुझ में भी नहीं हैं। वह सब काम प्रेमपूर्वक और हँसते हुए करता रहता है, कभी भी उसके चेहरे पर ऊब दिखायी नहीं देती है। सब कामकाज ख़त्म कर के रात सोते समय वह नामस्मरण करते-करते ही सोता है। भोर में सब से पहले उठकर बिछौने में बैठकर ध्यान करते हुए भी मैंने इसे कई बार देखा है। यह आदमी कोई अच्छे घर का होगा। यह अंगमेहनत का काम उसने क्यों उठा लिया है, इसका पता मैं आज ज़रूर लगाऊँगा।'

सेठजी ने श्रीमोटा को अपने करीब बुला लिया और पूछा, 'आप कौन हैं ? कहाँ से आये हो ? और आपका यह नौकरी करने का उद्देश्य क्या है ? कौनसी मुसीबत में आप फँस गये हैं कि जिससे मजबूरन् आपको यह काम करना पड़ रहा है ? आप नौकर होंगे ऐसा लगता नहीं है, आप कोई खानदानी घराने के होंगे ऐसा

मुझे लगता है । आज आपको साफ़-साफ़ सब सच बताना ही पड़ेगा'-सेठजी ने अपना मन पूरा खाली कर दिया ।

श्रीमोटा ने हँसकर अपनी सब कहानी शुरू से विस्तारपूर्वक बतायी । 'पैसों की अड़चन उत्पन्न होने से धुआँधार न जा सका इसलिए पैसों का इन्तज़ाम करने के लिए ही मैं यह कर रहा था,' यह भी उन्होंने कुछ भी छिपाये बिना बता दिया ।

उनकी जीवनकहानी सुनकर सेठजी स्तब्ध हो गये । 'एक सच्चे ईश्वरभक्त को, साधक को, कर्मयोगी को न पहचानकर उससे मैंने कड़ी मेहनत करवा ली,' इसका उन्हें बहुत दुःख हुआ । तुरंत ही उन्होंने जरूरी उतने रुपये श्रीमोटा के हाथ में रखे और उन्हें काम से मुक्त किया ।

सेठ-सेठानी की रज़ा लेकर जब श्रीमोटा निकल पड़े, तब उन दोनों की आँखें भरी हुई थी । नौकर के रूप में घर में आये हुए श्रीमोटा दोनों के हृदय जीतकर जा रहे थे ।

धुआँधार से नडियाद जाने पर सेठजी को आभारप्रदर्शन करनेवाला खत लिखना वे भूले नहीं । उनका ख़त देख़कर सेठ-सेठानी बहुत आनंदित हुए और फिर हर साल नियमित रूप से वे हरिजन पाठशाला की मदद के लिए पाँच रुपये भेजने लगे । कई बरसों तक उनके रुपये आश्रमशाला को प्राप्त होते रहे ।

'अपनी निष्काम सेवा से दूसरे का हृदय पिघलाकर उसके अंतर में दबी हुई प्रेमगंगा बहती कराना' यह श्रीमोटा के व्यक्तित्व का अनोखा पहलू था ।

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

६१. धुआँधार

नर्मदाकिनारे पर 'धुआँधार' यह अत्यंत एकांत में एक गहन-गंभीर और रमणीय ऐसा स्थान है । वहाँ एक बड़े तूफ़ानी जलप्रपात का पानी झंझावात की तरह नीचे पत्थरों पर गिरकर शतशः विदीर्ण होता था । ऐरे-गैरे नत्थु खैरा के दिल की धड़कन ही बंद हो जाए, ऐसी वह डरावनी और भयंकर जगह थी । जलप्रपात की पास में, पहाड़ी की उभरी चट्टानों में एक छोटी-सी गुफा नैसर्गिक रीति से तैयार हुई थी, और वहाँ जाकर साधना करने का श्रीमोटा को श्रीसद्‌गुरु ने आदेश दिया था ।

जगह तो भयंकर थी ही, लेकिन वहाँ पहुँच पाना तो और भी कठिन था । फिर भी भगवान का नाम लेते-लेते कई युक्तियों का अवलंबन कर के कैसे भी वे गुरुकृपा से उस गुफा में पहुँच गये । गुफा बहुत छोटी थी । नीचे पत्थरों पर गिरनेवाले पानी की आवाज़ गुफा में प्रवेशकर वातावरण की भयानकता और भी बढ़ाती थी ।

दिन में बाहर की आवाज़ें, पंछियों की चहचहाट और सूर्यप्रकाश के कारण वातावरण की भीषणता कुछ कम हो जाती थी, लेकिन सूरज ने अपना प्रकाश समेटकर, सृष्टि को रात में अंधकार के हवाले करने के बाद, रात के निबिड़ अंधकार में रात की शांति में रातकीड़ों की किरकिर, जलप्रपात की भीषण घोंऽऽघों ध्वनि और जंगली श्वापदों की आवाज़ें इन सब का अजीब-सा मिश्रण बनकर हाथ-पाँव काँपने लगे और पसीना छूट जाय ऐसी डरावनी स्थिति निर्मित हो जाती थी ।

कोई साधारण आदमी हो तो उसे ऐसा ही अनुभव होता । लेकिन श्रीमोटा तो निश्चिंतता से और निर्भयता से नामस्मरण, भजन,

ध्यान, प्रार्थना आदि साधनाओं में खुद को भूल गये, अपने ही रंग में रंग गये ।

पाँच-छ दिन ऐसे ही गुज़र गये । पेट में अनाज का दाना भी नहीं था । ऐसी भयंकर जगह पर आयेगा कौन ? और अगर आ भी जाए, तो भी खाना देगा कौन ? वहाँ तो रोज़ ही एकादशी और रोज ही उपवास था । लेकिन अब छ दिनों के बाद श्रीसद्‌गुरु से रहा न गया ।-'नन्हें बच्चे का ख़्याल माँ को ही रखना होता है न ? मुझे ही कुछ इन्तज़ाम करना चाहिए ।' उनमें करुणा जग गयी।

उसी समय इत्तफ़ाक़ से श्रीमोटा का 'हरि:ॐ' का जप गुफा के बाहर टहलनेवाले एक आदमी ने सुना । इतने दुर्गम स्थान में साधन-भजन करनेवाले इस आदमी के प्रति उसके मन में आदर और भक्तिभाव उत्पन्न हुआ और उसके खाने-पीने का इन्तज़ाम मुझे करना चाहिए' ऐसा उसके मन को लगा । उसने साग-रोटी लाकर एक बर्तन में रखा और उसे डोर से बाँधकर, उसे हिलाहिलाकर वह गुफा के द्वार तक पहुँचे ऐसी योजना बुद्धिपूर्वक बनायी ।

सामने दिखायी देनेवाला वह पात्र श्रीमोटा ने निकाल लिया। साग-रोटी का भोजन कर के फिर से वह पात्र उन्होंने डोर से बाँध दिया । फिर रोज़ ही वह व्यक्ति श्रीमोटा को भोजन लाकर देने लगा ।

भोजन की समस्या का हल इस तरह हुआ, अब रही पानी की समस्या । उसके लिए उन्होंने एक तरकीब की । उन्होंने अपनी धोती को जलप्रपात के पानी के छीटों से भीगने दिया और फिर उसे निचोड़कर पानी पी गये । इस तरह वह समस्या भी हल हो गयी ।

गुफा बहुत छोटी थी, इसलिए खाना-पीना, सोना, मलमूत्र विसर्जन आदि सब क्रियाएँ गुफा में ही करना अनिवार्य था । उन्होंने यह सब कुछ प्रेम से और आनंद से सह लिया और अपनी साधना से जुड़े रहे ।

कहते-कहते इक्कीस दिन बीत गये । अपनी साधना मनचाही रीति से और सफलता से पूर्ण कर के फिर श्रीमोटा घर लौटे ।

साहस, धैर्य, सहनशीलता, अभय इन गुणों की प्राप्ति के लिए श्रीसद्‌गुरु के आदेश से की हुई साधना की पूर्णाहुति हो चुकी थी ।

श्रीमोटा साधना करते रहे, अपनी देह को चंदन की तरह घिसते रहे और प्रगट होनेवाली प्रेम की सुगंध को चारों ओर फैलाते रहे ।

✤ ✤ ✤

॥ हरि:ॐ ॥

६२. हिमालय में - अघोरी बाबा के पास

जब श्रीमोटा 'गुजरात हरिजन सेवक संघ' का कार्य करते थे, तब एक बार वे हिमालय में गये थे । चैतन्य में स्थिर हो गये हुए (साक्षात्कारी) महात्माओं से, उनकी अनुभवप्राप्ति खुद को भी प्राप्त हो, इस हेतु से वे वहाँ गये थे । गंगोत्री, जम्नोत्री, केदारनाथ, बद्रीनाथ, तुंगनाथ और दूसरे भी कई स्थानों पर जाने की उनकी इच्छा थी ।

जब वे गंगोत्री से केदारनाथ जा रहे थे, तब विश्राम करने के लिए एक चट्टी पर रुक गये । वहाँ उन्हें पता चला कि यहाँ पास में ही एक अघोरी बाबा का निवास है । चट्टी की व्यवस्था रखनेवाले आदमी ने उन्हें बताया, 'आपने जो सुना, वह ठीक ही सुना है ।' अघोरी बाबा यहीं रहते हैं, लेकिन उनसे मिलना आसान

बात नहीं है। रास्ता बहुत दुर्गम है और काफ़ी दूरी पर बाबा का स्थान है। जाने का रास्ता चढ़ाव का है और बिलकुल साफ़-सुथरा नहीं है। पेड़ की डालियाँ-बेलों और लाठी का इस्तेमाल कर के ही ऊपर जाना पड़ता है। दस-बारह मील का फ़ासला है। यह सब पार करने के बाद ही वह स्थान आता है, जहाँ वे अघोरी बाबा रहते हैं। वे बड़ी उच्च कक्षा के अनुभवसंपन्न पुरुष हैं।'

यह सुनने पर तो वहाँ जाने का श्रीमोटा का निश्चय और भी दृढ़ हुआ। स्मशानों में, एकांतवास में, जंगलों में अनगिनत रातें बितानेवाले को डर कहाँ से होगा ? 'हजार हाथोंवाला मालिक जिसके पीछे खड़ा हो, 'उसे डर कैसा ?'

अपना विचार पक्का होने पर उन्होंने तुरंत परीक्षितलालजी को और घर के लोगों को ख़ात लिखे। अपने साथ रहनेवाले बोझेवाले को पास बुलाकर वे ख़ात उसे सौंपते हुए उन्होंने बताया, 'भाई, ये ख़ात अपने पास रखना और पाँच दिन तू यहीं रुकना। मेरा सब सामान और पैसे भी तेरे पास ही रखना। इन पैसों से ही तेरा खाने-पीने का इन्तज़ाम करना। पाँचवे दिन अगर मैं लौटकर न आया, तो तू सीधे अपने घर चले जाना और हाँ ! जाते समय ये ख़ात डाकघर में डालना भूलना नहीं।'

एक वॉटर बैग, एक कंबल और थोड़ा-बहुत खाने का सिर्फ़ इतनी ही चीजें साथ लेकर वे निकल पड़े, अघोरी बाबा से मिलने।

चट्टी की दुकान के मालिक ने उन्हें समझाने की बहुत कोशिश की, 'भैया, तुम जा रहे हो, लेकिन लौटकर आओगे ही ऐसा न मानना। अब भी देर नहीं हुई है। मेरा कहा मानो और वहाँ जाने की ज़िद छोड़कर, अपना निर्णय पलटकर केदारनाथ के दर्शन

करने चले जाओ। इसमें ही आपका भला होगा। कुछ तो खुद का ख्याल करो और अपनी जान नाहक जोखिम में मत डालो।'- चट्टीवाले ने सद्भावना से उन्हें सलाह दी।

इसपर श्रीमोटा ने सिर्फ़ स्मितहास्य किया।-'मेरी देह तो मैंने कब की अर्पण की है श्रीसद्गुरु को, अब वह मेरी कहाँ है ? फिर वह रहे या न रहे, उससे क्या फ़र्क़ पड़ता है ?' मन-ही-मन उन्होंने चट्टीवाले को जवाब दिया और वे चलने लगे।

श्रीमोटा का मार्गक्रमण शुरू हुआ। सब लोगों ने जो-जो बताया था, वह ग़लत नहीं था। खाइयाँ, गड्ढे, चढ़ाव, सँकरी और बीच में ही अदृश्य हो जानेवाली पगडंडियाँ, घनी झाड़ियाँ, काँटें, सर्प, जंगली पशु...सब तरह की बाधाएँ जगह-जगह पर थी। एक-दो बार तो वे खाई में गिरते-गिरते बच गये। हाथ में आयी हुई पेड़ की डाली पकड़ने से ही वे बाल-बाल बच गये।

वे चल रहे थे, लेकिन वे जानते थे कि वे अकेले नहीं थे, श्रीसद्गुरु की अमृतदृष्टि उनके साथ थी, श्रीसद्गुरु का कृपाछत्र माथे पर था, उनका रक्षाकवच उन्हें घेरकर रहा था, इसलिए वे पूर्णतः निश्चिंत थे।

श्रीमोटा ने चलना शुरू करने को बहुत समय बीत चुका था। अब सामने समतल जमीन दिखायी देने लगी। पास में ही एक विशालकाय और घना वृक्ष था और आसपास पेड़ के सूखे पत्ते, हड्डियाँ, विष्टा, खोपड़ियाँ यह सब बिखरा हुआ पड़ा था। वातावरण बहुत ही दुर्गंधित था।

यह सब देखकर उन्होंने तय किया कि यही बाबा का स्थान होना चाहिए।

अब पंछियों का घोंसलों में लौटने का समय हो गया था।

रात धीरे-धीरे धरातल पर उतर रही थी । अब आगे जाना भी ठीक नहीं था । वहाँ ही, एक जगह चुनकर, वह साफ़सूफ़ कर के श्रीमोटा बैठ गये । भूख बड़ी जोरों से लगी थी । साथ में लाये थे, वह सब उन्होंने खा लिया और वॉटरबैग का पानी पीकर वहीं अपनी साधना में चूर हो गये । नामस्मरण, ध्यान, प्रार्थना, आत्मनिवेदन में वे लीन हो गये ।

अचानक झाड़ी में कुछ आवाज़ हुई । अंधेरे को चीरकर वे आवाज़ की दिशा में देखने लगे । 'कोई जंगली पशु तो नहीं आ रहा है न ?'-उन्हें शंका हुई, लेकिन वह ग़लत साबित हुई । उस झाड़ी में से अघोरी बाबा आ रहे थे । उनका स्वरूप भूत-प्रेत की तरह डरावना था । उनका शरीर बहुत मैला और दुर्गंधित था, माथे पर गट्ठे-गट्ठे हो गये बालों में मिट्टी और धूल भरी हुई थी । वे कभी स्नान करते होंगे ऐसा लगता नहीं था । माथे के और दाढ़ी के बढ़े हुए बाल अस्तव्यस्त फैले हुए थे । उनके हाथ-पाँव की अँगुलियों के नाखून भी बढ़े हुए थे । उन सब से अलग थी उनकी दृष्टि ! किसी प्रेत की तरह वह दृष्टि थी, फिर भी उस दृष्टि में एक अनोखा नशा था, विशिष्ट आकर्षणशक्ति थी । उस ठंडी नज़र से नज़र मिलाना बहुत कठिन था ।

अपने स्थान में कोई आदमी आ पहुँचा है, यह बाबा ने देखा, फिर भी उन्होंने उसे किंचित्मात्र भी महत्त्व नहीं दिया, वे अपनी नित्य की जगह पर जाकर बैठ गये । इस आगंतुक मेहमान की उन्होंने पूर्ण उपेक्षा की ।

धीरे-धीरे रात बीत चुकी, सुबह हुई । फिर से रात हुई और फिर सुबह हुई । तीन दिन इसी तरह बीत गये । बाबा ने श्रीमोटा की ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया, मानो वे किसी पेड़-पहाड़ या

पत्थर का ही हिस्सा थे और उनकी ओर ध्यान देने की जरूरत ही न थी ।

चौथे दिन अघोरी बाबा ने अपनी परीक्षा का अंत किया । उपेक्षा का अंत कर के उन्होंने श्रीमोटा की ओर देखते हुए पूछा, 'बच्चा, भूख-प्यास लगी है ?'

श्रीमोटा अपने स्थान पर तीन दिन से बैठे हुए थे, यह बाबा जानते थे, फिर भी पूछ रहे थे ।

'हाँ बाबा ।'-श्रीमोटा ने जवाब दिया ।

अघोरी बाबा ने हँसकर उनके हाथ में एक नरेली दी, उसमें अत्यंत दुर्गंधित ऐसा रबड़ी जैसा पदार्थ था ।

बाबा ने श्रीमोटा को आज्ञा की, 'बच्चा पी जा, इससे तेरी भूख-तरस मिट जाएगी. इससे भूख भी नहीं लगेगी, तृषा भी नहीं लगेगी ।'

कुछ भी सोचे बिना श्रीसद्गुरु का स्मरण कर के आज्ञाधारक वृत्ति से उन्होंने वह पदार्थ दुर्गंध की घृणा न करते हुए पी लिया । वह विचित्र और अगम्य पदार्थ पेट में जाते ही उनकी भूख-प्यास एक क्षण में नष्ट हुई और अंतर में एक विशिष्ट भाव उत्पन्न हुआ । धीरे-धीरे उनका बाह्यभान चला गया और वे भावसमाधि में लीन हो गये । उस तद्रूप अवस्था में मानो काल थम गया था । कई घंटे इस तरह बीत गये ।

जब वे होश में आये तब उन्होंने देखा कि अघोरी बाबा उनकी ओर प्रसन्न मुद्रा से देख रहे थे ।

वे बोले, 'अरे बच्चा । तू मेरी साथ रह जा इधर । तेरेकु जो कुछ दिल में करने का महत्त्वाकांक्षा हय, वो सब इधर तेरेकु संतोषपूर्ण मिल जाएगा ।'

श्रीमोटा ने नम्रता से कहा, 'मैं गरीब आपके दर्शनहेतु आया हूँ। कई अनुभवी महात्मा हैं, उनके शुभाशीर्वाद मुझे प्राप्त हो, इसके लिए मैं उनकी प्रार्थना करता हूँ। किसी से कुछ भी माँगता नहीं। केवल ऐसा भाव हृदय में रखता हूँ कि, 'प्रेमभक्ति द्वारा मेरे हृदय में स्वीकारशक्ति* से भाव की तद्रूपता प्रगट हो और वह जीवंतता+ से बहती रहे# ।'

इस पर अघोरी बाबा ने बताया, 'तुझे यहाँ ही रहना पड़ेगा। यहाँ से जा न सकेगा । कितने ही समय से मैं एक समर्थ शिष्य की खोज में हूँ, लेकिन बाहर खोजने कभी नहीं गया ।' 'शिष्य ही मुझे खोजते हुए इधर आ जाएगा' ऐसा मेरा दृढ़ भाव था, और इसीलिए, अब तू स्वयं ही आया है, तो तू यहाँ ही रहना । तेरी ध्येयप्राप्ति की सारी अपेक्षाएँ पूरी होंगी, इसमें कोई शंका नहीं ।'

इस पर श्रीमोटा ने कहा, 'प्रभु ! प्राप्त परिस्थिति में अनुकूल ऐसा, धर्म का प्रेम-भक्ति-ज्ञानपूर्वक पालन करना यही प्रमुख है, ऐसी मेरी धारणा है ।'

'हिमालय में आप जैसे महात्माओं के और महानुभावों के 'चैतन्यभाव' का हृदय में अनुभव प्राप्त करना यही मेरा सांप्रत का धर्म है। मेरी यात्रा का हेतु भी यही है। मुझे अब भी कई स्थानों पर जाना है। मेरा हेतु अब तक पूरा नहीं हुआ है। मुझे सांप्रत प्राप्त हो गये हुए कर्म, संयोग** और परिस्थिति इनके बारे में मेरे कर्तव्यों से मैं अब तक मुक्त नहीं हुआ हूँ और जबरन् मुझे किसी

* Receptivity (रिसेप्टिविटी)

\+ जागृतता से ।

\# प्रेमभक्ति द्वारा मेरे अंदर भाव प्रगट होकर वह जागृतता से टिका रहे, स्थिर रहे और बहता रहे ।

** ऋणानुबंध

जगह पर रोक रखे ऐसी कोई शक्ति नहीं है।'-निर्भयता से श्रीमोटा ने बताया।

यह सुनते ही क्रोधित होकर बाबा बोले, 'तूने अगर तेरी ज़िद छोड़ी नहीं तो तुझे शरीर टिकाये रखना कठिन होगा, मैं देखता हूँ, तू कैसे जाता है यहाँ से ।'

इस पर गंभीर होते हुए श्रीमोटा ने स्पष्टता से बाबा को सुनाया, 'किसी भी प्रकार का भय इस 'जीव' को ग्रस नहीं सकता। 'भय' को जीवन से भगा दिया है। मेरे गुरुमहाराज के आशीर्वाद से, भगवान की कृपा होकर मुझे 'अभय' प्राप्त हुआ है। वह मेरे जीवन का बड़े-से-बड़ा श्रृंगार है, गौरव है। जीवन की शाश्वतता और चैतन्य अनुभव करने के लिए 'अभय' प्राप्त होने की ही आवश्यकता है ।'

श्रीमोटा इतना कहकर चट्टी पर लौटने के लिए निकल पड़े। उनके मन में किसी भी प्रकार की अशांति या खलबली नहीं थी।

भजन गाते-गाते वे नीचे उतर आये। नीचे आने को ज़्यादा वक्त नहीं लगा। वे चट्टी पर आये, स्नान किया, रसोई बनायी, भोजन किया और रात में निद्राधीन हो गये ।

सुबह में जब वे उठे, तब शरीर हल्का-फुल्का था, स्वस्थ था। बाद में अचानक शौच जाने की भावना हुई। जाकर वापस आये-न-आये तो फिर से वही प्रकार। बार-बार यह होने लगा।

चट्टी के लोगों ने उन्हें बताया, 'ऐसे बीमार आदमी को यहाँ रहने की अनुमति नहीं है। आपके कारण सभी लोग बीमार न हो, इसलिए आपको कुछ और इन्तज़ाम करना होगा ।'

फिर, श्रीमोटा ने अपना सामान उठाया और वहाँ से थोड़ी दूरी पर पानी के झरने के पास में चटाई बिछाकर उस पर पड़े रहे। दस्त हो-होकर शरीर की शक्ति को मानो किसी ने चूस लिया

था। गलितगात्र शरीर से वे वहाँ ही पड़े रहे । इस घटना के पीछे अघोरी बाबा का ही हाथ है, यह उन्हें तुरंत ख़्याल में आ गया।

दस्त होने का प्रमाण अब इतना बढ़ गया और शरीर इतना कमज़ोर हो गया कि बैठने की भी शक्ति नहीं रही । धीरे-धीरे उनका बाह्यभान भी लोप होता गया और वे पूरी तरह बेहोश हो गये । एक बंगाली साधु अपने पास आया था, इसका धुँधला-सा स्मरण उन्हें बेहोशी की क्षण के पहले था ।

जब उनका होश लौट आया तब, उन्हें दिखायी दिया कि वह बंगाली साधु माँ की तरह उनकी निगरानी कर रहा है। शौच धोना, कपड़े धोना, स्थान साफ़सूफ करना, अंग पोंछना, अनाज-पानी देना-सब कुछ वह बड़े प्रेम से और ममता से कर रहा था। उस साधु की प्राणपूर्वक की हुई सेवा से उनकी सेहत में बहुत त्वरा-से फेरफार होने लगा और वे जल्द ही ठीक हो गये ।

बाद में उन्होंने उस साधु से पूछा, 'महाराज, मैं कितने दिन बेहोश था ?'

साधु ने जवाब दिया, 'बेटा। तू करीब-करीब अठारह-बीस दिन तक बीमारी से पड़ा हुआ था । तू बचा है तो केवल तेरे गुरुमहाराज की कृपा से। बेटा, मुझे यह देखकर बहुत आनंदाश्चर्य हुआ कि ऐसी भयंकर बीमारी में और इस बेहोश अवस्था में भी तेरा नामस्मरण और तेरी प्रार्थना ये दोनों शुरू थे और अखंडितता से शुरू थे ।'

अपनी सेवा करनेवाले उन साधुमहाराज को देखते-देखते श्रीमोटा की आँखें पानी से भर आयी।-कौन कहाँ के साधुमहाराज ? ...उनका और मेरा क्या संबंध ?...फिर भी मेरे लिए कितना कुछ

किया। उनका ऋण मैं कैसे चुकाऊँ ?... 'कृतज्ञता से उनका हृदय भर आया ।

वे अपना कंबल और पच्चीस रुपये उस साधु को देने लगे, अपनी कृतज्ञता और भाव व्यक्त करने के लिए। लेकिन साधु ने कहा, 'बेटा, तू यह क्या कर रहा है ? तेरे पास कुछ भी नहीं है और तू मुझे दे रहा है, यह ठीक नहीं ।' 'अमुक स्थान में मेरा भक्त है, उसकी सेवा कर ।' ऐसा आदेश मुझे मेरे श्रीसद्‌गुरु से प्राप्त हुआ, इसीलिए मैंने तेरी सेवा की। बेटा, मैं तो केवल निमित्तमात्र हूँ ।'

चल सके इतनी शक्ति प्राप्त होने के बाद दोनों जन वापस आने को निकल पड़े। कुछ अंतर चलने के बाद श्रीमोटा को ख़्याल हुआ कि, 'साधुमहाराज मेरे साथ नहीं है ।' 'वे लघुशंका आदि करने गये होंगे और मैं अपनी ही धुन में चलकर आगे आ गया हूँ, ऐसा उन्हें लगा। वे खड़े होकर उनकी राह देखने लगे। बहुत देर तक राह देखने पर भी साधुमहाराज नहीं आये ।

साधुमहाराज के बारे में सोचते-सोचते अचानक ही उनके मन में प्रश्न उठा, 'मेरी सेवा करनेवाले ये साधुमहाराज कौन हो सकते हैं ?'

उनके अंतर्मन ने उन्हें तत्क्षण जवाब दिया, 'अरे पागल !' नहीं पहचाना ? तू भी पहचान न सका ? अरे, वे थे तेरे श्रीसद्‌गुरु। साक्षात् श्रीबालयोगी महाराज ।

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

६३. ब्रह्मचर्य के लिए अग्निसाधना

एक बार एक अनुभवी महापुरुष ने श्रीमोटा को बताया, 'ब्रह्मचर्य में सहजता प्राप्त होने के लिए मैं कहता हूँ वैसी साधना

तू कर । चैत महीने में किसी एकांत स्थान में जाकर तप्तशिला पर बैठकर तुझे यह साधना करनी पड़ेगी । तेरे हृदय में भाव परिपूर्णता से हैं, इसलिए इस साधना से तुझे जो लाभ होगा, वह कितना अनोखा होगा उसका अनुभव तू खुद ही कर लेना ।'

श्रीमोटा ने साधुमहाराज की वह सूचना अमल में लाने का निश्चय किया और उसके लिए नर्मदामाता के किनारे पर एक रमणीय ऐसा एकान्त स्थान चुना ।

चैत महीने की आग बरसानेवाली धूप में अंगारों की तरह तपी हुई शिला पर वे दोपहर ग्यारह बजे निर्वस्त्र होकर बैठ जाते। उनके बैठने के स्थान के इर्दगिर्द इक्कीस धूनियाँ वर्तुलाकार में तीन फूट की दूरी पर रची जाती । हरएक धूनी डेढ फीट ऊँची और दो फीट चौड़ी रहती । इस तरह इक्कीस-इक्कीस धूनियों के तीन वर्तुल तीन-तीन फीट दूरी पर रचे जाते ।

ये ६३ धूनियाँ जलाकर वे अपना समय नामस्मरण, भजन, ध्यान, प्रार्थना, आत्मनिवेदन इत्यादि रीति से साधना में बिताते । चारों ओर धूनी की लौ-लौ करती भभकती ज्वालाओं की आँच, ऊपर से सूरज की दाहक धूप और नीचे अंगारों की तरह तपी हुई शिलाएँ, इस तरह सभी तरफ़ से तपकर उनके शरीर से पसीने की धाराएँ छूटने लगती । इतने प्रचंड दाह में भी उन्हें अद्‌भुत ऐसी भावावस्था और ध्यानावस्था प्राप्त होती थी ।

इस तरह ग्यारह बजे से पाँच-साढ़े पाँच बजे तक वे बैठे रहते। शाम को वहाँ से उठने के बाद वे सब पसीना दो तौलियों से पोंछ लेते । इस साधनकाल में उन्होंने स्नान वर्ज्य किया था और नींद भी नाममात्र ही लेते थे । रोज़ की साधना पूर्ण होने पर शाम को उन्हें दो बड़ी कटोरियाँ भरकर नीम का रस दिया जाता था

। नीम की कोमल पत्तियों का रस निकालने के लिए उन्होंने पैसे देकर दो खास आदमी नियुक्त किये थे । उस साधनाकाल में यह नीम का रस ही उनका खाना-पीना था, किसी प्रकार का अनाज-पानी वे लेते नहीं थे । मानो खाना ही खा रहे हो इस ढंग से वे नीम का रस शांति से, घूँट-घूँट से और धीरे-धीरे पी जाते । रस प्राशन की यह विधि दो-ढाई घंटे तक चलती रहती ।

इस तरह अट्ठाईस दिन तक यह साधना श्रीमोटा ने की । इस साधना से उनके शरीर के अंग-उपांगों की और सब 'करणों' की शुद्धि हुई, शरीर और मन में अद्‌भुत शांति का अनुभव हुआ, विकारों का शमन हुआ और साधना में स्थिरता आकर ब्रह्मचर्य सहज हो गया ।

श्रीमोटा ने बाद में बताया कि, 'शरीर में कई प्रकार के मल रहते हैं और साधना के लिए मलशुद्धि आवश्यक है, उसी तरह शरीर के चित्त, प्राण और मन इन तीनों-करणों की शुद्धि भी अनिवार्य है ।

'शरीर के रोम-रोम की मलशुद्धि होना आवश्यक है और यह मल पसीने के द्वारा ही बाहर आ सकता है ।

'शरीर से पसीना आना यह नैसर्गिक प्रक्रिया शरीर स्वस्थ रखने के लिए ही प्रकृति ने प्रदान की है । इसका हमें बहुत ही कम भान है ।

'आजकल हवा बिना आदमी को चैन पड़ती नहीं है । शहरों में एअर कंडिशन्ड रूम्स, पंखें, इनके द्वारा शरीर को हवा की आदत हो गयी है और वह सर्वमान्य है । लेकिन शरीर की सेहत की दृष्टि से यह अच्छा नहीं है ।

'आज अगर लोग मानते नहीं हैं, तो भी, शरीर से पसीना

आना, इतना ही नहीं बल्कि ज़्यादा-से-ज़्यादा आना यह शरीर की सेहत की दृष्टि से यह अच्छा है ।'

अग्निसाधना के बाद श्रीमोटा संपूर्णतः विकारमुक्त हो गये ।

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

६४. श्रीकृष्णदर्शन - सगुण साक्षात्कार

श्रीमोटा को १९३० में मन की नीरवता का साक्षात्कार होने के बाद १९३४ में द्वैत का साक्षात्कार हुआ ।

द्वैत के—सगुण ब्रह्म के साक्षात्कार में उन्हें भगवान श्रीकृष्ण का दो बार दर्शन हुआ था ।

श्रीमोटा ने अपने ही शब्दों में उसका अत्यंत मनोहारी वर्णन किया है ।

'वह कृष्णस्वरूप मुरलीधारी या पार्थिव शरीर के तत्त्वों का नहीं था । वह परम सौंदर्य से परिपूर्ण और अपार तेज से भरे हुए सदेही कृष्ण का दर्शन था । यह स्वरूप इतना कुछ मनोहारी और हृदयाकर्षक था कि किसी तरह की कल्पना से भी उसका वर्णन करना संभव नहीं है । वह मुलायम, पारदर्शी, स्फटिक की तरह प्रकाशमान, नीलवर्णरंगी, जीवंत दर्शन था ।

'दर्शन स्थिर नहीं था, खेलनेवाला, हिलनेवाला, चलनेवाला, क्षण में पास आनेवाला और क्षण में दूर जानेवाला ऐसा अनुभव में आता था, और वह आधार के भिन्न-भिन्न मनादिकरणों को स्पर्श करता था और वहाँ कुछ सूक्ष्म प्रक्रिया कर रहा हो, ऐसा लगता था...भ्रूकुटि और ब्रह्मरंध्र के भाग में खुद को प्रस्थापित करनेवाला

और हृदय में विराजमान, इस प्रकार का अनुभव होता था । समग्र आधार तत्तवर्णी और पूर्ण प्रकाश से आलोकित हो गया हुआ महसूस होता था । 'खुद स्वयं को अनुभवना संभव हो' ऐसी भूमिका भी अनुभव की जाती थी । कुछ क्षणों में उसका विस्तार भी अनुभव हो जाता था । श्रीकृष्ण का अलौकिक दर्शन इतना अद्भुत, रोमांचक, मुग्ध, स्निग्ध, कोमल था कि पूछो ही मत । समग्र आधारों में और उनके-करणों में उसका प्रभाव चिरस्थायी हो गया हुआ अनुभव में डाला था । इसके बाद उसका परिणाम 'उस' की (ईश्वर की) कृपा से चिरस्थायी रहा है ।

'इस अनुभव के बाद सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम और दिव्य प्रदेशों में बाधाएँ प्रगट नहीं हुई थीं ऐसा नहीं । लेकिन दिव्य कृपा की मदद से उनका निवारण किया जा सका था । उसके ऐसे कृपामय मंगल दर्शन अनुभव के बाद, आधार के केंद्र में कुछ अवर्णनीय फेरफार हो गया हुआ अनुभव में आता था । और बाद में वह सतत ज्वलंतता से और स्थिरता से अभिव्यक्त हो रहा था ।

'इस 'जीव'* के जीवन में इस दर्शनप्राप्ति के बाद वह चैतन्य अखंडितता से और जीवंतता से प्रगट रहा, और उसके आकर्षण की, भाव की सतत वृद्धि होती गयी, और पशुपक्षी, निसर्ग, वृक्ष, बालक, भजन ऐसे किसी भी निमित्त से भाव प्रगट होकर वैसे दिव्य दर्शन की इच्छा फिर से उत्पन्न होकर अपनेआप भावसमाधि प्रगट होने लगीं ।'

✤ ✤ ✤

---

* श्रीमोटा के

॥ हरिःॐ ॥

६५. अभयप्राप्ति की कसौटी – गिरनार में !

स्वयं को अभयप्राप्ति हुई है या नहीं इसकी परीक्षा करने के लिए एक बार श्रीमोटा वजुभाई जानी (एक साधक मित्र) के साथ गिरनार गये थे ।

भगवान दत्तात्रेय की निर्गुण पादुकाएँ जिस शिखर पर हैं, वहाँ जाने के लिए जहाँ से सीढ़ियाँ प्रारंभ होती है, उसके नज़दीक एक पानी का कुंड है । उसकी पिछली ओर बहुत घना और भयंकर ऐसा जंगल है, वहाँ जाना निश्चित हुआ ।

श्रीमोटा कुंड के आसपास रहनेवाले साधु-महात्माओं से मिले और अपनी मनोकामना व्यक्त की : 'उस जंगल में अंदर-अंदर नीचे खाई तक जाने की हमारी इच्छा है । आप हमें सिर्फ़ एक बार, दोपहर को, दो व्यक्तियों को पर्याप्त रोटी और साग या दाल देने का इन्तज़ाम करना । हम आपको रोज़ पाँच रुपये दिया करेंगे । हम वहाँ जाकर दो-चार दिन रहना चाहते हैं ।'

यह सुनकर उन साधु-महात्माओं ने और बाकी के लोगों ने डरकर उन्हें सलाह दी, 'नहीं, नहीं, तुम वहाँ जाने की झंझट में मत पड़ना, अन्यथा उन सिंहों के भक्ष्य बन जाओगे ।'

श्रीमोटा ने हँसकर निर्भयता से जवाब दिया, 'हम तो भक्ष्य बनने के लिए ही जा रहे हैं ।'

श्रीमोटा का और वजुभाई का वहाँ जाने का दृढ़ निर्धार देखकर अंत में वे बोले, 'ठीक है, लेकिन हम ठेठ नीचे तक नहीं आएँगे । सिंहों का डर है । आधे रास्ते तक हम आ जाएँगे । वहाँ आकर भोजन लेकर, आधा रास्ता आपको ही चलना पड़ेगा । श्रीमोटा ने वह स्वीकार किया ।'

अपने निश्चयानुसार श्रीमोटा और वजुभाई ने उस डरावने और घने जंगल में प्रवेश किया और पहाड़ी उतरते-उतरते वे नीचे खाई तक पहुँच गये । वहाँ जाने पर, मुक्त रूप से घूमनेवाले सिंह उनके आसपास आते थे, एकदम करीब से गुजरते भी थे, लेकिन किसी ने कुछ नहीं किया । शुरू-शुरू में डर के कारण वजुभाई को मलमूत्र विसर्जन हो जाता था ।

श्रीमोटा कहा करते थे, 'डर तो अंदर है, बाहर नहीं ।'

वे दोनों वहाँ सात दिन तक रहे । उन्हें भक्ष्य बनाने का प्रयत्न एक भी सिंह ने नहीं किया ।

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

६६. प्रभाबा से सदेह पुनर्भेंट

श्रीमोटा एक बार कच्छ में 'भूज' इस स्थान में गये थे । इस इलाके में सिंह रात में ही नहीं, बल्कि दिन में भी मुक्तता से और निर्भयता से घूमा करते रहते थे ।

'भूज' में एक टेकरी पर एक बड़ा मंदिर है । मंदिर के सामने प्रशस्त मैदान है । श्रीमोटा ने रीतसर अनुमति लेकर वहाँ एक रात गुज़ारी । रात में उस घने जंगल में वे अकेले ही उस मैदान में बैठकर ईश्वरस्मरण में लीन हो गये । उन्हें आज बहुत तीव्रता-से-स्मरण हो रहा था प्रभाबा का ।

'जिस माँ ने—अध्यात्मिक माँ ने मुझे इतना निरपेक्ष प्रेम दिया, अपनी ममता बरसायी, नामस्मरण के लिए श्रद्धा का बीज दिया-उसके अंतिम समय में मैं उसके पास उपस्थित न हो सका, उसे देख न सका, उसकी कुछ सेवा कर न सका यह मेरा कैसा दुर्भाग्य ! ऐसा कर के नियति ने कैसा क्रूर मज़ाक किया है मेरे

से। अब मैं उसे कभी भी देख न पाऊँगा, उसका शरीर सदा के लिए विलीन हो गया।...' श्रीमोटा का हृदय प्रभाबा के स्मरण से भर आया और आँखों से आँसुओं की धाराएँ झर-झर कर के बहने लगीं। माँ के वियोग से वे अंदर-ही-अंदर तड़फड़ा रहे थे। नामस्मरण और प्रार्थना से अपना दुःख भूलने का उन्होंने प्रयत्न किया, लेकिन प्रभाबा का स्मरण और ही घनीभूत हुआ और हृदय की पीड़ा की परिसीमा हो गयी। 'दुःख से कलेज़ा फट जाएगा और में इसी क्षण यहाँ मर जाऊँगा' ऐसा उन्हें लगा।

इतने में अचानक उन्होंने देखा-अपने इस नाशवंत चर्मचक्षुओं से देखा, प्रभाबा उनके सामने प्रत्यक्ष देह धारण कर के खड़ी थीं और उनकी ओर देखकर मुसकरा रही थीं। अपनी आँखों पर श्रीमोटा का विश्वास ही नहीं हुआ। वे खड़े हुए और दौड़ते-दौड़ते बा के पास जाकर उन्हें जोर से आलिंगन दिया। बा ने बड़े प्रेम से उनकी पीठ पर, सिर पर हाथ फिराया, सहलाया और उनके कपाल का चुंबन लिया। माँ-बेटे की, दोनों की आँखों से गंगा-जमुना बह रही थी।

बा के ममताभरे स्पर्श से श्रीमोटा का दुःख पिघल गया और वे एकदम शांत हो गये, उनका सारा बदन चंदन की तरह शांत-शीतल हो गया, ठंडा हो गया।

बाद में माँ-बेटे की मनसोक्त बातचीत हुई और फिर श्रीमोटा प्रभाबा की गोद में मस्तक रखकर पड़े रहे। वह एक अनोखा स्वर्गसुख था, दिव्यसुख था। 'स्वामी तीनों जगत का, माँ के बिना भिखारी।'—यह क्यों कहा जाता है, उसका प्रत्यक्ष अनुभव वे ले रहे थे।

माँ की गोद में विश्राम करनेवाले श्रीमोटा ने करवट बदली और एक क्षण में ही एक सपने की तरह प्रभाबा का स्थूल शरीर अदृश्य हो गया। उनकी काया तो अदृश्य हो गयीं पर अपने अनाथ बेटे को सनाथ बन जाने का आनंद वह दे गयीं, उसके हृदय को शीतल, शांत, तृप्त कर गयीं।

वह रात श्रीमोटा की अपनी जिंदगी में एक अविस्मरणीय संपदा बन गयी।

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

६७. सेवानिवृत्ति और कराची को प्रयाण

देखते-देखते श्रीमोटा की हरिजन सेवा को बीस साल हो गये। उनकी सेवा भी शुरू थी और साधना भी चल रही थी। 'भगवान श्रीकृष्ण का सगुण साक्षात्कार होकर पाँच साल गुजर गये थे, फिर भी निर्गुण निराकार का साक्षात्कार हुआ नहीं है', इसकी चुभन उनके दिल में सतत रहती थी। 'अब हरिजन सेवा से मुक्त हो जाऊँ' ऐसा भाव उनके अंतर में उत्पन्न हुआ।

'आज तक खुद को जो प्राप्त हुआ, वह सिर्फ़ अपने लिए ही न रखकर दूसरों को भी उसका भागीदार बनाना चाहिए ऐसा उनके मनोदेवता ने उन्हें बताया। अपने जीवन में जो-जो व्यक्ति सहजता से आ मिलेंगे, उन्हें अंतर में भरे हुए ये दिव्य अमृतबिंदु देने के लिए सेवाकार्य से पूर्णतः मुक्त होने का उन्होंने दृढ़ निर्णय किया।

बड़े भाई की मौत के पश्चात् बीस साल तक सारे कुटुंब की जिम्मेवारी उन्होंने अकेले ही उठायी थी। लेकिन अब दूसरे दो भाई भी स्थिर हो गये थे और एक भतीजे को अच्छी नौकरी भी

मिल गयी थी, इसलिए माँ और भाभी की देखभाल करने का भार वे सब उठा सकते थे । अपने कौटुंबिक कर्तव्यों से मुक्त होने का श्रीमोटा का निर्णय सर्वथा समयोजित था ।

सेवानिवृत्ति का अपना विचार श्रीमोटा ने माँ को बताया । वह सुनकर उद्विग्न होकर बोल उठी, 'यहाँ पौसेर अनाज तक चिड़ियों को खिलाने को मिलता नहीं है, और तू है वह छोटी-सी नौकरी छोड़कर मानो जगत ही जीतनेवाला है ।' इसपर श्रीमोटा मौन रहे और विषय वहाँ ही खत्म हुआ ।

दो-चार दिनों के बाद उन्होंने फिर से वह चर्चा छेड़ी और माँ को किसी-न-किसी तरह समझाने की कोशिश की । थोड़ा-सा सोचकर माँ ने बताया, 'ठीक है, लेकिन मुझे हर महीने में पाँच-छ रुपये मिलेंगे इसका प्रबन्ध करना, फिर मुझे कोई चिंता नहीं रहेगी ।'

'ठीक है ।' श्रीमोटा ने आश्वासन दिया ।

'और हाँ, जब मैं आखिरी घड़ियाँ गिन रही हूँगी, तब तुझे मेरे पास आना पड़ेगा, यह भी, हाँ, मैं अभी ही बता देती हूँ ।'-माँ ने उन्हें प्रेम से धमकाया ।

श्रीमोटा ने हँसकर कहा, 'अरी माँ, ऐसी सेवा करना यह तो मेरा धर्म ही है, और उसे निभाना मैं भूल जाऊँगा ऐसा तुझे लगा ही कैसे ? इस पृथ्वी पर मैं जहाँ कहीं भी हूँगा, तो भी उस वक्त दौड़कर आ जाऊँगा । तू इसके बारे में निश्चिंत रहना ।'

उनके इस वक्तव्य से माँ को संतोष हुआ और उसने प्रसन्नता से श्रीमोटा को सेवानिवृत्ति की अनुमति दे दी । फिर उन्होंने रीतसर निवृत्ति ले ली । 'अब इसके आगे मूळजीभाई के पास रहूँगी' ऐसा निश्चित कर के माँ नडियाद में अपने उस लड़के के घर चली गयीं ।

कड़ी दोपहर में माथे पर आकर अपने तेजोकिरण पूर्णता से धरातल पर बरसानेवाले सूरज की तरह उस समय श्रीमोटा की साधना भी अपने शिखर पर थी । उस समय उनके साधनामार्ग में उनके साथ और भी तीन सहप्रवासी थे । वे थे श्रीहेमंतकुमार नीलकंठ, श्रीवजुभाई जानी और श्रीनंदुभाई । श्रीमोटा और वे तीनों मिलकर चार शरीर थे । लेकिन उनके अंदर बसता था एक-ही-एक हृदय ।

जिनके प्रति श्रीमोटा के हृदय में पितृसदृश भाव था, उन परसदभाई मेहता के पास, अपने 'बापू' के पास कराची जाने का श्रीमोटा ने निर्णय लिया और अपने कुटुंब की और तीनों साधक-सहकारी मित्रों की भरे हृदय से बिदाई लेकर वे कराची गये । वे तीनों मित्र जानते थे, 'श्रीमोटा हमें छोड़कर नहीं, बल्कि साथ लेकर गये हैं ।'

कालप्रवाह में इन सभी के जीवन-सरिताओं का जलौध बह रहा था भिन्न-भिन्न दिशाओं में, फिर भी वे सभी सरिताएँ मार्गक्रमण कर रही थीं, एक-ही-एक चैतन्यसमुद्र की तरफ ।

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

६८. कराचीवाले बाबा - एक औलिया

साधना में लगन, खुद को न्यौछावर करने का प्राणांतिक और दृढ़ भाव और अभय इनकी विशेषरूप से आवश्यकता होती है। भय भी एक ही प्रकार का होता है ऐसा नहीं । कई प्रकार के भय से मुक्ति पाने के लिए जी-जान से और प्राणपूर्वक पुरुषार्थ करना पड़ता है ।

इसी हेतु से श्रीमोटा भी हरसाल दिवाली में नर्कचतुर्दशी का दिन नये स्थान पर, रातभर साधना के लिए जाया करते थे ।

इस बार उनका वास्तव्य कराची में था । आज नर्कचतुर्दशी का दिन था । मध्यरात्रि होने को आयी थी । श्रीमोटा घर से निकले और समुंदर के किनारे पर चलने लगे । आज की रात उन्हें साधना में ही बितानी थी । कहाँ जाकर साधना करनी है, वह जगह उन्होंने कल ही देख ली थी, उस निश्चित की हुई जगह पर वे आ पहुँचे ।

समुद्रकिनारे पर उभरी हुई चट्टानों में वह स्थान था । बड़ी कठिनाई से श्रीमोटा वहाँ तक पहुँच गये । रात के सन्नाटे में वह सुनसान जगह बड़ी भयानक लग रही थी । समुद्र के पानी की लहरें उन चट्टानों से टकराकर टूट जाती थीं और पानी के छींटों से उनका बदन भीगा जा रहा था । वातावरण इतना भयानक होने पर भी श्रीमोटा शांति से अपनी साधना में लग गये । नामस्मरण की धारा बहने लगी और भजन, प्रार्थना और नामस्मरण की आवाज़ अंधकार को चीरकर दूर-दूर तक फैलने लगी । कुछ समय इसी तरह बीत गया । अचानक श्रीमोटा ने देखा कि उस टेकरी के नीचे एक आदमी खड़ा था । उसकी पोशाक बहुत विचित्र थी और उसके बाल बढ़े हुए और अस्तव्यस्त थे, आँखें लाल-लाल थी ।

उस आदमी ने धमकाते हुए श्रीमोटा से पूछा, 'इधर क्यों बैठा है ?'

'भगवान के ध्यान में ।'-श्रीमोटा ने निर्भयता से जवाब दिया।

'नहीं, इधर तुम नहीं बैठ सकता ।'-उसने फिर से धमकाया।

'क्यों?'-बिना हिचकिचाहट से श्रीमोटा ने प्रश्न किया ।

'यह मस्त लोगों की जगह है ।'-उस आदमी ने कहा ।

'मुझे भी मस्त बनना है ।'-अपना इरादा श्रीमोटा ने स्पष्ट किया।

अब क्रोधित होकर चिल्लाकर वह आदमी बोला, 'इधर से चले जाओ ।'

'नहीं जा सकता ।'-श्रीमोटा ने दृढ़ता से इनकार किया । अपनी जगह से वे तनिक मात्र भी हिले नहीं ।

'तो मारेगा ।'-अब वह आदमी गुस्से से आगबबूला हो गया।

'बहुत अच्छा ।'-निर्भयता से जवाब देकर, 'वह आदमी अब क्या करता है' यह श्रीमोटा देखने लगे ।

उस आदमी ने एक बहुत बड़ा पत्थर दोनों हाथों से उठाया और उसको बहुत ज़ोर से फेंका । सूंऽऽसूंऽऽ करते हुए वह उनके सिर के बालों को मात्र स्पर्श कर के पास के चट्टान पर जा गिरा। पत्थर गिरने की आवाज़ से उस भीषण शांति के टुकड़े-टुकड़े हो गये ।

एक क्षण में घटी हुई इस घटना से श्रीमोटा स्तब्ध हो गए। 'तीन-चार आदमियों से भी उठाने को मुश्किल ऐसा बड़ा पत्थर यह अकेला आदमी उठाता है, सहजता से फेंकता है और मुझे जरा-सी भी चोट न लगकर केवल बालों को स्पर्श कर के ही जा गिरता है, यह सब कुछ अद्‌भुत है, चमत्कारी है, विशेष है। यह साधारण आदमी के बस की बात नहीं है । निश्चित ही यह आदमी कोई औलिया होगा ।'-श्रीमोटा ने इस चमत्कारिक घटना का हल ढूँढ़ लिया और तुरंत ही अपनी जगह से उठकर वे नीचे चले आये और उसके चरण पकड़कर अपना मस्तक रखकर भक्तिभाव से प्रणाम किया ।

औलिया ने उन्हें प्रेम से उठाया और बोला, 'तुझे साधना में प्रगति कराने को ही मैं यहाँ आया हूँ । तू डरा नहीं और अपनी जगह पर निर्धारपूर्वक बैठा रहा, यह देखकर मुझे बहुत संतोष हुआ । मैं तुझे अब साधना की एक विधि सिखाऊँगा, लेकिन उससे

पहले तुझे एक काम करना पड़ेगा । मुझे सिगरेट पीनी है, तू वह ले आ ।'

उसकी आज्ञानुसार श्रीमोटा निकल पड़े और चलने लगे । औलिया ने उन्हें अटकाकर आगे बताया, 'और सुन ! ध्यान रखना कि सिगरेट वैसे ही लानी है, पैसे नहीं देने हैं ।'

इतनी कालिखभरी अंधेरी रात में वे सिगरेट लाने निकल पड़े। कुछ अंतर चलने पर उन्हें एक छोटी-सी दुकान दिखायी पड़ी। इतनी रात में दुकान कहाँ खुली होगी ? वह तो बंद ही थी । श्रीमोटा ने दुकान की फलियाँ खड़खड़ायीं ।

इतनी रात में कोई आकर अपनी नींद खराब कर रहा है, इससे गुस्सा होकर मालिक बाहर आया और कोसने लगा—

'क्यों बे ? इतनी रात में आने को शर्म नहीं आती ?'

'मुझे सिगरेट चाहिए ।'-श्रीमोटा ने नम्रता से कहा ।

केवल सिगरेट के लिए नींद तोड़नेवाले के प्रति उसे चिढ़ आई यह स्वाभाविक ही था । क्रोध से काँपते हुए वह करीब-करीब चिल्लाया, 'हमें क्या सोने नहीं दोगे ? यह क्या सिगरेट पीने की घड़ी है ?...लेकिन उसके व्यावहारिक मन ने उसे सलाह दी, 'अब नींद टूट ही गयी है तो दे देना सिगरेट, लेकिन पैसे दबाकर लेना ।'

'ठीक है, दूँगा मैं सिगरेट, लेकिन पैसे ज़्यादा देने पड़ेंगे ।' दुकान-मालिक ने कहा ।

'अब क्या करना ?'—पैसे देने नहीं है, ऐसी औलिया की आज्ञा थी और वैसे तो उनके पास भी फूटी कौड़ी तक नहीं थी, वे तो घर से वैसे ही खाली हाथ निकल पड़े थे । 'अब पैसों का क्या करना ?'—कूट प्रश्न खड़ा हुआ । अचानक उन्हें स्फुरण हुआ,

'मैं अपना कंबल उसे दे दूँगा और उसके बदले में सिगरेट ले लूँगा ।'

फिर वे झट से बोले, 'चलेगा, दो मुझे सिगरेट । और हाँ, एक माचिस भी दो ।'

'...माचिस बिना सिगरेट जलेगी कैसे ? यह खरीदना भी जरूरी है ।'—उन्हें लगा ।

उन्होंने माँगी हुई दोनों वस्तुएँ निकालकर दुकानदार ने उनके हाथ में रखीं । वे लेकर श्रीमोटा बोले, 'साहब, गुस्सा न करना, लेकिन मेरे पास इस वक्त पैसे नहीं है । मैं आपको आपके सारे पैसे कल सुबह दे दूँगा । आज उसके बदले में आप मेरा यह कंबल रख लें ।'

अग्नि में घी डालते ही ज्वाला भभक उठे वैसे दुकानदार क्रोध से आगबबूला होकर थरथर काँपने लगा और श्रीमोटा के हाथ से सिगरेट और माचिस छीनकर जोर-जोर से चिल्लाकर बकने लगा, 'मूर्ख ! पैसे नहीं थे तो पहले क्यों नहीं बोला ? इतनी रात गये यहाँ आकर मेरी नींद हराम करता है और मुफ्त में सब चाहता है ? तेरा यह पुराना कंबल लेकर मैं क्या करूँ ? चल फूट यहाँ से ।...'

यह सब झमेला चल रहा था और उतने में एक आदमी दौड़ते-दौड़ते वहाँ आया । उसने श्रीमोटा के हाथ में पैसे दिये और बताया, 'दुकानदार को देने के लिए बाबा ने भेजे है । पैसे देकर सिगरेट लेकर तू तुरंत जाना ।'—पैसे देकर, जैसा आया था वैसे ही हाँफते-हाँफते और भागते-भागते वह आदमी चला गया ।

पैसे मिलने पर दुकानदार का मुँह बंद हो गया । अनमोल खजाने की तरह सिगरेट और माचिस सम्हालकर हाथ में लिये श्रीमोटा औलिया के पास जाने को चलने लगे ।

औलिया उनकी राह देखते हुए वहाँ ही खड़ा था । लायी हुई चीजें श्रीमोटा ने उन्हें सौंप दी । सिगरेट के साथ माचिस भी देखकर उनकी होशियारी से औलिया बहुत प्रसन्न हुआ ।

पैकिट खोलकर एक सिगरेट निकालकर औलिया ने वह सुलगायी और अपनी ही मस्ती में चस्का लेने लगा । फिर उसने और एक सिगरेट निकालकर श्रीमोटा को दी और आज्ञा की 'ले, तू भी सिगरेट पीना ।'

'माफ़ करना, मुझे पीना आता नहीं है ।' श्रीमोटा ने अपनी असमर्थता व्यक्त की ।

औलिया हँसकर बोला, 'कोई हर्ज़ नहीं, जैसा आए वैसे पीना ।'

अब सिगरेट पीने के अलावा और कोई चारा नहीं था । सिगरेट सुलगाकर श्रीमोटा ने पीनी शुरू किया । आदत न होने से एक दम लगाते ही जोर से खाँसी आयी और 'खोंऽऽखोंऽऽ' करते हुए उन्होंने सिगरेट फेंक दी ।

उनकी यह स्थिति देखकर औलिया एक छोटे बालक की तरह मुक्तता से हँसने लगा । फिर उसने अपनी सिगरेट ख़त्म की और श्रीमोटा को करीब बुलाकर अपने सामने सुखासन में बैठकर ध्यान करने की आज्ञा की ।

आज्ञानुसार सुखासन में बैठकर उन्होंने ध्यान करना शुरू किया ।

'क्या दिखता है ध्यान में ?'-औलिया ने पृच्छा की ।

'कुछ भी नहीं ।'-श्रीमोटा ।

'ठीक है, अब मैं तेरे सामने बैठकर ध्यान करता हूँ । क्या दिखता है वह देख ।'-इतना कहकर अब औलिया ने ध्यान लगाया ।

श्रीमोटा ने देखा-उसके शरीर में से तेजोकिरणों का प्रवाह अखंडितता से बाहर बह रहा था और चक्राकार गति से फिर से शरीर में ही विलीन हो रहा था । उन तेजोकिरणों का प्रवाह आह्लाददायक था, लेकिन उष्ण नहीं था ।

थोड़ी देर के बाद वह जागृत अवस्था में आ गया और उसने कहा, 'देख, अब तेरे शरीर में भी ऐसा ही होने के लिए क्रिया करता हूँ ।' ऐसा कहकर उसने श्रीमोटा को सुखासन में बिठाया और उनके नज़दीक जाकर हृदयस्थान पर अँगुली से आघात किया । फिर वह अँगुली उसी तरह शरीर को स्पर्श करती रखकर सीधी रेखा में ऊपर-ऊपर ले जाकर नासिका पर से आगे भ्रूमध्य के स्थान तक ले गया । उस आज्ञाचक्र के स्थान पर भी अँगुली से आघात कर के फिर अँगुली और आगे ऊपर ले जाकर अंत में ब्रह्मरंध्र के स्थान पर-माथे पर आघात किया ।

यह क्रिया पूर्ण होते ही श्रीमोटा के शरीर में मानो बिजली का संचार हुआ और तेजोकिरणों के प्रकाश की धाराएँ चक्राकार गति से उस औलिया की तरह ही शरीर में से बाहर आकर फिर से शरीर में जाने लगी । अत्यंत आह्लादक और दिव्य ऐसा वह अनुभव बहुत समय तक टिका रहा । बाद में उसके श्रीमोटा को स्पर्श करते ही यह सब बंद हुआ ।

यह क्रिया किस हेतु से की है इसका श्रीमोटा को बिलकुल बोध नहीं था । औलिया ने उसका स्पष्टीकरण तुरंत ही दिया । उसने बताया, 'तेरे शरीर के रोम-रोम में से ये तेजोकिरण प्रवाहित होने से तेरी शरीरशुद्धि हो गयी है ।'

फिर उसने उन्हें आज्ञा की, 'अब एक बार फिर ध्यान में बैठ और तू स्वयं ही यह क्रिया कर के उसका अनुभव कर ।

वे फिर से ध्यान में बैठे और जो औलिया ने किया था वैसी क्रिया उन्होंने स्वयं की । फिर से वही अनुभव आया । वैसी ही आह्लाददायक कोमल किरणें बहने लगीं । यह स्थिति भी काफ़ी समय तक टिकी रही । फिर औलिया का आदेश होते ही वे पूर्वस्थिति में आ गये ।

उन्होंने जिज्ञासा से औलिया को पूछा, 'फिर से यह क्रिया करने का कारण क्या था ?'

उसने समझाया, 'पहली बार क्रिया करने से तेरी 'शरीरशुद्धि' हुई । इस बार की क्रिया से तेरी 'इंद्रियशुद्धि' हो गयी है । अब तुझे किसी भी प्रकार की शुद्धि की आवश्यकता नहीं है । इसके बाद अंतिम जो क्रिया करनी है, वह तू रामनवमी के दिन जहाँ भी होगा वहीं करना ।' इतना कहकर उसने श्रीमोटा को उस अंतिम क्रिया के बारे में कुछ विशेष सूचनाएँ दीं ।

यह सब ख़त्म होने पर उसने कहा 'अब तू जा ।'

श्रीमोटा ने औलिया को भावपूर्वक प्रणाम किया और भोर होते-होते घर आ पहुँचे ।

उस वक्त 'कराची-डेली' नामक दैनिक प्रकाशित होता था। उसके संपादक जो शर्मासाहब थे, उनके घर श्रीमोटा दूसरे दिन गये थे । वहाँ उनके हाथ की अँगूठी पर नज़र पड़ते ही चौंककर उन्होंने पूछा, 'शर्मासाहब, अँगूठी पर यह छवि किसकी है ?'

'साँईबाबा की ।'-बाबा को प्रेम से निहारते हुए उन्होंने उत्तर दिया ।

श्रीमोटा अचंभित होकर बोले, 'क्या बात कर रहे हैं । मैंने कल रात ही इनका दर्शन किया ।' फिर उन्होंने रात की सारी घटना शर्माजी को विस्तारपूर्वक बतायी ।

शर्माजी ने सब सुनकर शंका उपस्थित की, 'लेकिन यह कैसे घट सकता है ? साँईबाबा ने १९१८ में शरीर त्याग दिया और आज उस घटना को बीस साल गुज़र गये हैं । वे अब कहाँ से होंगे ?' शर्माजी को यह सब असंभव लग रहा था ।

उन्होंने श्रीमोटा से पूछा, 'आपको उनका बड़ा स्वरूप देखना है ?'-उन्होंने अपने गले में पहना हुआ लॉकेट निकालकर अंदर जड़ी हुई बाबा की तस्वीर श्रीमोटा को दिखायी ।

यह देखने के बाद तो अब श्रीमोटा के मन में बिलकुल ही संदेह नहीं रहा । उन्होंने दृढ़ता से कहा, 'हाँ, मुझे इनका ही प्रत्यक्ष दर्शन हुआ ।'

श्रीमोटा बाद में घर लौटे ।

वे औलिया यानी शिरडी के साँईबाबा ही थे, इसमें शंका की कोई बात नहीं थी ।

इस दिन की घटना द्वारा साँईबाबा ने श्रीमोटा की साधना में प्रवेश किया ।

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

६९. 'परधर्मो भयावहः !'

बनारस में परसदभाई की दो पुत्रिओं के साथ ' बनारस हिंदु विश्व विद्यालय' के निवासस्थान में श्रीमोटा रहते थे, क्योंकि युनिवर्सिटी के नियमानुसार अकेली लड़कियाँ वहाँ रह नहीं सकती थीं, कोई पुरुषव्यक्ति वाली (रक्षक) के रूप में उनके साथ रहना ही चाहिए, ऐसा सख़्त नियम था ।

कराची में औलिया ने कृपा कर के शुद्धिकरण की दो क्रियाएँ अपने सामने करवा ली थीं और तीसरी क्रिया रामनवमी के दिन जहाँ हो, वहाँ करने की उसकी आज्ञा थी ।

आज रामनवमी थी । इसलिए कुरंगी और चित्रा दोनों बहुत अशांत थीं । तीसरी क्रिया करने के बाद श्रीमोटा को कुछ शारीरिक तक़लीफ़ न हो, कोई दुःख-कष्ट-पीड़ा न हो, ऐसा उनका पितृसदृश श्रीमोटा के बारे में भाव था । लेकिन रात तक श्रीमोटा ने वह क्रिया नहीं की, इसलिए कुछ भी घटा नहीं और फिर वे दोनों निश्चिंतता से सो गयीं ।

राते के करीब १२.५० हुए होंगे । अचानक बंगले के सामने से जोर से 'हरिःॐ' की आवाज़ सुनाई दी । श्रीमोटा तो जागृत ही थे । 'मेरे लिए ही यह पुकार है' यह उन्हें तुरंत ख़्याल में आ गया । उन्होंने भी 'हरिःॐ' कहकर उसका प्रत्युत्तर दिया और कौन व्यक्ति बुला रहा है, यह खिड़की से झाँककर देखा । बंगले के द्वार के पास एक नग्न साधु खड़ा था । उसके माथे पर गट्ठे-गट्ठे हो गये हुए और बहुत बढ़े हुए बाल थे, दाढ़ी-मूँछ भी बढ़ी हुई थी और उसने अपने शरीर पर भस्म धारण की हुई थी ।

अपनी अनुपस्थिति में चित्रा और कुरंगी शायद जग जाएँ तो उन्हें चिंता न हो इस विचार से उन्होंने उनके लिए एक चिट्ठी लिख कर रखी और वे नीचे चले आये ।

उन्हें देखकर साधु ने कहा, 'मेरे गुरु ने मुझे भेजा है, इसलिए मैं तुम्हें यहाँ बुलाने आया हूँ । गंगामैया के किनारे के उस पार मणिकर्णिका घाट के आगे हमारे गुरुमहाराज का स्थान है । उनका आपको बुलावा है । आप तुरंत ही मेरे साथ वहाँ चलो ।'

श्रीमोटा ने यह सब सुनकर उत्तर दिया, 'घर की दोनों लड़कियों का ख़्याल रखना यह मेरा प्राप्त परिस्थिति में प्राप्त कर्म और कर्तव्य है । उन्हें घर में अकेला छोड़कर मैं वहाँ आ नहीं सकता । वैसा

करना यह 'परधर्म' ही है और इसीलिए मुझे वहाँ आने से कितना भी लाभ होता हो, तो भी मैं अपना धर्म छोड़कर परधर्म का अवलंबन करना अनुचित समझता हूँ ।...'परधर्मो भयावहः ।'

'चाहे तो रोज़ रात में वहाँ आता रहूँगा और सुबह होते ही यहाँ आया करूँगा । अगर यह मंज़ूर हो, तो फिर मुझे कोई आपत्ति नहीं ।'

इसपर साधु ने नाराज़गी प्रदर्शित करते हुए चेतावनी दी, 'नहीं, वैसा नहीं चलेगा । आपको वहाँ ही रहना होगा । और एक बात सुन लो-कराची के बाबा ने बताया हुआ ध्यान आप नहीं करना । करोगे तो बड़ी विकट परिस्थिति खड़ी होगी । वह ध्यान करते समय पास में कोई कोमलता से और प्रेमभक्तिपूर्वक ख़्याल रखनेवाली माँ-बहन हो, तो ही आप वह ध्यान कर सकते हो या तो आप हमारे गुरु के यहाँ चले आओ । हम आपका ठीक से ख़्याल रखेंगे ।'

इस बात के लिए श्रीमोटा राज़ी नहीं हुए । उन्होंने अपनी धारणा फिर से स्पष्ट की-'इन दो लड़कियों का ख़्याल रखने की, सँभाल करने की मेरी ज़िम्मेदारी है और उसे मैं किसी भी हालत में त्याग नहीं सकता । मैं आपके यहाँ एक-दो महीने के बाद आऊँगा ।'

साधुने दृढ़ता से कहा, 'आना है तो अभी चलो ।'

श्रीमोटा इनकार कर के ऊपर चले आये और साधु भी अपने स्थान पर चला गया । कराची में बाबा ने गुप्त रीति से प्रदान की हुई विद्या के बारे में और उस प्रयोग के बारे में उस साधुमहाराज को यहाँ काशी में कैसे पता चला, यह विचार तक श्रीमोटा के मन को नहीं स्पर्शा और 'ध्यान के प्रयोग से कौनसी विकट परिस्थिति खड़ी होगी' ऐसा भय भी नहीं हुआ । अभयप्राप्ति जिसने की है, उसे भय कैसा ?

✤ ✤ ✤

॥ हरि:ॐ ॥

७०. अद्वैत का साक्षात्कार

गंगाकिनारे पर उस साधुमहाराज के स्थान में जाना अस्वीकार कर के श्रीमोटा शांति से अपने कमरे में ऊपर चले आये और कराची के औलिया का बताया हुआ प्रयोग करने के लिए ध्यान में बैठ गये ।

प्रयोग की शुरूआत हुई-न-हुई हो तो भी 'समग्र चेतन एकाग्र हो रहा है' ऐसा उन्होंने अनुभव किया । शरीर, मन और बाकी के सब 'करण' अलग-अलग हैं, यह भी उन्हें स्पष्टरूप से अनुभव में आया । कुछ समय के बाद मस्तक के मध्यभाग में बहुत गर्म झरना बह रहा हो ऐसा महसूस हुआ और सारा बदन मानो अंगार-अंगार होने लगा । वे करीब-करीब बेहोश ही हो गये । उनकी जिह्वा भी करीब-करीब जल गयी थी, पेट से नीचे का सारा शरीर भी मानो जल गया था और संपूर्ण शरीर अंगारों के जैसा तप्त हो गया था ।

घर में आराम से सोनेवाली दोनों लड़कियाँ इसके बारे में अनभिज्ञ थीं । भगवत्कृपा से, उसी समय एक को शौच जाने की इच्छा हुई और तब उसने श्रीमोटा को उस हालत में बेभान स्थिति में पड़े हुए देखा ।

बाद में दोनों ने अपने उस पितृसदृश फिर भी बालक जैसे निर्दोष और निष्पाप श्रीमोटा की सेवा की, माँ की तरह और बेटी की तरह सेवा की और उनका हर तरह का ख़्याल रखा ।

'यह सब जो हुआ, वह क्या हुआ ?...उसका अर्थ क्या ? महत्त्व क्या ?'-यह सब उस समय श्रीमोटा पूर्णत: जान न सके, फिर भी कोई शंका या प्रश्न भी खड़ा नहीं हुआ ।

उस ध्यान के बाद उनके अंतर में एक विशिष्ट भाव अखंडितता से प्रगट हुआ । गंगौघ की तरह यह भाव स्थिरता से और जीवंतता से टिका रहा । सिर्फ़ एक ही एक 'लक्ष्य'* था और 'उसी' का+ ध्यान था । सागर की लहरों की तरह भावना और आनंद का भाव रोम-रोम से अखंडरूप से प्रगट हो रहा था ।

रामनवमी के दिन हो रहे इस अद्वैत के साक्षात्कार के समय मानो अनंत कोटि सूर्यों का प्रकाश आसपास फैलकर, शरीर में प्रवेशकर श्रीमोटा महासमाधि में स्थिर हुए ।

इस महासमाधि से जागृत होने पर उनके शरीर का गुह्य अंग और आसपास का शरीर का भाग भी जल गया था । उसके लिए उन्होंने कई दिनों तक 'बनारस हिंदु युनिवर्सिटी' के 'आयुर्वेद कालिज' के डीन डॉ. बाळकृष्ण अमरजी पाठकसाहब से दवापानी करवाया था ।

'उन्हें दवाई दो' ऐसा आदेश एक स्वप्नानुभूति द्वारा श्रीमोटा के गुरुमहाराज ने अमरजी पाठकसाहब को दिया था ।

उस वक्त से ही श्रीमोटा की मुक्त दशा की शुरूआत हुई । 'मैं सर्वत्र विद्यमान हूँ'× ऐसी चैतन्यात्मक भावना का तब से विलास हो रहा था और होता रहा । =

इससे पहले जो अनुभव आया था, वह सगुण का था । उसके बाद मानो एकदम हनुमानजी की छलांग की तरह का—उनका इस तरह का निर्गुण का वह अनुभव, उनके स्वयं के 'आधार' में#

* ईश्वर ही लक्ष्य था ।
+ उस ईश्वर का
× "I am Omnipresent !"
= 'अहं ब्रह्मास्मि' का अनुभव स्थिर हुआ ।
खुद-स्वयं ही नींव

संपूर्णतः प्रतिष्ठित* हुआ । उसके बाद उसमें 'जीवंत केंद्रितता' प्रगट हुई । फिर उस भाव का विस्तार होने का अनुभव भी प्रगट हुआ, फिर भी वह भावरूप से था ऐसा भी कहा नहीं जा सकता है ।

एकरूपता का अनुभव हो रहा था और उसके अलावा 'सब में होते हुए भी सब से अलिप्त' ऐसा भी अनुभव सातत्य से आ रहा था ।

चैतन्य के तादात्म्य का गुणधर्म उसके बाद उनके जीवन में शुरू हुआ ऐसा कहा जा सकता है ।**

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

७१. गहनों की चोरी

श्री क्षेत्र बनारस । भगवान श्री शंकर जहाँ साक्षात् विराजमान हैं, ऐसा यह पुण्य क्षेत्र । चित्रा और कुरंगी के साथ श्रीमोटा श्रीकाशी विश्वनाथ भगवान के दर्शन करने निकल पड़े । आज भीड़ कुछ ज़्यादा ही थी, फिर भी धक्कामुक्की सहन कर के कैसे भी गर्भद्वार तक पहुँचकर उन्होंने मनःपूर्वक दर्शन किया और बाद में तृप्त मन से सब घर लौटे ।

दूसरे दिन नौकाविहार के लिए गंगातट पर जाना निश्चित हुआ और सब सो गये । सुबह होते ही रोज़ की तरह काम का चक्र घूमने लगा । गंगामैया की सैर करने जाना है, इस औत्सुक्य से आज सब के काम त्वरा-से और आनंदपूर्वक हो रहे थे । शाम हो गयी और सैर के लिए जाने की घड़ी करीब आयी । कुरंगी,

* स्थापित और स्थिर

** निर्गुण का अनुभव प्राप्त हुआ, स्थिर रहा और प्रगट होता रहा ।

चित्रा दोनों तैयार हो गयीं और उन्होंने श्रीमोटा को भी जल्दी तैयार होने की सूचना दी । उन्होंने अपने कपड़े बदली किये और पुराने कुरते की जेब में से अपनी वस्तुएँ निकालने के लिए जेब में हाथ डाला तो उन्हें मानो बिजली का झटका सा तो लग गया । किसी ने कुरते की जेब काटकर सब सामान ले लिया था । बाकी की वस्तुओं की चोरी तो हुई ही थी, साथ-साथ उन्होंने जेब में रखे हुए चित्रा और कुरंगी के गहने भी गये थे । काशी विश्वनाथ के मंदिर में दर्शन को जाते समय उन्होंने वे गहनें निकालकर श्रीमोटा को सम्हालने को सौंप दिये थे और ज़्यादा कुछ सोचे बिना उन्होंने वे अपने कुर्ते की जेब में रखे थे । निश्चित ही जेब मंदिर में ही कटी गयी थी ।

'जिन लड़कियों का मैं वली हूँ, जिन्होंने पूरे विश्वास के साथ ये गहनें मुझे सम्हालने को दिये थे, वे मेरी ग़लती के कारण और मेरी बेपरवाही से चोरी हो गये ।'—इस विचार से मानो हजारों बिच्छू काट रहे हों वैसी पीड़ा श्रीमोटा के मन को हुई और उनका चेहरा उतर गया ।

उन्होंने जो कुछ घटा था, वह चित्रा-कुरंगी को बता दिया । लेकिन दोनों ने उसे ज़्यादा महत्त्व नहीं दिया, बल्कि वे कहने लगीं, 'बापू ! गहने गये तो जाने दो न ! उसमें इतना दुःख करने की क्या आवश्यकता है ? जो होनेवाला ही है वह हुए बिना नहीं रहता है । आप उसे भूल जाना और खुद को दोषी न मानना । जो हुआ सो हुआ । अब चलो भी । हमें सैर करने गंगातट पर जाना है न ?' दोनों ने श्रीमोटा को सांत्वना देकर उनका मन शांत करने का प्रयत्न किया ।

कुछ अनिच्छा से ही श्रीमोटा उनके साथ नौकाविहार को निकल पड़े । चित्रा और कुरंगी की सहेली भी खास नौकाविहार के लिए आयी थी । गंगाकिनारे पर सब एक नौका पर सवार हुए। गंगामैया के विशाल पात्र में नौका ने प्रवेश किया । हँसी-मज़ाक कर के श्रीमोटा को उल्हासित करने का चित्रा और कुरंगी का प्रयास चालू ही था ।

अचानक ही उनकी सहेली ने श्रीमोटा से पूछा, 'बापू, मैं भजन गाऊँ ?'-भजन गाने से शायद उनके दुःखी मन को तसल्ली होगी ऐसा उसे लगा था और इसीलिए उसने यह पूछा था ।

'हाँ बेटी ! ज़रूर गाओ ।'-उदास मनोभाव में बैठे हुए श्रीमोटा ने अनुमति दी ।

भजन शुरू हुआ और उसकी स्वरलहरें गंगामैया के शांत-शीतल जल पर फैलने लगीं । आकाश में तारे झिलमिला रहे थे और हवा की ठंडी-ठंडी लहरें बदन को स्पर्श कर रही थीं । वातावरण में गंभीरता छायी हुई थी । भजन के भावपूर्ण स्वरों से धीरे-धीरे श्रीमोटा को भावावेश प्राप्त होने लगा और वे कुछ समय में ही भावसमाधि में लीन हो गये । उनका शरीर अकंप और स्थिर हो गया । उनकी यह अवस्था चित्रा और कुरंगी को नयी न थी। भावसमाधि में वे गिर न जाएँ इस पर दोनों ध्यान रखने लगी थीं।

भावावस्था में प्रवेश करने के एक क्षण पहले श्रीमोटा के मन में गहनों के ही विचार थे । 'किसने काटी होगी मेरी जेब ?' यह प्रश्न उन्हें काँटे की तरह चुभ रहा था । इन विचारों के कारण ही शायद, उन्हें भावावस्था में एक दृश्य दिखायी दिया । 'मंदिर में प्रवेश करते समय किस ने और किस तरह जेब काटी, यह चलचित्र की तरह उनकी आँखों के सामने साकार हुआ । इतने

गहन भावावस्था में भी उनसे हृदय में बोला गया, 'भाईसाहब, ये गहनें मेरे नहीं हैं, मुझे किसी ने सम्हालकर रखने को दिये थे । मैं गरीब आदमी हूँ और इन गहनों की रकम चुकाना मुझे संभव नहीं है। यह धन तुम पचा न सकोगे । ये गहनें तुम मुझे लौटा देना । मेरे रहने का स्थान ऐसा-ऐसा है, कल सुबह परीक्षा के समय आधा-पौना घंटा मैं युनिवर्सिटी में इस-इस समय पर और इस-इस स्थान में रहूँगा ।'

यह सब बोलना-कहना ध्यानावस्था में ही हुआ । मानो प्रत्यक्ष सामने ही हो रहा हो, इतनी स्पष्टता से उन्हें इसका अनुभव हुआ।

सैर पूरी कर के नौका किनारे पर आने के बाद उन्हें होश में लाने के लिए चित्रा-कुरंगी को बहुत प्रयास करना पड़ा । फिर सब घर लौटे ।

दूसरे दिन कुरंगी की युनिवर्सिटी में परीक्षा थी । उसके साथ श्रीमोटा भी गये । उसका पेपर शुरू हुआ और वे उसकी एक सहेली के साथ छज्जे में खड़े रहकर बातचीत करने लगे ।

इतने में एक आदमी ने हाँफते-हाँफते और दौड़ते-दौड़ते युनिवर्सिटी में प्रवेश किया और वे दोनों जहाँ बातचीत कर रहे थे, उस छज्जे के नीचे खड़ा होकर वह श्रीमोटा को नीचे बुलाने लगा । श्रीमोटा का उधर ध्यान ही नहीं था । कुरंगी की सहेली ने उन्हें वह आदमी दिखाया ।

वह आदमी चिल्लाकर कह रहा था, 'भाईसाहब, कृपा कर के नीचे आओ ।'

उस अनजान व्यक्ति से मिलने श्रीमोटा नीचे गये ।

नीचे जाते ही उस आदमी ने उनके पाँव पकड़ लिये और गिड़गिड़ाकर उनसे प्रार्थना करने लगा, 'भाईसाहब, ये आपके गहनें

ले लो । मेरे सारे शरीर में इतनी जलन हो रही है कि मैं उसे सह नहीं पा रहा हूँ । कृपा कर के मेरे बदन की दाह मिटे ऐसा कुछ करो ।'

उस आदमी ने गहनों की पोटली श्रीमोटा के हाथ में दे दी। गहनें देखकर वे एकदम अवाक् हो गये । भगवान ने मेरी प्रार्थना सुन ली, यह देखकर उनका हृदय प्रेमभक्ति से भर आया । उनके सिर का बोझ उतर गया और तन-मन बादल जैसा हलका-हलका हो गया था ।

श्रीमोटा ने उससे पूछा, 'लेकिन ये तो बता कि तू कैसे जान पाया कि इन गहनों का मालिक मैं ही हूँ ?'

रोते-रोते ही उसने जवाब दिया, 'कल शाम से मेरे बदन में इतना दाह हो रहा है कि मैं उसे सह नहीं पा रहा हूँ । कल शाम से ही मुझे आपकी शरीराकृति, आपका चेहरा प्रत्यक्ष सामने दिखायी देने लगा और आपके रहने का स्थान, वैसे ही आप कहाँ होंगे वह जगह भी मुझे दिखायी देने लगी ।'

'रात को आ सकूँ इतनी शक्ति मुझ में नहीं थी । आज भी मैं बड़ी मुश्किल से यहाँ तक आ सका हूँ । घर से जब मैं निकला, तब चल सकूँगा भी क्या, इसकी मुझे शंका थी, लेकिन चलना शुरू करते ही इतनी गति अपनेआप प्राप्त हो गयी कि दौड़ते-दौड़ते मैं यहाँ आ गया हूँ । अब कृपा कर के मेरा दाह मिटे ऐसा कुछ करो, मुझे शांत करो ।'

श्रीमोटा के मुख से अनायास ही शब्द निकल पड़े, 'भाई, तू व्रत ले ले कि विश्वनाथ के मंदिर में दर्शनहेतु आनेवाले किसी की भी जेब तू नहीं काटेगा । अगर तू प्रामाणिकता से ऐसा वचन देगा और उसका प्रामाणिकता से पालन करेगा, तो प्रभुकृपा से तेरा

दाह जरूर मिट जाएगा । मेरे जैसा कोई गरीब दर्शन को आया हो और अगर तूने उसकी जेब काटी तो उस बेचारे को कितना मनस्ताप और कष्ट सहना पड़ेगा । इसलिए कृपा कर के तू वैसी शपथ ले ।'

वह आदमी इसके लिए राज़ी हो गया और वैसा व्रत उसने श्रीमोटा के सामने ही लिया । उतना ही नहीं, उसने यह भी कहा, 'मैं शायद भूख-प्यास से मर भी जाऊँगा, लेकिन फिर से इस मंदिर में कभी भी, किसी की भी जेब नहीं काटूँगा ।'

उसके वचनपर श्रीमोटा को विश्वास हुआ और उसकी प्रामाणिकता भी उन्होंने महसूस की ।

उन्हें प्रणाम कर के फिर वह आदमी शांति से घर गया । उसका दाह मिट गया था ।

अपनी जवाबदारी निभाने का कर्तव्यपूर्ति का आनंद गहनें प्राप्त होने के आनंद से कई गुना ज़्यादा था, अवर्णनीय था ।

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

७२. 'पैदाईश के दिन कराची जाना !'

कराची से कुछ दिनों के लिए श्रीमोटा पू. गांधीजी के साबरमती आश्रम में आये थे । १९४० का साल । देखते-देखते करीब ढाई महीने गुज़र गये ।

एक दिन परसदभाई का ख़त आया । उन्होंने आग्रहपूर्वक लिखा था, 'आपके जन्मदिन पर आप कराची आना । वह शुभदिन हम यहीं मनाएँगे ।'

सब का प्रेम था, ममता थी, खिंचाव था, फिर भी जाने का दिल हुआ तो भी जाना मुमकिन नहीं था । और उसके दो कारण

थे । पैसे की तंगी यह एक, और दिन भी इतने कम रह गये थे कि ट्रेन से जाकर जन्मदिन तक पहुँच पाना असंभव था, यह दूसरा कारण था । इस तरह वहाँ जाने की बात वहीं ख़त्म हो गई ।

इतना होने पर भी इस बात को एक अकल्पित मोड़ प्राप्त हुआ। एक रात श्रीमोटा को सपना आया। एक औलिया ने दर्शन देकर उन्हें सपने में आज्ञा की, 'तू कराची आना और वह भी हवाई जहाज़ से ही, और अपने जन्मदिन पर ही आना ।'

इस तरह आदेश देनेवाला यह औलिया कौन है, यह श्रीमोटा जान नहीं पाये । उन्होंने सपने में ही उससे पूछा, 'पैसे कहाँ हैं मेरे पास, वहाँ कराची आने को ?'

इसपर उसने जवाब दिया, 'पैसे भेजेंगे ।'

तुरंत ही श्रीमोटा की नींद उड़ गयी और वे जागकर सोचने लगे, 'कौन हो सकता है यह औलिया ?' बहुत सोचकर भी वे किसी निष्कर्ष तक पहुँच न सके। लेकिन उस दिन एक चमत्कारी घटना हुई । पोस्टमैन ने उसी दिन उनके नाम से आया हुआ एक रजिस्टर्ड पैकिट उन्हें सुपूर्द किया ।

अचंभित होकर और उत्कंठापूर्वक उन्होंने वह खोलकर देखा। अंदर साठ रुपयों के नोट थे और एक काग़ज़ था, जिसमें उर्दू में कुछ लिखा हुआ था । वे तो उर्दू जानते नहीं थे, इसलिए आश्रम के कुरेशी साहब से उन्होंने वह चिट्ठी पढ़वाई ।

चिट्ठी में लिखा था, 'कराची के साँई के हुक्म से भेजे गये हैं। पैदाईश के दिन तुम कराची हवाई जहाज़ से चले जाना ऐसा हुक्म है ।

श्रीमोटा ने वह रजिस्टर्ड पैकिट गौर से देखा। भेजनेवाले ने नाम लिखा नहीं था और न ही दस्तखत किये थे । वह पैकिट

किस ने और कब भेजा है, इसकी उन्होंने डाकघर में जाँच-पड़ताल करवायी तब मालूम हुआ कि एक दिन पहले अहमदाबाद के डिस्ट्रिक्ट कोर्ट के पोस्ट ऑफिस से वह भेजा गया था । इसके अलावा और कुछ भी जानकारी प्राप्त नहीं हुई । इस घटना के पीछे कोई गूढ़ता का वलय था यह तो स्पष्ट ही था । पैसे प्राप्त होने के बाद अब टिकट की व्यवस्था करनी थी । उन दिनों में एक चार सीट का छोटा-सा हवाई जहाज़ कराची जाता था, लेकिन ऐन वक्त पर उसका टिकट मिलना करीब-करीब नामुमकिन ही था।'

शुरू में वैसा ही लगा सही, फिर भी बाद में दो-तीन बार पूछताछ करने पर आखिर टिकट प्राप्त हुआ और आज्ञानुसार कराची की हवाई जहाज़ से जाने का समय-हवाई सफ़र का पहला ही मौका करीब आ गया ।

हवाईअड्डे पर उन्हें बिदाई देने के लिए आश्रम के बहुत से स्नेही-साथी आये थे । हवाई जहाज़ में वे बैठे-न-बैठे तो उसी क्षण उन्हें अद्‌भुत और अवर्णनीय ऐसा ध्यान लगा । कराची आने तक का सारा समय उस ध्यानावस्था में ही बीत गया । 'एक अति उच्च कक्षा का' ऐसा वह ध्यान था । ध्यानावस्था इतनी गहन थी कि मुकाम आया तो भी उनके शरीर का होश लौटा नहीं था । उनकी ऐसी विचित्र स्थिति देखकर पास के लोगों को बहुत चिंता हुई, उन्हें लगा कि वे कुछ बीमारी के शिकार होकर बेहोश हो गये हैं। उन्होंने श्रीमोटा को बहुत हिलाया और पंखे से हवा की । बहुत कुछ करने के बाद बड़ी मुश्किल से वे होश में आये ।

जब श्रीमोटा परसदभाई के घर पहुँचे, तब उनके अकल्पित आगमन से घर के सभी लोगों को कल्पनातीत आनंद हुआ और

फिर सभी ने मिलकर उनका जन्मदिन घर में ही बड़ी धूमधाम से और आनंदपूर्वक मनाया ।

कराची जाने का आदेश देकर पैसे का प्रबंध करनेवाला औलिया याने साँईबाबा ही थे यह श्रीमोटा बाद में जान पाये ।

✤ ✤ ✤

॥ हरि:ॐ ॥

७३. 'वचनपूर्ति !'

परसदभाई की दोनों लड़कियाँ-चित्रा और कुरंगी बनारस में स्थिर बनकर आपनी पढ़ाई ठीक से कर रही थीं । उन्हें श्रीमोटा का पितृसद्दश आधार था, और उनकी ममता और प्रेमछत्र के नीचे वे निश्चिंतता से कालिज की पढ़ाई कर रही थीं ।

उन दोनों का ख़्याल रखना और साधना करना ये दोनों बातें श्रीमोटा सहजता से निभा रहे थे । बनारस आए उन्हें महीना-डेढ़ महीना हो गया होगा ।

इतने में एक दिन मूळजीभाई का नडियाद से ख़त आया । उसने अपने बड़े भाई को संबोधित करते हुए लिखा था, 'भाई, नडियाद में माँ बीमार है । बहुत गंभीर स्थिति है । वह अंतिम घड़ियाँ गिन रही है और तेरी याद में आँसू बहा रही है । 'चुनिया को बुला लो, चुनिया को बुला लो' बस यही रटन कर रही है। तू यह ख़त मिलते ही चले आना । अपनी आँखों से माँ तुझे देखेगी तो ही उसे संतोष होगा ।'

ख़त पढ़कर उनका सिर भारी हो गया और मन में उदासीनता छा गयी । इसी वक्त उड़कर वहाँ जाऊँ, उसकी गोद में सो जाऊँ और जी भरकर रो लूँ ऐसा भाव उनके मन में प्रगट हो गया ।

'लेकिन चित्रा और कुरंगी का क्या करना ? उन दोनों का यहाँ मेरे अलावा कोई और नहीं है ।'—उनकी जवाबदारी के बारे में सोचकर उन्होंने तार द्वारा परसदभाई को अपनी माँ की गंभीर बीमारी के बारे में बताया और पूछा, 'ऐसी हालत में मैं क्या करूँ ?'

उन्हें आशा थी कि कुछ रास्ता निकल आएगा और नडियाद जाना संभव होगा, लेकिन नियति की इच्छा कुछ और ही थी ।

तार से ही परसदभाई का जवाब आया, 'दोनों का ख़्याल रखने को तुझे वहाँ ही रुकना पड़ेगा । अगर उनका कुछ इन्तज़ाम किया जा सके, तो ही नडियाद जाना ।' यह पढ़कर वे निराश हो गये । 'ऐसी जवान लड़कियों को किसके भरोसे पर छोड़कर मैं नडियाद जाऊँ ? नहीं । मेरी जवाबदारी और कर्तव्य मैं छोड़ नहीं सकता । मुझे यहीं रहना होगा ।'—उनके मन ने उन्हें बताया । उसी क्षण उनके दूसरे मन ने उन्हें फटकारते हुए पूछा, 'क्यों रे ! तूने तो माँ को वचन दिया था कि उससे मिलने जरूर जाएगा । आज अगर तू गया नहीं, तो तेरे वचन की क्या क़ीमत ? माँ बेचारी तेरी राह देख-देखकर प्राण त्याग कर देगी ।'

वे मानो कैंची में फँस गये थे । नियति ने एक कूटप्रश्न उन्हें सुलझाने को दिया था, जिसका कोई जवाब नहीं था, फिर भी उन्हें वह सुलझाना था ।

नडियाद और बनारस इन दोनों स्थानों में उनका मन झूलने लगा ।

अपने मन की द्विधा स्थिति का वर्णन करनेवाला ख़त उन्होंने मूळजीभाई को भेजा और अपनी असहायता प्रगट की । उन्होंने लिखा, 'मेरी दयनीय स्थिति की तू कल्पना कर सकता है । चाहते हुए भी मेरा वहाँ आना संभव नहीं है । अब तू और प्रसन्न ही

माँ का ख़्याल रखना ।'

प्रसन्न का-अपनी भाभी की सेवाभाव वे अच्छी तरह से जानते थे । माँ की सेवा में वह किसी बात की त्रुटि नहीं रखेगी इसका उन्हें पक्का विश्वास था ।

ख़त लिखकर भेजा, फिर भी उनके मन में विचारों का तूफ़ान चल ही रहा था ।-माँ बीमार होनेवाली है, यह मैं अगर पहले ही जानता, तो बनारस कभी नहीं आता । लेकिन मैं भी क्या करूँ? उस बेचारी ने ज़िंदगी में मुझ से एक ही माँग की और वह भी मैं पूरी नहीं कर पा रहा हूँ । उस बेचारी को मैं कुछ भी न दे सका, लेकिन अब उसकी यह अंतिम इच्छा तो पूरी होनी ही चाहिए ।' परिस्थिति में से कुछ-न-कुछ हल प्राप्त करने का उन्होंने दृढ़ निश्चय किया । अब प्रार्थना के अलावा हाथ में कुछ भी नहीं रहा था । उनकी प्रार्थना पर, अपने आप पर, श्रीसद्‌गुरु पर और भगवान पर अपार और दृढ़ श्रद्धा थी ।

उन्होंने अपने आपको एक कमरे में बंद किया और फिर आर्त और आर्द्र भाव से स्वयं प्रार्थना बनकर, उनका भाव शब्दरूप लेकर प्रगट होने लगा, भगवान के हृदय को द्रवित करने लगा । 'हे भगवान ! हे दीनानाथ । मैंने कभी भी तुझ पर अधिकार का दावा किया नहीं और आज तक कुछ माँगा भी नहीं, लेकिन आज ऐसी त्रिशंकु अवस्था में मेरा तेरे सिवा और कोई बेली नहीं है ।

'हे प्रभु, मेरा हृदय और मेरा मन तो माँ के पास ही है, यह तू भी जानता है, लेकिन मेरा यह स्थूल शरीर मैं वहाँ कैसे ले जाऊँ ? मेरा वचन मैं कैसे निभाऊँ ? हे करुणानिधान, अब तू ही मेरी लाज रखना और मेरा वचन पूर्ण करने के लिए तू ही स्थूल देह से उसके पास उपस्थित रहना । हे करुणासिंधो, मेरी

प्रचंड और प्राणांतिक भावना को अब तू ही मूर्त स्वरूप देना । साकार बनकर मेरी माँ को धीरज देना, शांत करना । मेरी माँ की अंतिम इच्छा पूर्ण करना, प्रभो !'

प्रार्थना की धारा गंगौघ की तरह अखंडितता से बह रही थी । खाना-पीना और निद्रा यह सब भूलकर तीन दिन तक प्रतिक्षण प्रार्थना का अभिषेक प्रभुचरणों में अखंड रूप से चल रहा था । वे सब कुछ भूल गये थे और प्रार्थना के अलावा और कुछ भी जानते नहीं थे ।

उनकी आर्त, प्राणांतिक प्रार्थना उस करुणानिधान प्रभु ने सुन ली । अंतिम घड़ियाँ गिननेवाली उनकी माँ ने नडियाद में आनंदित होकर मूळजीभाई से कहा, 'ए । मूळिया ! मूळिया ! देख यह चुनिया आया है ।'

मूळजीभाई उदास होकर माँ की ओर देखते हुए बोले, 'अरी माँ, चुनीलाल तो वहाँ काशी में है, यहाँ कैसे आ सकता है वह?

माँ ने दृढ़ता से फिर से कहा, 'अरे देख, यहाँ ही है । मेरे पैरों पर मस्तक रखकर बैठा हुआ है । मेरे शरीर पर हाथ फेर रहा है । देख । यहीं है ।'

मूळजीभाई को लगा कि माँ को अंतिम क्षणों में भ्रम हो गया है और उसे आभास होकर वह असंबद्ध बड़बड़ा रही है । उसका कंठ अवरुद्ध हुआ और आँखों में आँसू भर आये । शून्य दृष्टि से वह माँ की आँखों में देखता रहा ।

आखिर सूखा हुआ पत्ता डाली पर से गिर पड़ा, एक फूल कुम्हला गया । माँ ने उस अवस्था में ही शरीर छोड़ दिया । वहाँ बनारस में प्रार्थना करनेवाले श्रीमोटा के कमरे की बिजली उसी क्षण चली गयी और उन्हें अपने अंतर में, हृदय में महसूस हुआ,

'माँ चली गयी । प्राणपखेरू पिंजरा छोड़कर मुक्त हो गया । आकाश में उड़ गया । उनकी आँखों से आँसुओं की अनवरत धाराएँ बहने लगी ।'

'मुझ पर ममता बरसाकर गोद में लेकर सोनेवाली, प्रेम से डाँट-फटकार करनेवाली, मेरे लिए जी-जान से मेहनत करनेवाली, दुःख-कष्ट-पीड़ा झेलनेवाली माँ चली गयी । अब मैं अनाथ हो गया ।'-श्रीमोटा के अंतर में एक कोना मानो मर गया ।

बाद में मूळजीभाई का तार भी उन्हें मिला और फिर विस्तारपूर्वक लिखा हुआ ख़त भी प्राप्त हुआ । अंतिम क्षणों में माँ जो बड़बड़ा रही थी, वह सब उसने ख़त में लिखा था ।*

प्रार्थना को मूर्त रूप देकर माँ के सामने अपने आकार में प्रगट होकर वचनपूर्ति करनेवाले प्रभु को अर्पण करने के लिए उनके पास आँसुओं के सिवा कुछ भी न था ।

वचनपूर्ति के आनंद की और माँ के वियोग के दुःख की आँसुओं की पावन धाराओं की वर्षा होती रही, होती ही रही।

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

७४. माँ का पुनर्जन्म

श्रीमोटा को एक बार गुरुमहाराज ने बताया, 'अगर किसी 'जीव' में किसी साधुमहात्मा के प्रति राग*, मोह, भक्ति है तो वैसे 'जीव' को, वैसे ही किसी महात्मा में किसी 'जीव' के प्रति भाव है तो वैसे 'जीव' को कल्याणकारी पुनर्जन्म तत्काल प्राप्त होता है।'

* हरिःॐ आश्रम में यह ख़त जतन से रखा है ।

* राग = अनुराग, भाव, प्रेम

उनका यह वचन कसौटी के पत्थर पर घिसकर देखने का, उसे अपने खुद के जीवन में ही अनुभव करने का भाव श्रीमोटा के अंतर में निर्माण हुआ । जो मन में आये वह तत्काल आचरण में लाने का उनका स्वभाव था । केवल किसी ने कहा है इसलिए या शास्त्र में लिखा है, इसलिए वे उस पर विश्वास नहीं रख सकते थे ।

माँ का शरीर छूटने को ज़्यादा समय नहीं बीता था । अपनी माँ कहाँ होगी इसकी खोज करने का उन्होंने निश्चय किया और वे ध्यान में बैठ गये । यह जानने के लिए उन्हें 'संयम' की प्रक्रिया साधने की आवश्यकता थी ।

'संयम' इस शब्द का जो प्रचलित अर्थ है, वह यह संयम नहीं है, बल्कि ध्यान में संपूर्णतः एकाकार होकर शरीर का होश खो जाने का जो क्षण, उस क्षण में जो संकल्प किया जाता है, वह साकार बनता है—उसीको 'संयम' कहा गया है । इतनी 'चैतन्यपूर्ण जागृति' रखना यह साधारण साधक का काम नहीं है और उसे संभव भी नहीं है । माँ की मृत्यु के बाद की गति जानने के अलावा श्रीमोटा इस संयम से अपनी साधना की अवस्था की भी परीक्षा कर पानेवाले थे ।

ध्यान में बैठने के बाद समाधि में प्रवेश करने के क्षण में उन्होंने संकल्प धारण किया । 'माँ अब कहाँ होगी ?' यह प्रश्न उन्होंने रखा । उसी क्षण उन्हें काशी शहर के रास्ते, गलियाँ, घर आदि सब किसी चलचित्र की तरह दिखायी देने लगा । अंत में उनकी दृष्टि एक गली में एक विशिष्ट घर में स्थिर हुई । 'इस घर में जिस 'जीव' ने जन्म लिया होगा, वही मेरी माँ है', यह वे जान

* संयम = धारणा + ध्यान + समाधि
(पतंजलियोगसूत्र अनुसार)

गये । एक बालिका के रूप में उसने वहाँ जन्म लिया है, इसका उनके अंतर में स्फुरण हुआ ।...फिर धीरे-धीरे यह सब अदृश्य होकर वे अपने होश में लौटे ।

दूसरे दिन सुबह वे अपनी माँ की खोज करने बाहर निकल पड़े । **वे उस समय काशी में थे और माँ ने भी काशी में ही जन्म लिया था, यह एक अजीब इत्तफ़ाक़ था ।**

माँ के दर्शन की प्रबल इच्छा से वे काशी के रास्तों पर त्वरा-से चलने लगे । ध्यान में दिखायी दी हुई गली उन्होंने खोज ली और फिर वह घर भी नज़र आया ।

'यहाँ तक पहुँचा तो सही, लेकिन अंदर कैसे जाऊँ ? किसे और कैसे पूछूँ ? वे लोग तो मुझे बिलकुल पहचानते नहीं हैं, फिर कैसे प्रवेश करने देंगे वे अपने घर में ?'-उनके सामने उलझन खड़ी हो गई ।

ऐसी दुविधा के और मुश्किल के समय प्रार्थना और श्रीसद्‌गुरुस्मरण ही रास्ता दिखाते हैं और कुछ प्रेरणा देकर करवा लेते हैं, यह उनका पूर्वानुभव था । फिर वे घर की बगल में एक चबूतरे पर बैठ गये और भावपूर्ण भजन गाकर श्रीसद्‌गुरु को रिझाने लगे, प्रार्थना करने लगे । उनके भाववाही और हृदयस्पर्शी भजन से द्रवित होकर उस घर की एक प्रौढ़ा बाहर आयी और 'कौन अनामिक वह भजन गा रहा है', वह देखने लगी । चबूतरे पर बैठकर आर्तता से भजन गानेवाले श्रीमोटा को उसने सहानुभूतिपूर्वक पूछा, 'भाईसाहब, आप इधर क्यों बैठे हो ? और यह भजन क्यों गा रहे हो ? क्या बात है ?'

जो कुछ घटा था, वह विस्तारपूर्वक लेकिन ढंग से बताना ज़रूरी था । उस प्रौढ़ा की ओर देखकर मुसकराते हुए श्रीमोटा ने

बताया कि, 'माई, कल रात मुझे स्वप्न आया कि आपके घर में एक बालिका ने जन्म लिया है । वह 'जीव' मेरी ज़िंदगी के साथ जुड़ा हुआ 'जीव' है । उस बालिका का दर्शन करने की आस लेकर ही मैं यहाँ आया हूँ । उस परम प्रभु की आज्ञा होने के कारण ही मैं यहाँ उपस्थित होकर भजन गा रहा हूँ । आप मुझे उस बालिका का दर्शन करने की अनुमति दें । दर्शन लेकर मैं चला जाऊँगा ।'

सचमुच ही उस घर में एक सुकोमल और सुंदर बालिका का जन्म हुआ था, इसलिए श्रीमोटा के शब्दों पर उस प्रौढ़ा का तुरंत ही विश्वास हो गया ।

'भाईसाहब, आपकी बात सच है । मैं दिखाती हूँ वह प्यारी गुड़िया आपको । अंदर आईये ।' उसने आदरपूर्वक श्रीमोटा को अंदर बुलाया । इस अनजान मेहमान के प्रति उसके मन में आदर, प्रेम और भाव उत्पन्न हो गया था ।

उसने श्रीमोटा को अपने घर में ले जाकर उन्हें सम्मानपूर्वक बिठाया और अंदर के कमरे से उस बालिका को लाकर उनकी गोद में रखा ।

'यह बालिका अपनी पूर्वजन्म की माँ है' इस भाव से श्रीमोटा का हृदय भर आया । उसके चरणों को स्पर्श कर के भावपूर्वक प्रणाम कर के उसका रूप उन्होंने अपनी आँखों में भर लिया और उसे उस प्रौढ़ा को सौंपकर, उसे धन्यवाद देते हुए वे घर लौट आये ।

श्रीसद्‌गुरु के वचन की यथार्थता का प्रमाण उन्हें मिल गया था। 'माँ के दर्शन हुए और चरणस्पर्श कर के वंदन भी कर सका' ऐसा दुगुना आनंद उन्हें प्राप्त हुआ था ।

उनका माँ के प्रति का भाव और माँ का भी उनके प्रति का भाव सच्चा था, दृढ़ था । वह प्रेम अपार्थिव और अशरीरी था । यह कसौटी के पत्थर पर घिसकर सिद्ध हुआ था ।

सोना शत प्रतिशत शुद्ध था ।

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

७५. शिरडी में...

एक बार परसदभाई ने श्रीमोटा को बहुत आग्रह किया, 'चुनीलाल, तू मुझे शिरडी में बाबा के पास मौन दे । तुझे मेरे साथ वहाँ जाना ही होगा ।

उनके ये बोल सुनकर तुरंत ही श्रीमोटा को बाबा के शब्द याद आ गये । बाबा ने एक बार कराची में उनसे कहा था, 'तू मेरे स्थान में आना ।' 'मुझे शिरडी ले जाने के लिए ही बाबा का यह आयोजन है और परसदभाई को मौन लेने की प्रेरणा देनेवाली शक्ति भी बाबा की ही है' यह श्रीमोटा अपने अंदर में जान पाये।

शिरडी पहुँचने पर दोनों को रहने के लिए समाधिमंदिर के सामने पहली मंज़िल पर का कमरा दिया गया । उन दिनों शिरडी में बाबा के दर्शन करने आनेवाले लोगों की ज़्यादा भीड़ रहती नहीं थी, इसलिए कमरा प्राप्त होने में कोई कठिनाई नहीं हुई ।

वहाँ श्रीमोटा ने परसदभाई को अट्ठाईस दिनों का मौन दिया।

एक बार वे दोनों बाबा के समाधिमंदिर में बैठे हुए थे । कुछ समय के बाद आरती शुरू हुई । आरती शुरू होते ही श्रीमोटा को समाधि लग गयी और वे वैसे ही बैठे रहे । उस स्थिति में उन्हें साँईबाबा का दर्शन हुए । बाबा ने उन्हें हाथ उठाकर आशीर्वाद दिया । फिर बाबा चलते-चलते उनके पास

आये और उनके मुँह पर एक जोरदार तमाचा लगाकर बोले, 'क्यों, आरती के समय सब लोग खड़े हैं और तू क्यों बैठा है ? खड़ा हो जा ।'

उन्होंने तुरंत माफ़ी माँगी और वे खड़े हो गये ।

अपने शिरडी के निवास दरमियान श्रीमोटा शिरडी गाँव में और आसपास घूमते रहते । उस वक्त समाधिमंदिर की पिछली ओर 'अब्दुलबाबा' नामक साँईबाबा के एक भक्त रहते थे । वे बड़ी ऊँची अवस्था के अधिकारी संतपुरुष थे । श्रीमोटा की ओर अँगुलीनिर्देश करते हुए अब्दुलबाबा सभी को बताने लगे, 'यह हमारा रिश्तेदार है, हमारी जाति का है ।'... उनको आपस में बाँधनेवाली डोर थी केवल साँईबाबा । इसीलिए वे रिश्तेदार थे, एक कुटुंब के और एक जाति के थे । प्रेमपाश से जुड़े हुए वे देहातीत दिव्यात्मा थे ।

साँईबाबा ने श्रीमोटा को एक बार प्रत्यक्ष दर्शन देकर एक रुपया भेंट दिया था । उन्होंने वह अपनी माँ को दिया और पूजा में रखने को कहा । दुर्भाग्य से बाद में उससे वह खो गया ।

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

७६. मूक सत्याग्रह

१९४२ की आज़ादी की जंग शुरू हुई और ब्रिटिश सरकार ने बड़े पैमाने पर सत्याग्रहियों को पकड़कर जेल में डालना शुरू किया । मानो सारा भारतदेश ही एक बड़ी जेल बन गया । 'हरिजन सेवा संघ' के भी कई कार्यकर्ता सलाखों के पीछे थे । परिणामतः फंड के अभाव से हरिजन बालकों के गुजरात और बंबई (अब मुम्बाई) के आश्रम बंद हो जाएँगे ऐसी विकट स्थिति खड़ी हुई।

श्रीमोटा को उस वक्त उनके अंतर में-हृदय में श्रीसद्‌गुरु की आज्ञा हुई-'तू अपने सेवाभार से मुक्त हो गया है तो भी ऐसे कठिन समय में गुजरात और मुंबई की शाखाओं की तंगी दूर करना यह तेरा धर्म है ।'

आज्ञा प्राप्त होते ही वे ट्रिची से बंबई आ पहुँचे । वहाँ उन्होंने अपना मुकाम हेमंतभाई नीलकंठ (अपने साधक-सहकारी मित्र) की बहन के घर में रखा ।

रोज़ सुबह में खाना खाकर जल्दी निकल पड़ने का उनका रिवाज था । दिनभर यहाँ-वहाँ जाकर चंदानिधि जमा कर के शाम को वे घर लौटते थे । इसी तरह, एक बार एक मंडल की सभा में जाना हुआ । सभा ख़त्म होने पर अपना उद्देश्य उन्होंने सब को सुनाया और उदारता से चंदा देने की प्रार्थना की । उस मंडल के प्रमुख सेठजी ने उन्हें बताया-'कौन कितनी मदद करनेवाला है, उसकी आप सूची बनाना । उसमें मेरा नाम सब से पहले रखना और सामने पाँच सौ रुपये का अंक लिखना । एक-दो दिन में मेरी पीढ़ी पर खुद आकर पैसे ले जाना ।

सेठजी के बाद बहुत-से लोगों ने अपने-अपने नाम देकर चंदा जमा किया या राशि लिखवायी ।

सेठजी की सूचनानुसार एक-दो दिनों में श्रीमोटा उनकी पीढ़ी पर गये और उन्हें मिलकर सेवादान की माँग की । सेठजी ने एक सौ एक रुपये का चैक उनके हाथ में रखा ।

चैक देखकर श्रीमोटा स्तंभित हुए । क्या बोलना-न बोलना उन्हें कुछ सूझा ही नहीं ।

'लेकिन सेठजी, उस दिन तो आपने पाँच सौ एक रुपये का अंक लिखवाया था ।'-श्रीमोटा ने उन्हें याद दिला दी ।

इस पर हँसकर सेठजी बोले, 'भाईसाहब, आपको इसका राज़ ख़्याल में नहीं आया । मेरे पाँच सौ एक का अंक लिखने से बाकी व्यक्ति भी बड़ी धनराशि देंगे इस भावना से ही मैंने वह अंक लिखवाया था । मैं तो आपको एक सौ एक ही देनेवाला हूँ ।'-सेठजी ने अजीब स्पष्टीकरण दिया ।

यह सुनकर तो श्रीमोटा भौचक्के रह गये । सेठजी इस तरह अपना खुद का ही वचन तोड़ेंगे यह वे सोच भी नहीं सकते थे। चालाकी से शब्दों से खिलवाड़ कर के बाजी पलटानेवाले सेठजी को क्या और कैसे समझाना इसका उनके पास कोई हल नहीं था। अपने अंतर में सद्‌भाव रखकर उन्होंने नम्रता से, फिर भी दृढ़ स्वर में कहा, 'सेठजी, ऐसा नहीं चलेगा । आपकी लिखाई के अनुसार पाँच सौ एक रुपये लिये बिना मैं यहाँ से हटनेवाला नहीं हूँ ।'

क्रोधित होकर सेठजी बोले, 'सुनो, अगर लेना है तो इतने ही लो, नहीं तो चले जाओ ।'

कुछ भी बोले बिना श्रीमोटा वहाँ से उठ गये और पीढ़ी के बाहर चबूतरे पर बैठ गये । अपनी थैली निकालकर उन्होंने उसमें से काग़ज़, कलम और ख़त निकाले और अपनी वैयक्तिक लिखाई शुरू की ।

वहाँ बैठकर वे अपने साधकभक्त, आप्तजन और प्रेमीजनों को उनके ख़तों के जवाब लिखने लगे ।

शाम हो गयी और पीढ़ी बंद कर के श्रीमोटा की उपेक्षा कर के सेठजी घर चले गये । श्रीमोटा भी घर लौट आये ।

दूसरे दिन सुबह आकर श्रीमोटा ने सेठजी को प्रणाम किया और बिना कुछ बोले बाहर आकर चबूतरे पर बैठकर फिर से लिखना प्रारंभ किया । फिर से शाम हुई और सेठजी पीढ़ी बंद

कर के घर चले गये और वे भी लौट गये । सात दिन तक यह चक्र चलता रहा । अब तक सेठजी का गुस्सा ठंडा हो गया था और उसकी जगह औत्सुक्य ने ले ली थी । 'सारा दिन क्या लिखता रहा है यह आदमी ? सात दिन से रोज़ आ रहा है और बिना बोले सिर्फ़ लिख रहा है । बहुत ही सहनशील है यह व्यक्ति ।'-उनके मन में विचार आये और मन-ही-मन उन्होंने श्रीमोटा की प्रशंसा की ।

फिर सेठजी ने श्रीमोटा को पीढ़ी में बुलवा लिया और वे जो लिखा करते थे, वह पढ़ने के लिए माँग लिया । खुशी से श्रीमोटा ने वे काग़ज़ उन्हें दे दिये । सेठजी वे ख़त हाथ में लेकर पढ़ने लगे और उसमें आनंदित होकर बहुत देर तक पढ़ते रहे ।

अंत में उन्होंने कहा, 'वाह ! आप तो कोई ज्ञानी हो, ऐसा लगता है । आप अपने मित्रों को साधना के बारे में जिस रीति से लिख रहे हो, वह बहुत ही उत्तम है । इतनी उत्तम भावना इतनी सीधी-सादी भाषा में लिखना यह बहुत बड़ी बात है । आप सात दिन तक धीरज रखकर और संयम न खोकर बैठते थे, लिखते थे, मुझे प्रणाम करते थे, लेकिन मैंने आपको कटु वचन सुनाये इसका मुझे बड़ा अफ़सोस है । आपका यह मीठा सत्याग्रह ज़िंदगीभर मुझे याद रहेगा । आपकी लिखाई से मुझ में सद्भाव उत्पन्न हो गया है ।'

'आपको सात दिन रोकने के लिए मुझे माफ़ करना । आपके सात दिन मैंने बिगाड़े इसका मुझे बेहद दुःख हो रहा है । ये पाँच सौ एक रुपये लो ।'-सेठजी ने सच्चे हृदय से और प्रेमपूर्वक रुपये दिये ।

श्रीमोटा को बहुत आनंद हुआ । प्रार्थनाभाव से वे द्रवित हो गये । उनका कंठ भर आया और आँखों से आँसू उमड़ पड़े । ईश्वरकृपा से ही हृदयपरिवर्तन होकर आखिर सेठजी ने पैसे दिये थे ।

इस अनोखे सत्याग्रह में सेठजी के रुपयों के अलावा उनका हृदय भी जीतकर उन्हें अपना बनाने में और प्रभुगामी बनाने में श्रीमोटा सफल हुए थे ।

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

७७. समदृष्टि

अपने भोजन से निबटकर आज भी श्रीमोटा रोज़ की तरह चंदा जमा करने निकले थे । वे प्लॅटफॉर्म पर पहुँचे और देखा तो लोकल ट्रेन छूटनेवाली ही थी । जो डिब्बा सामने नज़र आया, उसमें वे चढ़ गये ।

डिब्बा फर्स्ट क्लास का था और अंदर ज़्यादातर स्त्रियाँ ही थीं । गाड़ी ने अबतक अच्छी खासी गति प्राप्त कर ली थी । डिब्बे के एक कोने में एक खाली जगह देखकर संकोचपूर्वक ही श्रीमोटा वहाँ बैठ गये और ख़त लिखने के अपने काम में संलग्न हो गये । उनकी कलम झरझर चल रही थी । अब वे एकाग्र होकर लिख रहे थे और दूसरे किसी का उन्हें भान नहीं था ।

उनको इस तरह सतत लिखते हुए देखकर उस डिब्बे में बैठी हुई स्त्रियों में से एक भगिनी से रहा न गया । उसने श्रीमोटा से कहा, 'भाईसाहब, पूछने के लिए माफ़ी चाहती हूँ, लेकिन ये आप क्या लिख रहे हैं । कोई कथा-कादंबरी है क्या ।'

मुसकराते हुए श्रीमोटा ने जवाब दिया, 'नहीं बहनजी, मैं कोई

साहित्यिक नहीं हूँ। मैं तो यहाँ मुंबई में अपने काम से आया हूँ। 'हरिजन सेवा संघ' के लिए चंदा जमा करने के उद्देश्य से मैं घूम रहा हूँ। सफ़र के समय का सदुपयोग हो, इस हेतु से मैं वह समय अपने मित्रों को और स्वजनों को उनके पत्रोत्तर देने में इस्तेमाल करता हूँ। मैं उनके जीवन में निर्माण होनेवाली समस्याओं का, मेरी क्षमता के अनुसार हल करने का किंचित्‌मात्र प्रयास करता हूँ।...'

बातों-बातों में धीरे-धीरे सत्संग शुरू हुआ और श्रीमोटा एक कर्मयोगी संत हैं, ऐसा उन भगिनियों के ख़्याल में आया और वे उनकी ओर आदरभाव से देखने लगीं। 'हमें भी कुछ सत्कृत्य करना चाहिए' इस भाव से प्रेरित होकर उनमें से एक ने उनसे पूछा, 'भाईसाहब, आपके चंदे में हम अगर पैसा दें, तो आप वह लेंगे ?'

'क्यों नहीं ? ज़रूर लूँगा।'-श्रीमोटा।

अपनी गर्दन झुकाकर चेहरा छिपाते हुए उस स्त्री ने सकुचाते हुए बताया, 'मगर..., हम तो गणिकाएँ हैं।'

एक क्षण स्तब्ध होकर स्थिरता से और शांति से श्रीमोटा ने कहा, 'ठीक है। उससे क्या हुआ ? दया, करुणा दर्शाने का अधिकार किसी एक ही विशिष्ट जाति को प्रदान किया गया है क्या? आपमें से हरएक इसकी अधिकारी है। मैं आपका पैसा लूँगा, अवश्य लूँगा।'

उनकी आश्वस्त वाणी से धैर्य प्राप्त होकर उसने फिर से पूछा, 'हमारे घर में आकर पैसे लेंगे? हम अपनी सहेलियों को भी इसके बारे में बतायेंगी।'

कीचड़ में फँसी हुई हम जैसी पापिनियों के घर में वे आएँगे भी क्या इसके बारे में उन्हें संदेह था। वैसी शंका उत्पन्न होना

स्वाभाविक ही था, क्योंकि उनकी निजी ज़िंदगियों में उनका वही अनुभव था। घृणा, उपेक्षा और गालियों की ही वे आदी थीं। लेकिन निर्लेप ऐसे श्रीमोटा को दिखाई देता था सिर्फ़ उनका सच्चा प्रेम और गहरा भाव।

'जरूर आऊँगा मैं। आप मुझे पता और समय दे दें।' उन्होंने जवाब दिया।

सुनकर सभी आनंद से फूली न समायीं। पता देकर और समय बताकर, अपना स्टेशन आते ही वे डिब्बे से उतरकर चली गयीं।

निश्चित किये हुए दिन श्रीमोटा उनके घर गये। उन्हें वहाँ देखकर उन सब को बहुत आनंद हुआ। हमारा व्यवसाय, सामाजिक स्थान आदि का विचार न कर के और 'स्वयं' की प्रतिष्ठा को ठेस पहुँचेगी क्या ?'—इसका विचार किये बिना यह संतपुरुष-यह कर्मयोगी हमारे घर आया है, यह देखकर उनके हृदय भर आये।

उन सब ने मिलकर बहुत बड़ी रकम श्रीमोटा को सुपुर्द की। बाद में उन्होंने पूछा, 'भैया, तुम हमारे हाथ की चाय पिओगे ?'

'जरूर पिऊँगा, लेकिन एक शर्त पर। आप अगर सब बर्तन ठीक से माँजकर साफ़ कर के फिर बनानेवाली होंगी, तो'-श्रीमोटा ने प्रेमपूर्वक फिर भी स्पष्टरूप से बताया।

उन्होंने निर्देशित की हुई पद्धति से चाय बनाकर उन भगिनियों ने उन्हें पीने को दी। उस दी हुई चाय को, उन भगिनियों के हृदय में रहे हुए विशुद्ध प्रेम के स्पर्श से, एक अनोखा माधुर्य और दिव्य मिठास प्राप्त हुई थी।

दूध पीनेवाले अपने नन्हें बच्चे की ओर ममता से देखनेवाली माँ की तरह वे सब उन्हें, चाय पीते वक्त देख रही थीं।

चाय पीकर श्रीमोटा ने उनसे रजा ली।

सीढ़ियाँ उतरकर जानेवाले श्रीमोटा की शरीराकृति को आँखों के सामने से ओझल होने तक वे सब भरी आँखों से और आँखें भर-भरकर देख रही थीं ।

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

७८. '...अब भी तेरा अहम् गया नहीं ?'

'मुझे भी रोज़े रखने चाहिए' ऐसा भाव श्रीमोटा के हृदय में उत्पन्न हुआ और उसे अमल में लाने का उन्होंने निश्चित किया । उस समय वे कराची में परसदभाई के घर में रहते थे । चालीस दिन तक उपवास करने का उन्होंने दृढ़ संकल्प किया ।

कट्टर मुसलमान की तरह उपवास न कर के वे उन्हें अंदर से प्राप्त होनेवाले संकेतानुसार उपवास करने लगे । वे दिन में दो बार चाय लिया करते थे । इसके अलावा पानी की एक बूँद भी वे लेते नहीं थे ।

अड़तीस दिन इसी तरह बीत गये । उनके उपवास चल रहे थे, लेकिन शरीर तंदुरस्त था और मन में स्फूर्ति और शक्ति का भी अनुभव हो रहा था ।

अगले दिन अचानक श्रीमोटा की एक गोदड़िया महाराज से मुलाकत हुई ।

उन्होंने श्रीमोटा को फटकारते हुए पूछा, 'किसलिए इतने उपवास कर रहा है ? अब बस कर और कुछ खा ले ।'

श्रीमोटा ने यह सब सुना और बोले, 'ठीक है ।'

जैसे मिले थे वैसे अचानक, महाराज चले गये ।

श्रीमोटा उपवास छोड़ने को राज़ी हो गये, फिर भी उनके मन में विचारचक्र शुरू हुआ-'मैंने संकल्प तो चालीस दिन के उपवास

का किया था । अड़तीस दिन पूरे हो गये हैं और अब बचे हुए सिर्फ़ दो दिनों के लिए ही संकल्प तोड़ दूँ ? क्या यह उचित है ? मैं तो अपने आत्मसंयम की परीक्षा करने के हेतु से ये उपवास कर रहा हूँ । और इससे मेरा मन भी शांति का अनुभव कर रहा है, आत्मिक बल और समाधान भी प्राप्त हो रहा है, इस प्रकार का हलकापन महसूस हो रहा है और साधना में स्फूर्ति और एकाग्रता भी आ रही है । ऐसी स्थिति में केवल दो दिनों के लिए ही उपवास तोड़ दूँ ?...' बहुत विचार करने के बाद उनके मन-बुद्धि ने उन्हें समझाया, 'नहीं, तू रोज़े जारी ही रखना ।'

रोज़े के चालीस दिन पूरे करने का निश्चय फिर से करने के बाद उनका सूक्ष्म अहंकार आनंदित हुआ ।

थोड़ी देर के बाद श्रीमोटा किसी बुजुर्ग व्यक्ति के साथ मोटर में बैठकर कुछ काम के लिए निकल पड़े । मोटर रास्तेपर तेज़ी से जा रही थी, तभी अचानक श्रीमोटा को दिखायी दिया कि रास्ते की बगल में एक चबूतरे पर बैठा हुआ पागल-सा दिखायी देनेवाला और मैले-फटे कपड़े पहने हुए एक आदमी उनकी ओर देखकर गाड़ी रोकने का और उन्हें बुलाने का हाथ से इशारा कर रहा था।

उन्होंने तुरंत ड्राइवर को गाड़ी रोकने को कहा और नीचे उतरकर उस आदमी की दिशा में चलने लगे । उन्हें आश्चर्य हो रहा था कि इस आदमी का मुझ से क्या काम हो सकता है ?

जैसे ही वे उसके पास पहुँचे, तब उनकी ओर तीक्ष्ण दृष्टिपात करते हुए कड़े स्वर में वह बोल उठा, 'क्यों...रे..., अब भी तेरा अहम् गया नहीं ? ले, ये मिठाई खा ले और रोज़ा पूरा कर ।'

अपने मन में छिपे हुए भाव जाननेवाला यह आदमी कोई

साधारण व्यक्ति नहीं बल्कि कोई औलिया है, यह बताने के लिए किसी और की जरूरत नहीं थी ।

'मेरा अंतर किताब की तरह साफ़ पढ़ रहा है यह औलिया ! वैसे तो मुझ से ग़लती तो हो ही गयी है । गोदड़िया महाराज के कहने पर भी मैंने अपनी ज़िद नहीं छोड़ी और इसीलिए मेरा सूक्ष्म सात्त्विक अहंकार तोड़ने के लिए ही ईश्वर ने आयोजन कर के इनके रूप में मुझे जागृत किया है ।' श्रीमोटा को अपनी ग़लती का पूरा अहसास हो गया और उस औलिया के चरणस्पर्श कर के उन्होंने उसे प्रणाम किया । फिर उसने दी हुई मिठाई मन में किसी भी तरह का विकल्प लाये बिना उन्होंने प्रेम-भक्ति-भावपूर्वक ले ली और उसे खाने लगे ।

श्रीमोटा के सहकारी बुजुर्ग यह देखकर डरकर उन्हें अटकाते हुए बोले, 'अरे, अरे, इतने दिनों के उपवास के बाद एकदम मिठाई खाना ठीक नहीं है । तू बीमार हो जाएगा, देख ।'

श्रीमोटा ने उनके कहने की ओर ध्यान नहीं दिया और उस औलिया ने दी हुई सारी मिठाई खाकर ख़त्म कर दी और अपने रोज़े पूरे किए ।

शुभ संकल्पबल का भी अहंकार आदमी को होता है और उसका टूटना आवश्यक रहता है । ईश्वर कृपा कर के वह तोड़ने को उसे मजबूर करता है ।

(टीप : यह घटना कराची में घटी । स्वामी प्रकाशानंदजी (गोदड़िया स्वामी) नडियाद में रहते थे । श्रीमोटा ने यह घटना जिस ख़त में लिखी है, उसमें 'एक गोदड़िया स्वामी' ऐसा शब्दप्रयोग किया है । वे स्वामी प्रकाशानंदजी ही थे क्या इसके बारे में स्पष्ट रूप से जानकारी उपलब्ध नहीं है ।)

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

७९. 'समुंदर में चला जा !'

कराची में श्रीमोटा के दिन आनंदपूर्वक और शांति से गुजरने लगे । मन में इच्छा होने पर श्रीमोटा कई बार सुबह में घूमने जाया करते थे । एक बार इसी तरह वे घर से निकलकर समुंदर के किनारे पर गये थे । अपनी ही मस्ती में चलते-चलते वे बहुत दूरतक चले गये तब अचानक उन्हें श्रीसद्गुरु* से आदेश प्राप्त हुआ-'समुंदर में चला जा ।' स्थूल शरीर से प्रगट होकर उन्होंने यह आदेश नहीं दिया था, बल्कि श्रीमोटा के हृदय में प्रगट होकर उन्होंने यह आदेश दिया था ।

श्रीमोटा अपने जीवन में सदा ही गुरुआज्ञा को सर्वोच्च स्थान दिया करते थे । आज्ञा कैसी भी हो, जी-जान से और कुछ भी सोचे बिना, वह उनकी ही शक्ति की सहायता, से प्राणपूर्वक पुरुषार्थ कर के पूरी करनी ही चाहिए ऐसा उनका दृढ़ भाव रहता था । इसलिए यह आज्ञा प्राप्त होते ही वे सड़क छोड़कर समुंदर की ओर मुड़कर उस दिशा में चलने लगे ।

श्रीसद्गुरुस्मरण में लीन होकर वे चल रहे थे । रेत में चलनेवाले उनके कदम कही अटकते नहीं थे, वे तो सिर्फ़ चलना ही जानते थे । थोड़े ही समय में पैरों को पानी का स्पर्श हुआ और पैर पानी से भीगने लगे । वे चलते ही रहे । पानी ऊपर-ऊपर चढ़ रहा था और शरीर पानी में अंदर-अंदर डूब रहा था । पैर, घुटने, कमर, छाती...क्रमशः शरीर पानी में डूब रहा था । चारों ओर से समुंदर के पानी की लहरें आकर उनके शरीर से टकरा रही थीं और टूट रही थीं । उनके बदन पर के सारे कपड़े गीले हो गये ।

* साँईबाबा से यह आदेश प्राप्त हुआ था, ऐसा श्रीमोटा ने स्वयं बताया है ।

बाह्यतः इतनी अस्थिरता थी, फिर भी उतनी ही मात्रा में अंतर में शांति और स्थिरता थी, यह एक चमत्कार ही था। मंदिर में मूर्ति के सामने जलनेवाले दीये की शांत और स्थिर ज्योति की तरह उनका अंतर भी स्थिर था, किंचित्मात्र भी तरंग वहाँ नहीं थी।

अब समुंदर के तल की रेत पर कदम स्थिर रखना कठिन हो रहा था और पानी गर्दन तक आ चुका था। बीच में ही कोई लहर जोर से आकर सिर के ऊपर से चली जा रही थी। श्रीमोटा के नाकमुँह तक पानी पहुँच गया और उसके बाद उनका बाह्य जगत का होश पूर्णतः लोप हुआ।

बाद में जब वे होश में आये तब उन्हें ख़्याल आया कि 'उनका शरीर रेत में पड़ा हुआ है और कपड़े कुछ-कुछ गीले हैं, फिर भी एकदम गीले नहीं हैं। मतलब कि शरीर किनारे पर बहुत समय से पड़ा रहा होगा'-उन्होंने निष्कर्ष निकाला।

शरीर का होश पूर्णतः लौटते ही श्रीमोटा उठ गये। उन्होंने देखा-अपने रहने का ठिकाना जो 'क्लिफ्टन बंगला' था, उससे वे काफ़ी दूर खड़े थे। अपने कपड़े झटककर रेत साफ़ कर के वे घर की दिशा में शांति से चलने लगे। 'समुंदर से बाहर रेत में मैं किस तरह आ पहुँचा ?' - यह प्रश्न तक उनके मन में नहीं उठा, क्योंकि वे पूरी तरह जानते थे कि यह सब श्रीसद्गुरु की ही लीला थी, उनका ही कीमिया था, उनकी ही परीक्षा थी।

जब वे घर लौट आये तब उनके गीले कपड़े देखकर सभी को आश्चर्य हुआ और सभी ने बहुत पूछताछ की और वजह जानने का भरसक प्रयास किया, लेकिन श्रीमोटा तो मौन ही रहे।

अपने गीले कपड़े उतारकर सूखे कपड़े पहन लिये और वे श्रीसद्गुरुस्मरण में डूब गये। जो कुछ घटा, वह विशिष्ट था,

चमत्कारी था, ऐसा उन्हें किंचित्मात्र भी नहीं लगा। ईश्वर की सृष्टि में असंभव ऐसा कुछ भी नहीं है, वह वे पूरी तरह जानते थे।

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

८०. 'महबूब' का हुक्म !

मुसलमानों का पवित्र महीना 'रमज़ान' चल रहा था। इस बार भी श्रीमोटा कराची में ही थे। सब मुसलमान इस महीने में रोज़ा रखते हैं। सही तरह से रोज़ा रखनेवाले सूर्योदय से सूर्यास्त तक कुछ भी खाते-पीते नहीं हैं, इतना ही नहीं थूँक भी निगलते नहीं है।

संयमप्राप्ति के हेतु से श्रीमोटा भी रोज़ा रखा करते थे। पूर्व में जब वे 'गुजरात विद्यापीठ' में पढ़ रहे थे, तब गांधीजी हिंदू-मुस्लिमों की एकता का आग्रह रखते थे, यह भी वे भूले नहीं थे। एक-दूसरे के धर्म के प्रति, उनके नीति-नियमों के प्रति आदरभाव होना चाहिए यह सिखवनी भी गांधीजी देते थे, इस दृष्टि से भी रोज़े रखने का महत्त्व था।

रमज़ान मास पूर्ण होने के बाद ईद के दिन सभी मुसलमान कराची के ईदगाह मैदान में हजारों की तादाद में इकट्ठा होकर नमाज़ पढ़ते हैं। 'उस दिन मैं भी वहाँ जाकर नमाज़ पढूँ।'-ऐसी तीव्र भावोर्मि श्रीमोटा के अंतर में उत्पन्न हुई और उस दिन वहाँ जाने के लिए वे तैयार हो गये। उनकी पोशाक नित्य की ही थी—धोती, कुर्ता और सफेद टोपी।

घर के लोगों ने डरकर उनसे पूछा, 'क्या तुम ये पोशाक पहनकर नमाज़ पढ़ने जाओगे ? उन लोगों ने कुछ किया तो ?'

श्रीमोटा ने निर्भयता से और अटल व दृढ़ विश्वास के साथ

कहा, 'मैं जाऊँगा और इसी पोशाक में जाऊँगा । जो होनेवाला है वह होकर ही रहेगा और जो होनेवाला नहीं है, वह नहीं होगा, फिर डरने की बात कहाँ ?...'

किसीका कहना न मानकर श्रीमोटा मोटर से ईदगाह मैदान में पहुँच गये ।

हजारों मुसलमान शिस्तबद्धता से और शांतिपूर्वक कई कतारों में खड़े थे । श्रीमोटा भी उनके साथ एक कतार में खड़े हो गये। नमाज़ की शुरूआत हो गई और बाँग की पुकार हुई । सभी जन कानों पर हाथ रखकर नीचे झुक गये और फिर खड़े हो गये । श्रीमोटा ने भी उनका अनुकरण किया, वे भी नीचे झुक गये और फिर खड़े हो गये । बाद में घुटनों पर बैठकर सभी जन झुके, वैसे वे भी झुके ।

सभी मुसलमान जब नमाज़ पढ़ते समय कुरान की आयतें पढ़ रहे थे, तब वे हृदय में श्रीसद्गुरु की स्मरणपूर्वक प्रार्थना कर रहे थे ।

नमाज़ पूरा हुआ । सब मुसलमान एकदूसरे को गले लगाकर 'अस्सलाम् आलयकुम्' कहकर बिदा होने लगे । श्रीमोटा को गले लगानेवाला एक भी व्यक्ति उन हजारों लोगों में मौजूद नहीं था। उन्हें गले लगाकर माँ के प्रेम की वर्षा करनेवाले थे केवल श्रीसद्गुरु।

मोटर की ओर श्रीमोटा चलने लगे और चलते-चलते अचानक रुक गये ।...वे सपने में तो नहीं थे ? उन्हें अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हो रहा था ।... सामने प्रत्यक्ष श्रीसद्गुरु खड़े थे । उन्हें देखते ही एक अबोध शिशु की तरह दौड़ते-दौड़ते वे उनके पास गये और खुद को उनके चरणों में झोंक दिया । उनका हृदय भर आया

और आँखों से आँसू बहने लगे । हृदय में भक्ति की, प्रेम की और भाव की बाढ़ आकर वह श्रीचरणों को स्पर्श करने लगी, उन्हें धोने लगी ।

गुरुदेव ने उन्हें उठाकर प्रेम से गले लगाया, पीठ थपथपायी और बोले, 'यहाँ से नग्न होकर अपने घर चलते-चलते जाना ।'

उनकी यह आज्ञा सुनते ही श्रीमोटा के अंतर में भाव प्रकट हुआ, 'अब यह आज्ञापालन की सही घड़ी आ गयी । अगर यह क्षण गँवा दिया तो आणीबाणी की घड़ी छूट जाएगी । देह के प्रति रहा हुआ ममत्व, देह के प्रति मन में रही हुई गाँठ और लज्जा इनसे मुक्त होने के लिए ही यह अमूल्य मौका ईश्वरकृपा से ही प्राप्त हुआ है ।'

इसके साथ मन में एक प्रश्न भी खड़ा हुआ-'कपड़े निकालकर किसे दूंगा ? गाड़ी के ड्राइवर को-भीमजीभाई को अगर दूँ, तो उसे लगेगा कि मैं पागल हो गया हूँ और निश्चित ही वह मुझे ऐसा करने नहीं देगा, सीधा मुझे उठाकर गाड़ी में डालकर बंगले पर ले जाएगा । इसलिए ऐसा करने में बड़ा जोखिम है ।'

इतने में उन्हें 'कल्याणपुर' नामक अपने स्वजन का स्मरण हुआ । वे ऐसी बातों का महत्त्व और गांभीर्य समझ सकते थे । इसलिए 'उनके घर जाकर, उन्हें निवेदन कर के कपड़े उन्हीं को सुपूर्द करूँगा' ऐसा सोचकर वे गाड़ी के पास गये । भीमजीभाई को उन्हें बताया, 'देख ! तू मुझे कल्याणपुर के घर के पास छोड़ना और बंगले पर चले जाना । सभी को खबर कर देना कि, 'मैं यहाँ हूँ और आराम से घर आऊँगा ।' मेरी चिंता नहीं करना और सब लोग खाना खा लेना ।'

ड्राइवर को सूचना देकर और विस्तार से समझाकर वे गाड़ी

में बैठे । ड्राइवर ने उन्हें कल्याणपुर के घर के पास छोड़ दिया और मोटर चली गयी । सीढ़ियाँ चढ़कर वे कल्याणपुर के घर गये । वे घर में ही थे ।

उनसे मिलते ही श्रीमोटा ने अपने आने का हेतु उन्हें समझाया। 'आज मेरे परम सौभाग्य का और सद्‌भाग्य का सूरज उगा है । मुझे मेरे महबूब का हुक्म प्राप्त हुआ है और मुझे उसका प्रेमभक्तिपूर्वक पालन करना है ।'—इतना बताकर हुक्म क्या है यह उन्होंने विस्तारपूर्वक बताया ।

हुक्म सुनकर कल्याणपुर का चेहरा उतर गया और डरी हुई आवाज़ में वे इतना ही कह सके, 'नहीं, नहीं, यहाँ नहीं, यहाँ नहीं ।'

श्रीमोटा ने उन्हें धीरज देते हुए कहा, 'आप को अकारण डरने की जरूरत नहीं । आप नीचे रास्ते पर आ जाओ । आपके घर के थोड़े आगे जाकर मैं खुद के कपड़े निकालकर आपके हवाले कर दूँगा । वे लेकर आप 'क्लिफ्टन बंगले' में जाना । परसदभाई को और बाकी सभी को मेरी यह हकीकत सुनाना और किसी को थोड़ासा भी डरने की जरूरत नहीं । मैं आराम से सर्वत्र घूमते-घूमते आ जाऊँगा । लेकिन कब आऊँगा वह निश्चित रूप से कह नहीं सकता ।'

इस बात को कल्याणपुर राजी हो गए । फिर वे दोनों सीढ़ियाँ उतरकर नीचे रास्ते पर आ गए । कुछ अंतर चलने के बाद श्रीमोटा ने एक-एक कर के बदन पर के सारे कपड़े उतार दिये और कल्याणपुर के हाथ में दे दिये ।

कपड़े निकालते ही, उसी क्षण श्रीमोटा के शरीर के रोम-रोम में एक प्रकार का भाव और मस्ती प्रगट हो गए और उसका आवेश

इतना ज़बरदस्त था कि वे ज़मीन पर अपने पैर भी रख नहीं सकते थे । 'मानो मैं पृथ्वी के अंतरिक्ष में उड़ रहा हूँ ।'-ऐसा उन्हें लगने लगा । थोड़ी देर के बाद इसका होश भी चला गया और केवल 'शरीर चल रहा है' ऐसा होश बाकी रहा । एक अलग-सी, अनोखी स्थिति अंतर में प्रगट हुई ।

इस स्थिति में वे कराची की बड़ी-बड़ी सड़कों पर से गुज़रे । कभी चलते-चलते, तो कभी दौड़ते-दौड़ते पाँच-छ मील वे घूम रहे थे ।

उन्हें ऐसी नग्न स्थिति में जाते हुए देखकर एक चौक में एक गोरे सार्जन्ट ने उन्हें अटकाने की कोशिश की थी, ऐसा थोड़ा-सा भान उन्हें उस समय हुआ । उस वक्त उस सार्जन्ट की ओर देखकर वे इतने जोर से चिल्लाये कि उस गोरे सार्जन्ट ने 'साँईबाबा ! ईद मुबारक' कहकर उन्हें सलाम किया । उस समय केवल कुछ क्षणों के लिए ही स्थूल होश प्रगट हुआ और बाद में फिर से विलीन हुआ ।

फिर वे चलते-चलते गवर्नर के बंगले तक आये । वहाँ श्रीसद्‌गुरु प्रत्यक्ष स्वयं खड़े थे । उन्होंने श्रीमोटा को अपनी छाती से लगाया और प्रेमपूर्वक बदन पर हाथ फिराया और पीठ थपथपाकर शाबाशी दी । फिर उन्होंने श्रीमोटा को रोज़ा तोड़ने के लिए पाँच रुपये दिये ।

इसके बाद फिर से एक बार उनका बाह्य भान पूर्णतः लोप हुआ और वे चलने लगे । समुंदर के किनारे पर 'क्लिफ्टन बंगले' से सौ-दो सौ फूट की दूरी पर उनके शरीर का होश लौट आया । फिर वहाँ से जोर से पुकारकर उन्होंने अपने कपड़े बंगले से मँगवा लिये ।

✤ ✤ ✤

ध्यान में श्रीसद्गुरु को चाय पीने को निमंत्रण :

श्रीमोटा ने परसदभाई के घर में सभी को अपना रोमांचक अनुभव बताया और किस तरह श्रीसद्गुरु का प्रत्यक्ष दर्शन हुआ यह भी, कुछ भी छिपाये बिना, सब कुछ विस्तार से बताया । सुनकर सभी को बहुत आनंद हुआ ।

बाद में परसदभाई ने उन्हें सुझाव दिया, 'तू तेरे गुरुमहाराज को अपने घर में बुला लेना, हम उन्हें चाय-पानी देकर फिर उन्हें बिदा करेंगे ।'

'लेकिन वे कहाँ होंगे यह कैसे जानना?'-श्रीमोटा ने अपनी शंका प्रदर्शित की ।

इस पर बापू ने एक मार्ग बताया, 'तू ध्यान में प्रवेश कर के, शरीर का होश पूर्णतः जाने के और एकमात्र चैतन्य में एकाग्र होने के क्षण में 'गुरुमहाराज कहाँ होंगे ?' यह जानने का संकल्प हृदय में धारण कर, फिर तू वह जान पाएगा ।-'पातंजल योग' में 'संयम'* इस नाम की जो प्रक्रिया है, वही श्रीमोटा को बापू ने बतायी थी ।

सहजता से किसी से कुछ सुझाव प्राप्त हो, तो उसे स्वीकारकर प्रत्यक्ष कृति में उतारना यह भी श्रीमोटा की साधना का एक अंग था, इसलिए वे इस बात को राज़ी हो गये ।

उन्होंने ध्यान लगाया और 'संयम' साधा, तब उन्हें दिखायी दिया कि कराची शहर से बहुत दूर, समुद्र किनारे पर एक सड़क पर वे अत्यंत द्रुत गति से चल रहे थे ।

* इसी प्रक्रिया से उन्होंने काशी में माँ के पुनर्जन्म का स्थान खोज लिया था। प्रकरणों के सहजक्रम की दृष्टि से केवल वह प्रकरण ही पहले लिया है ।

उनका दर्शन होते ही श्रीमोटा ने उन्हें भावभक्तिपूर्ण हृदय से और विनम्रतापूर्वक चाय पीने के लिए आमंत्रित किया ।

गुरुदेव बोले, 'देख ! तुझे चाय ही पिलानी है न मुझे ? ले, यह देख, मैं चाय पीता हूँ ।'-ऐसा कहकर गुरुदेव चाय पीने लगे। अत्यंत स्पष्ट रूप से श्रीमोटा ने यह सब कुछ ध्यान में देखा ।

देहातीत श्रीसद्गुरु की दृष्टि से स्थूल से भी ज़्यादा महत्त्व था सूक्ष्म का, विशुद्ध भाव का । शरीर वहाँ गौण था ।

(टीप : शिरडी के श्रीसाँईबाबा, श्रीउपासनी महाराज, स्वामीश्री समर्थ अक्कलकोट महाराज, श्रीताज्जुद्दीनबाबा (नागपुर के)-इन सब महात्माओं में श्रीमोटा अपने श्रीसद्गुरु धूनीवाले दादा-श्रीकेशवानंदजी महाराज-इनका ही दर्शन किया करते थे और अपने श्रीसद्गुरु की चेतना ही इन आकारों में स्वयं को मार्गदर्शन कर रही है, ऐसा भाव रखते थे । इसलिए उन्होंने अपने ख़तों में, लिखाई में और सत्संग चर्चा में भी केवल 'श्रीसद्गुरु' शब्द का ही उपयोग किया है ।

कराची में घटी हुई इस घटना के 'महबूब' उर्फ 'श्रीसद्गुरु' यानी 'शिरडी के साँईबाबा' ही थे, ऐसा श्रीमोटा ने स्वयं बताया है ।)

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

८१. श्रीसद्गुरु की प्रेमप्रसादी

आज रविवार का दिन । रविवार को श्रीमोटा बाज़ार में कभी जाया नहीं करते थे, लेकिन आज उनके हृदय में मानो धक्कामार-मारकर कोई कह रहा था, 'भाजीबाज़ार जाना, भाजीबाज़ार जाना ।' परसदभाई के घर की शाकसब्जी और बाकी सामान लाने का काम वे ही करते थे और बड़े प्रेम से करते थे ।

‘आज रविवार को ही भाजीबाज़ार जाने का यह खिंचाव क्यों ?’-वे समझ नहीं पा रहे थे। फिर भी घर के लोगों से उन्होंने कहा, ‘चलो, बाज़ार में जाकर सामान ले आएँ।’

परसदभाई की बेटी को मज़ाक करने की आदत थी, उसने पूछा, ‘तुम्हें तो, तुम्हारे वे साँईबाबा बुलाते होंगे। है न ? लेकिन मैं कहती हूँ, आज कहीं नहीं जाना।’

दूसरों के बोल भी ईश्वरीय संकेत मानकर उन्हें आचरण में रखना यह भी श्रीमोटा की साधना का एक विशिष्ट पहलू था। इसलिए उसके शब्द भी उन्होंने स्वीकार कर लिये और बाज़ार में जाना रद्द हो गया। फिर तो वे श्रीसद्गुरुस्मरण में डूब गये, गहराई तक डूब गये। आज न जाने क्यों, लेकिन निश्चित रूप से गुरुदेव की सूक्ष्म उपस्थिति का अहसास उन्हें दिनभर हो रहा था, ‘जीवंत अनुभव’ हो रहा था।

दूसरे दिन बाज़ार जाने के लिए सभी के साथ मोटर से श्रीमोटा निकल पड़े। ‘सिंधिया स्टीम नेविगेशन कंपनी’ के ऑफिस में सब को बिठाकर वे अकेले ही भाजीबाज़ार में आ पहुँचे।

शाकसब्ज़ी खरीदने के बाद उन्हें ख़्याल आया कि पैसों का पर्स ऑफिस में ही रह गया था। लेकिन एक ही आदमी से खरीदी करने का उनका रिवाज़ होने के कारण कोई समस्या नहीं थी, कल भी पैसा दें तो चलनेवाला था।

सब खरीदी पूर्ण कर के शाकसब्ज़ी लेकर मंडी से बाहर आये-न-आये तो उन्हें सामने प्रत्यक्ष गुरुमहाराज दिखाई पड़े। अचानक उन्हें वहाँ देखकर श्रीमोटा स्तंभित हो गये। वे दौड़ते-दौड़ते पास गये और नेत्र सजल हुए। भावावेश में उनका बदन

थरथर काँप रहा था। गुरुदेव ने प्रेम से उन्हें थपथपाया और प्रेम से बदन पर हाथ फेरकर उनके माथे का चुंबन लिया।

फिर मुस्कराते हुए मीठे स्वर में वे बोले, ‘कल तेरी कितनी राह देखी। दो टोकरियाँ भरकर प्रसादी मैंने तेरे लिये ला रखी थीं, आखिर में तेरे नाम पर ख़ैरात कर दीं। आज फिर से ये दो टोकरियाँ भरकर प्रसादी मैं तुझ पर खुश होकर ले आया हूँ, तू इसे ले जाना।’

मोटर में भी समाना मुश्किल हो इतनी बड़ी-बड़ी वे टोकरियाँ थीं, इसलिए हमालों द्वारा ही उन्हें घर ले जाना पड़ा।

नमाज़ के दिन आज्ञापालन करने की खुशी में गुरुमहाराज ने वह प्रेमप्रसादी खुद-स्वयं ला दी थी। एक टोकरी में विविध मिठाईयाँ खचाखच भरी हुई थीं और दूसरी टोकरी में सब तरह के फल और सूखा मेवा भरा हुआ था। वह देखते-देखते श्रीमोटा की आँखें फिर से आँसूओं से भर आयीं।

‘गुरुमहाराज की एक छोटी-सी आज्ञा का पालन करने से वे इतने प्रसन्न हुए हैं। कितना प्रेम बरसा रहे हैं वे मुझ पर। माँ अपने बेटे पर करती नहीं होगी, उतना प्रेम करते हैं गुरुदेव मुझ पर। उतनी पात्रता न होते हुए भी कर रहे हैं। करुणावश कर रहे हैं।’-श्रीमोटा भावविह्वल हो गये। ‘इसी क्षण दोड़ते-दौड़ते उनके पास चला जाऊँ और उनकी गोद में चिरकाल तक पड़ा रहूँ,’ ऐसा उन्हें लगा। अपनी आँखों के सामने दिखाई देनेवाली श्रीसद्गुरु की मूर्ति को वे बार-बार प्रणाम करते ही रहे।

घर के सभी ने वह अमृततुल्य प्रसादी पेट भरकर ग्रहण की और दूसरों को भी वह बाँट दी, फिर भी वह पूरी तरह ख़त्म नहीं हुई। वह प्रसादी ग्रहण करना बहुत दिन तक चलता रहा।

प्रसादी एक दिन ख़त्म हुई, फिर भी उसका अमृततुल्य स्वाद और अनोखी तृप्ति सदा के लिए साथ रह गयी । उसे भूलना असंभव था ।...और न ही वे भूलना चाहते थे ।

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

८२. गुरुदक्षिणा

'प्रसाद सभी को बाँटना ।' :

गुरुकृपा के बल से असीम स्वपुरुषार्थ द्वारा 'साधना पूरी होकर ध्येयप्राप्ति हो गयी है' ऐसा श्रीमोटा को जब लगा, तब उन्होंने श्रीसद्‌गुरु को अपने हृदय में प्रगट कर के नम्रता से पूछा, 'गुरुदेव ! आपकी कृपा से और आशीर्वाद से मैंने जो कुछ प्राप्त किया है, उसकी गुरुदक्षिणा के रूप में आपको मैं क्या दूँ ?'

प्रसन्नता से श्रीसद्‌गुरु ने आदेश दिया, 'तुझे जो कुछ प्राप्त हुआ है वह, और जो कुछ तूने प्राप्त किया है वह– उसे अकेले ही मत भोगना, बल्कि सभी को उसकी प्रसादी देना । जो 'सच्ची प्रसादी' प्राप्त करता है, वह अकेला ही खाता नहीं है, बल्कि सभी को बाँटकर उसके बाद ही वह खाता है ।

'सज्जन, दुर्जन दोनों पर समभाव रखना ।' :

गुरुमहाराज ने आगे बताया, 'तेरे पास सज्जन भी आएँगे और दुर्जन भी आएँगे । उन पर तेरा समभाव रहने देना । एक के प्रति कम भाव और दूसरे के प्रति ज़्यादा भाव उत्पन्न होने न देना । **'ज़्यादा भाव रखना ही हो, तो दुर्जनों के प्रति ज़्यादा भाव रख, कि जिससे वे दुर्जन न रहकर सज्जन बन जाएँगे. महादेव सब का हलाहल पी जाते थे, वैसे तू भी सब का हलाहल पी लेना, और हलाहल देनेवालों को भी तेरे 'अंतर का अमृत' ही देना ।'**

'तेरे पास जो नहीं आएँगे, उन्हें भी मत भूलना ।' :

अंत में गुरुमहाराज ने कहा, 'बेटा, तेरे पास जो आएँगे उनके लिए तू सब कुछ करेगा ही । लेकिन तेरे पास जो नहीं आएँगे, उन्हें भी तू कभी मत भूलना । समग्र समाज का कल्याण हो ऐसा कुछ तू कर ।'

गुरुमहाराज का आदेश पूर्ण हुआ । श्रीमोटा ने वह अपने हृदय में प्रेमपूर्वक धारण किया ।

एक तपस्या पूरी हुई थी और अब दूसरी शुरू हुई थी । पहली तपस्या थी ध्येयप्राप्ति की और अब यह दूसरी तपस्या थी आदेशपालन की । पहली उन्होंने पूरी करा ली थी, वैसे ही यह भी वे पूरी करा लेंगे ऐसी उन्हें दृढ़ श्रद्धा थी । 'नर का नारायण' करने की अमोघ शक्ति श्रीसद्‌गुरु में थी । उनकी शक्ति असीम थी और 'अब भी मैं उसे पूरी तरह जान नहीं पाया हूँ,' ऐसा श्रीमोटा को लगता था ।

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

८३. अनाग्रही और अनासक्त श्रीमोटा

'प्रेमलक्षणा भक्ति' के गीत :

श्रीमोटा एक बार कवि 'सागर' से मिलने उनके गाँव 'सरखेज' (जि. अहमदाबाद, गुजरात) में गये । मिलने पर दोनों को बहुत आनंद हुआ । दोनों का सत्संग हुआ, आंतरिक साधना के बारे में प्रदीर्घ और गहरी चर्चा तथा विचारविनिमय हुआ । बाद में श्रीमोटा ने कविवर को खुद–स्वयं ने रचे हुए 'प्रेमलक्षणा भक्ति' के कुछ गीत सुनाये ।

वे गीत सुनकर कविराज ने अपना मत प्रदर्शित किया, 'तुम्हारे हृदय में विशुद्ध और अनासक्त प्रेम है और वह बहुत–ही उच्च

कोटि का है, फिर भी आपसे प्रेमभावना के वश होकर कहता हूँ कि ऐसे उच्च प्रकार के गीतों में से भी सुयोग्य सार ग्रहण करने के बजाय लोग खुद-स्वयं की जीवदशा की वृत्ति का ही पोषण करेंगे, इसलिए आप ये सभी रचनाएँ तालाब में फेंक दो ।'

उनका यह प्रतिपादन सुना मात्र, और एक क्षण का भी विलंब किये बिना श्रीमोटा ने वह सब पास के तालाब में फेंक दिए । कवि सागर उनकी यह अलौकिक कृति देखकर दंग रह गये ।

श्रीमोटा के साधनकाल की इन पुरानी प्रार्थनाओं में से अल्पमात्र ही अब बची है ।

जब्ती (जप्ती) के समय कापियाँ गायब :

स्वातंत्र्य की जंग के समय कइयों को कारावास स्वीकार करना पड़ता था । उन दिनों जुर्माना भरने पर सरकार कैदियों को रिहा कर देती थी । कभी-कभी केवल जुर्माना भरने की ही सज़ा की जाती थी । फिर भी उस समय 'असहकार' की हवा चलती होने से जुर्माने की रकम भरना अस्वीकार कर के सज़ा भुगतना करीब-करीब सभी जन मंजूर करते ।

श्रीमोटा के बारे में भी ऐसा घटा था । जुर्माना न भरने के कारण उनके घर में कम-से-कम चार-पाँच बार जब्ती आयी थी और उस समय उनके लिखे हुए प्रार्थनागीतों की करीब-करीब चार बड़ी थैलियाँ गायब हो गयीं । वे गीत फिर कभी प्राप्त नहीं हुए। फिर भी श्रीमोटा को तो उसका कुछ भी हर्ष-शोक नहीं हुआ । वे तटस्थ थे, स्थिर थे, साक्षी थे, जलकमलवत् ।

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

८४. 'तुझ पर समाज का ऋण है !'

श्रीसद्गुरु का आदेश :

१९५५ में एक बार श्रीमोटा जब नडियाद आश्रम में वटवृक्ष के नीचे झूले पर बैठे हुए थे, तब श्रीसद्गुरु ने प्रत्यक्ष प्रगट होकर उन्हें आदेश दियाः 'तू बैठा क्यों रहा है ? कुछ कर ।'

श्रीमोटा ने उनसे पूछा, 'क्या करूँ ?'

श्रीसद्गुरु ने बताया, 'समाज से धन लेकर फिर से समाज को ही अर्पण कर ।'

यह सुनने पर श्रीमोटा ने अपने विचार प्रगट किये, 'मैं कैसे माँगूँ ? मुझे कौन देगा ? मैं हूँ एक विधवा माँ का बेटा, मेरी समाज में कौड़ी जितनी भी क़ीमत नहीं है । मेरी स्थिति तो इतनी कंगाल है कि इस नडियाद में मुझे कोई पाँच रुपये भी कर्ज़े में नहीं देगा ।'

इस पर श्रीसद्गुरु ने उन्हें निःसंदिग्धता से कहा, 'तू माँगना शुरू कर । मैं तेरे पीछे हूँ । लोग तुझे देंगे ।'

'देनेवालों का ऋण कैसे चुकाऊँ ?' :

श्रीमोटा ने करुणानिधान श्रीसद्गुरु को फिर से पूछा, 'लेकिन मैं देनेवालों का ऋण कैसे चुकाऊँ ?'

श्रीसद्गुरु केशवानंदजी महाराज ने दृढ़ स्वर में वचन दिया, 'वह जिम्मेदारी मेरी । तुझे देनेवालों का ऋण मैं अदा करूँगा, मैं उन्हें छगुना कर के दूँगा ।'

'तू समाज से एक करोड़ रुपये जमा कर के समाज को ही लौटा दे, लेकिन मौलिक कार्य कर । तूने जनसेवा बहुत की है, इसलिए रोटी यह तेरी 'पेन्शन' है, तू रोटी के लिए चिंता न करना ।'

आदेश देकर और पूर्णतः आश्वस्त कर के श्रीसद्गुरु केशवानंदजी महाराज अदृश्य हो गये ।

श्रीसद्गुरु के आदेशपालन के लिए असीम पुरुषार्थ :

अपने श्रीसद्गुरु के आदेश का शब्दशः और संपूर्ण पालन करना यह श्रीमोटा का सर्वस्व था । उसके लिए उन्होंने अपना पूर्ण पुरुषार्थ दाँव पर लगाया । वैसे तो उनके बचपन से ही उनके जीवन में सतत और केवल एक पुरुषार्थ ही दिखायी देता है । कभी वे थम गये हों, विश्राम कर रहे हों, ऐसा कभी भी दिखायी नहीं दिया ।

श्रीसद्गुरु के आदेशानुसार संकल्पित धनराशि जमा करना यही उनके जीवन का लक्ष्य बन गया । फिर उन्होंने अपने लाक्षणिक ढंग में ज़ाहिर किया, 'कोई आमंत्रित करता हो और दक्षिणा देता हो, तो उसके यहाँ मुझे एक दिन भोजन करने जाना है ।'...फिर तो उन्हें घर-घर से निमंत्रण प्राप्त होने लगे ।

शुरू-शुरू में दक्षिणा का अंक छोटा था, लेकिन धीरे-धीरे जनमानस को उनकी हृदयस्थ भावना स्पर्श करती गयी और भेंट की जानेवाली धनराशि में वृद्धि होती गयी । अपने अंतिम दिनों में वे कम-से-कम एक हजार रुपयों की दक्षिणा न हो तो जाते नहीं थे । लेकिन चरणवंदना करते समय थाली में जो रकम जमा होती, वह कई बार पाँच-दस गुना भी होती थी ।

अपने शरीर में निवास करनेवाली असंख्य व्याधियों की उपेक्षा कर के श्रीमोटा रोज़ दो-सौ-ढाई सौ मील भी मोटर में घूमकर रुपये जमा करते गये । देनेवाला जो हजारों हाथों का मालिक, उसकी प्रेरणा से लोगों ने स्वेच्छापूर्वक, प्रेमपूर्वक और आनंदपूर्वक रुपयों के ढेर उनके चरणों में अर्पण किये ।

फिर निधिसंग्रह के निमित्त से श्रीमोटा ने जन्मदिन, दीक्षादिन और साक्षात्कारदिन मनाने की भी अनुमति दे दी । इन उत्सवप्रसंगों में स्मृतिग्रंथ भी प्रकाशित होने लगे ।

श्रीमोटा की दृष्टि से महत्त्व उत्सवों का नहीं था, महत्त्व था केवल निधिसंग्रह का ।

हजारों-लाखों लोगों की सहायता से लोककल्याण रूपी गोवर्धन पर्वत श्रीमोटारूपी श्रीकृष्ण ने अपनी अद्वैत की नींवरूपी 'अँगुली' पर उठाया और फिर उठाये ही रखा, फिर कभी उसे नीचे नहीं रखा ।

अपने देहत्याग के पहले ही 'एक करोड़ दस लाख' इतनी बड़ी धनराशि समाज से इकट्ठा कर के उन्होंने समाज को ही मौलिक कार्यों के लिए दे दी ।

गहनों से सजे हुए श्रीमोटा :

अहमदाबाद में, अंतिम उत्सव में श्रीमोटा ने आह्वान किया, 'आज तक आप मुझे मुक्त हस्त से भावपूर्वक देते आये हो, लेकिन आज तो मुझे आपके गहने चाहिए । इसलिए बहनों, आप तैयार रहना । मैं आपसे ये माँग रहा हूँ, क्योंकि आपका हृदय इसमें है । मुझे तो आपका हृदय चाहिए ।'

उनके इन शब्दों से सभी द्रवित हो गये और फिर तो कई भगिनियों ने अपने गहने उतारकर उनके चरणों में सौंप दिये । उसके बाद भाव से और प्रेम से सौंपे हुए वे गहने पहनकर श्रीमोटा जब अपने स्थान पर विराजमान हुए, तब उन चम्चम् करनेवाले गहनों से सुशोभित होकर सुंदरता से सजे हुए थे ।

अँगुलियों में सोने की अँगूठियाँ, हाथों में कंगन, बाहु में बाजुबंद, कानों में कर्णफूल, गले में तरह-तरह के हार, पैरों की अँगुलियों में छल्ले...ऐसे अनेकविध प्रकार के सोने के आभूषणों से

सजकर वे सुंदर दिख रहे थे । गहने यह सिर्फ़ स्त्रियों का ही ठेका नहीं है, यह उन्हें देखकर प्रतीत होता था, सिद्ध होता था ।

शायद उस वक्त सभी को लगा होगा कि, 'गहने गये ।...' लेकिन श्रीमोटा को उनका लालच नहीं था । उन्होंने वे सारे गहने जिन-जिनके थे, उन्हें लौटा दिये और उन गहनों की क़ीमत जितने रुपये उनसे ले लिये ।

उदारतापूर्वक दान देनेवाले इन सभी के समर्पण और त्याग के कणों से ही वह गोवर्धन पर्वत उठाया गया था और उसके प्रेरक थे श्रीमोटा और उनके श्रीसद्‌गुरु । श्रीमोटा ने बाद में देहत्याग किया, फिर भी उनका कार्य तो अब भी अखंडित रूप से चल ही रहा है ।

श्रीमोटा ने स्थापन किये हुए हरि:ॐ आश्रमों द्वारा समाज को सेवादान रूप में ३१ मार्च १९९५ तक दी गयी धनराशि साढ़े नौ करोड़ रुपये जितनी हो गयी है । और कालचक्र जैसे-जैसे घूमता जाएगा वैसे-वैसे यह अंक तो बढ़ते ही जानेवाला है। पूज्यश्री अनेक बार कहा करते थे : 'देखना । मेरा शरीर जाने के बाद आश्रम के दरवाज़े पर पैसों का ढेर जम जाएगा ।' उनका भविष्यकथन आज यथार्थ साबित हुआ है ।

उनका यह दानकुंभ यानी एक अक्षयपात्र ही है ।

✤ ✤ ✤

॥ हरि:ॐ ॥

८५. 'मुझे समाज को बैठा करना है !'

'मारे समाजने बेठो करवो छे ।'-यह श्रीमोटा का सपना था।

उन्होंने अपने शब्दों में कहा है, **'सांप्रत' समाज में जो स्वार्थवृत्ति सर्वत्र दिखायी देती है, वह दूर होकर समाज के**

उत्थान के लिए जब तक प्रयत्न होते नहीं हैं, तब तक इस पाये हुए स्वराज्य का कोई अर्थ नहीं । इस लूले-पंगु समाज में मर्दानगी, साहस, हिंमत, शौर्य, निष्ठा, उदारता, धैर्य, सहनशीलता, प्रामाणिकता, दृढ़ता, झोंक देने की वृत्ति ऐसे गुण उत्पन्न होते नहीं हैं, तब तक केवल अस्पताल, मंदिर और धर्मशालाओं को मदद कर के या उन्हें चलाकर कुछ उपयोग नहीं होगा, उसका कोई अर्थ नहीं ।'

समाज को कार्यप्रवण बनाने के लिए और उसमें नयी प्राणचेतना डालने के लिए श्रीमोटा अविरत कार्यशील रहे, सतत पुरुषार्थ करते रहे ।

अपना स्वप्न प्रत्यक्ष करने के लिए उन्होंने खूनपसीना एक किया । अपना तन-मन अर्पण कर के उठते-बैठते, सोते-जागते, दिन-रात उन्होंने अपनी अंतिम साँस तक स्वास्थ्य-अस्वास्थ्य की फ़िक्र किए बिना अकथ और अथक परिश्रम किए ।

'गुण' और 'भाव' इनका विकास न हो तो पंगुपन:

श्रीमोटा की दृढ़ धारणा थी कि जिस समाज में 'गुणों' का और 'भाव' का विकास न हुआ हो, वह आध्यात्मिक दृष्टि से पंगु समाज है।

'भाव' और 'गुणों' के विकास के लिए उन्होंने तरह-तरह की संस्कारवर्धक-भक्तिवर्धक किताबें, बालसाहित्य, चरित्र, ज्ञानकोश आदि का प्रकाशन और प्रसार किया ।*

'भाव' का महत्त्व स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं, 'अगर भाव न हो, तो संबंधों का कोई अर्थ नहीं । संबंध जीवंत-जागृत' होते हैं तो केवल 'भाव' के कारण ही ।

---

* विस्तृत जानकारी के लिए 'खंड दो-प्रकरण बारह' देखिए ।

गुण और भाव का महत्त्व :

श्रीमोटा ने कहा है, 'जीवनविकास के लिए हृदय में हृदय से, उत्कट-से-उत्कट भाव प्रगट होते ही गुण अपने-आप प्रगट हुए बिना रहते नहीं, ऐसा मेरा स्वयं का निजी अनुभव है। गुणों का महत्त्व है, यह बिलकुल सच है । लेकिन हमें गुणों से भी, जीवनविकास के प्रति-यानी कि हृदय का भाव प्रगट करने के प्रति, विशेष महत्त्व प्रगट करना है। क्योंकि भाव में से ही उस-उसके योग्य सब कुछ अपने-आप प्रगट होते जाते हैं, यह भी अनुभव की ही बात है।'

जागृति-योग

इस तरह एक तरफ भाव को महत्त्व दे-देकर गुणों को प्राप्त करना है, और साथ-साथ भाव प्रगट हो सके ऐसी साधना के अभ्यास में अपना चित्त सतत एकसी एकतानता से पिरोया हुआ रहे, इस प्रकार की जागृति की भी अति आवश्यकता है । इसे ही मैं 'जागृति-योग' ऐसा नाम देता हूँ। जागृति 'जीवंत-जागृत' प्रगट रहती हो, तो ही उस प्रकार के प्रयत्न संभव हैं ।

'जागृति बिना के प्रयत्न, शायद होते भी हों, तो भी उनका योग्य परिणाम नहीं आ सकता है।'-इस तरह जागृति का अत्यधिक महत्त्व श्रीमोटा ने स्पष्ट किया है ।

'मैं स्त्रीदेह में जन्म लेनेवाला हूँ ।'

श्रीमोटा ने बताया है, 'मुझे स्त्रियों के लिए स्त्रियों में रहकर कार्य करना है । इस पुरुषदेह में रहकर मैं उनके लिए 'करना चाहिए उतना' कार्य कर नहीं सका, इसलिए मैं स्त्रीदेह में जन्म लूँगा, लेकिन तुरंत ही नहीं।'...उन्होंने आगे बताया है कि इस जन्म के उनके भक्तों को भी वे साथ ले आनेवाले हैं और इसीलिए वे कुछ काल के बाद ही यह स्त्रीजन्म लेंगे ।

'वह बच्चों को जन्म देनेवाली स्त्री नहीं, बल्कि अपार तेजस्वी स्वरूपवान आकर्षित शरीर होगा । जिससे खासकर 'पुरुष जीव' मेरे रूप से लालायित होकर मेरे पास आयेंगे, उनको मैं भगवान की शक्ति से भक्तिमार्ग पर मोड़ दूंगाँ ।'

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

८६. प्रेमस्पर्श

एक बार आँखें लालबुंद हो गया हुआ पिछड़ी जाति का एक आदमी क्रोध से थरथर काँपते हुए श्रीमोटा के पास आया । वह बीच-बीच में उनके पास आया करता था । आकर श्रीमोटा के चरणों में प्रणाम कर के वह कड़वाहटभरी आवाज में उन्हें बताने लगा, '**मोटा**, आज मैं अपनी पत्नी को मार डाले बिना रहनेवाला नहीं हूँ, अब मुझे उसकी कोई जरूरत नहीं ।'

'अरे भले आदमी, ऐसा हुआ क्या ? बताएगा तो ही ख़्याल में आएगा न ?'-श्रीमोटा ने बहुत शांति से और प्रेम से उससे पूछा।

'क्या बताऊँ **मोटा** ? बताने को भी शर्म आती है । उसके राई-राई जितने टुकड़े किये तो भी पाप नहीं लगेगा, मेरा सर्वनाश किया उसने ।'

'ठीक है, मार डालना, करना टुकड़े-टुकड़े, लेकिन एक बात पूछूँ ?'

'हाँ, पूछो न ।'

'तेरे बच्चे हैं ?'

'हाँ ।'

'कितने ?'

‘चार ।’

‘तेरी घरवाली उन्हें ठीक से खिलाती-पिलाती है ?’

‘हाँ तो, देती है, लेकिन उससे क्या हुआ ?’

‘तेरे बच्चों का ठीकठाक से लालन-पालन करती है ?’

‘हाँ, वह तो करेगी ही, उसमें विशेष क्या ?’

‘अब तू ही देख, तेरे इतने बच्चे हैं, और उनको वह खिलाती-पिलाती है, घर चलाती है, तो फिर अब और क्या चाहिए ?’ श्रीमोटा ने प्रेम से पृच्छा की ।

‘लेकिन **मोटा**, अगर वह मुझ से वफ़ादार नहीं है तो वह कैसे सह लूँ ?’-उसने जवाब दिया । उसका गुस्सा अब धीरे-धीरे ठंडा हो रहा था ।

‘तेरा कहना ठीक है भैया’, वह स्वयं विचार करे इसलिए शब्दों पर भार देकर श्रीमोटा आगे बोलने लगे, ‘लेकिन शांति से सोच । अगर तू गुस्सा होनेवाला न हो, तो एक बात पूछूँ ?’

‘पूछो **मोटा**, बेशक पूछो ।’

‘तो फिर, अब मुझे बता कि आजकल तूने एक भी बुरा काम नहीं किया ?’

‘हाँ भगवन्, किया है,’ गर्दन झुकाकर नरम पड़ी हुई आवाज़ में उसने कहा ।

‘तो फिर, अब तू उसे माफ़ कर देना, फिर भगवान सभी को माफ़ कर देगा ।’ श्रीमोटा ने उसके हृदय को छू लिया ।

कुछ भी बोले बिना उसी तरह गर्दन झुकाकर वह बैठा रहा। उसकी आँखो से आँसुओं की धाराएँ बहने लगी । श्रीमोटा ने उसका मन खाली होने तक रोने दिया ।

वह शांत हो जाने के बाद सेब के दो टुकड़े देते हुए श्रीमोटा

ने उसे कहा, ‘एक अपनी घरवाली को देना और एक तू खाना ।’ ‘**मोटा** ने दी हुई प्रसादी है’ ऐसा अपनी घरवाली से कहना और दोनों मिलकर खाना । और हाँ, ‘तूने उसे माफ़ किया है’ यह उसे बताने की जरूरत नहीं । जा, भगवान का नाम लेते रहना ।

श्रीमोटा के पाँव पड़कर उसने उनको प्रणाम किया । श्रीमोटा ने प्रेम से उसकी पीठ थपथपायी । आँखें पोंछते-पोंछते, शांत होकर वह घर चला गया ।

श्रीमोटा के प्रेमस्पर्श से हृदयपरिवर्तन होकर एक घर उजड़ जाने से बच गया था ।

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

८७. प्रेमी संत

जुल्मी ब्रिटिशरों के अत्याचार का विरोध करने के लिए गांधीजी ने आज़ादी के लिए असहकार की ज़ंग छेड़ी । उनका आह्वान स्वीकारकर वडोदरा कालिज सब से पहले छोड़ा दो विद्यार्थीयों ने एक श्रीमोटा और दूसरे श्रीपांडुरंग वळामे (नारेश्वर के श्री रंग अवधूतजी) । दोनों बाद में ‘गुजरात विद्यापीठ’ में भर्ती हुए, लेकिन वहाँ भी वे ज़्यादा समय तक टिक न सके ।

श्री पांडुरंग वळामे ने बाद में अध्यापन कार्य स्वीकार किया, लेकिन उसमें भी समाधानप्राप्ति न होने से उच्च ध्येय से प्रेरित होकर उन्होंने घर के बाहर कदम रखा । भगवान दत्तात्रेय की आराधना कर के उनके कृपाशीर्वाद प्राप्त करने के लिए और साक्षात्कारप्राप्ति के हेतु से उन्होंने घरबार छोड़ दिया । गरुड़ेश्वर के दत्तावतारी पूज्य श्रीवासुदेवानंद सरस्वती महाराज से उन्हें दीक्षा प्राप्त

हुई और कालक्रमानुसार साधना फलीभूत होकर उन्होंने अपना लक्ष्य पा लिया । बाद में वे नारेश्वर में श्रीरंग अवधूत महाराज इस नाम से विख्यात हुए । गुजरात भूमि में और बाहर भी 'अवधूतजी' इस लाड़ले नाम से उनकी कीर्ति दिगंत पहुँची । उन्होंने गुरुचरित्रसाररूप लिखी हुई 'दत्तबावनी' के कारण तो वे सब के हृदयसिंहासन पर आरूढ़ हो गये ।

ऐसे इन अवधूतजी का और श्रीमोटा का गहरा हृदयसंबंध था। दोनों एकदूसरे से समय-समय पर मिला करते थे ।

एक बार श्रीमोटा को मालूम हुआ कि अवधूतजी सुरत आये हुए हैं । श्रीमोटा ने भी उस वक्त तक अपना इप्सित साध्य कर के श्रीसद्‌गुरु के आदेश से मौनमंदिरों की रचना की थी । उस समय वे सुरत के ही हरि:ॐ आश्रम में रहा करते थे । अपने कुछ स्वजनों के साथ वे श्रीरंग अवधूतजी से मिलने निकल पड़े ।

अवधूतजी के आगमन की खबर होते ही लोगों के झुँड़ उनके दर्शन के लिए उमड़ पड़ते । चिउँटियों की तरह लोग भीड़ करते। स्वयंसेवक लोगों को कतारों में खड़ा कर के बारी-बारी से दर्शन के लिए छोड़ा करते ।

श्रीमोटा जब पहुँचे तब भी हजारों की संख्या में जनसमुदाय इकट्ठा हुआ था। इतनी भीड़ में सहजता से रंगअवधूतजी तक पहुँचना संभव न था। श्रीमोटा की सादी पोशाक के कारण और आडंबररहीन रहनी के कारण स्वयंसेवक जान न पाये कि ये कोई बड़े संत हैं। खुद-स्वयं का परिचय कराने की श्रीमोटा की वृत्ति बिलकुल नहीं थी। फिर भी उनके आप्तजनों में से एक रहा न गया। उसने अपनी बुद्धि चलाकर एक तरकीब सोची और चिट्ठी लिखकर एक स्वयंसेवक को वह अवधूतजी को देने की प्रार्थना की ।

इतनी भीड़ में अपना कुछ चलनेवाला नहीं है ऐसा सोचकर श्रीमोटा तुरंत ही आश्रम लौट आये। अवधूतजी तक चिट्ठी पहुँचते-पहुँचते ही घंटा-डेढ़ घंटा बीत गया । चिट्ठी पढ़ते ही अवधूतजी ने श्रीमोटा को बुलावा भेजा, लेकिन वे तो कभी के चले गये थे। इसकी जानकारी होते ही अवधूतजी को बहुत अफ़सोस हुआ और उन्होंने तुरंत ही श्रीमोटा को ले आने के लिए एक मोटर और अपने एक भक्त को हरि:ॐ आश्रम में भेजा। फिर उस मोटर से श्रीमोटा का आगमन हुआ और वे अवधूतजी के पास पहुँच गये ।

श्रीमोटा को देखते ही श्रीरंग अवधूतजी ने उन्हें आलिंगन किया। दोनों को बहुत आनंद हुआ और भरपूर बातचीत और सत्संग हुआ।

बातों-बातों में श्रीमोटा ने अवधूतजी से कहा, 'बापजी, आपको मिलने आना यह तो बहुत ही कठिन है। दर्शनार्थी भक्तों की इतनी बड़ी कतार होती है कि हमारे जैसों का तो पता ही न चले ।' इस पर खिलखिलाकर हँसते हुए अवधूतजी बोले, 'लेकिन **मोटा**, कतार आदमियों के लिए है, संतों के लिए नहीं । फिर उन्होंने स्वयंसेवक को बुलाकर बताया, 'देखो, मुझे मिलने आनेवाले लोगों को भले ही कतार में खड़ा करो, लेकिन संतों को कभी भी कतार में खड़ा न करना ।' स्वयंसेवक 'हाँ' कहकर चला गया ।

'श्रीमोटा वहाँ आने को काफ़ी समय बीत चुका था । बिदाई लेते हुए श्रीमोटा ने अवधूतजी से कहा, 'बापजी, अब मैं रज़ा लेता हूँ । मेरे कारण बेचारे दर्शनार्थियों को दर्शन मे बाधा न हो ।'

छोटे बालक की तरह मुक्त हास्य करते हुए अवधूतजी ने मार्मिक उद्‌गार प्रगट किये, '**मोटा**, इतने लोग क्या मेरा दर्शन करने आते हैं ? वे माथा देने को नहीं, बल्कि लेने को आते हैं ।' इतना

कहकर अवधूतजी फिर से हँसने लगे । अवधूतजी की हँसी को श्रीमोटा ने भी साथ दिया ।

फिर श्रीमोटा आश्रम लौट आये ।

कालप्रवाह बहता गया ।

अपने जीवन की अंतिम कालावधि में एक बार श्रीरंग अवधूत-महाराज श्रीमोटा से मिलने नडियाद आश्रम में आये । सत्संग, बातचीत हुई और फिर थोड़ी गंभीरता से ही श्रीअवधूतजी श्रीमोटा को बोले, 'चलो **मोटा**, मैं तुमसे भी मिल चुका, मिलना हो गया ।'

उनके शब्दों के पीछे गूढ़ता का और निरालेपन का आभास होकर श्रीमोटा की आँखों में आँखें डालकर मंद-मंद मुस्कराते हुए श्रीरंग अवधूतजी बोले, 'मेरी गाड़ी अब हरिद्वार जाने की तैयारी में है ।'

'तो फिर मुझे भी अपने साथ ले चलो बापजी'-श्रीमोटा ने कहा ।

झट् से श्रीअवधूतजी बोले, 'नहीं, नहीं । तेरे लिए देरी है ।' मैं जाकर तेरी जगह बनाऊँगा और बाद में बुलाऊँगा, तब तू आना ।

'सर्वत्र घूमकर श्रीमोटा का आश्रम श्रीअवधूतजी ने गौर से देख लिया । मौनमंदिरों के कमरे देखकर बोले, 'तूने तेरे मौनमंदिरों का अच्छा-खासा आयोजन किया है, जो आए उसे अंदर बंद करने का । ईश्वरप्राप्ति के लिए जो पुरुषार्थ करेगा, वह पाएगा, वरना, 'ठन् ठन् गोपाल !...खाली हाथ ही बाहर आना पड़ेगा ।'

इस तरह की हँसी-मज़ाक में-फिर भी अर्थपूर्ण बातचीत वे सदा ही किया करते थे ।

करीब-करीब ढाई घंटे श्रीरंग अवधूतजी नडियाद आश्रम में थे । आश्रम से लौटने के कुछ दिनों बाद वे हरिद्वार गये । गये तो गये । फिर लौटकर आये ही नहीं । वहाँ निरंजनी अखाड़ा मार्ग

आर्यनिवास में पावन गंगामैया के तट पर उन्होंने आनंदपूर्वक देहत्याग किया ।

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

८८. वापसी की तैयारी

अहमदाबाद में १९७५ का रामनवमी का उत्सव टाऊन हॉल में मनाया गया । आश्रम की अनेकविध योजनाओं के लिए लोगों ने उदारता से निधि दी । उस अवसर पर अपना मनोभाव व्यक्त करते हुए श्रीमोटा ने बताया, 'अब कोई उत्सव नहीं होगा । में आश्रम के बाहर नहीं निकलूँगा । **मुझ से मिलने कोई भी आश्रम में न आए । आने की इच्छा अगर हो ही जाए, तो उस सफ़र के किराये-जितने रुपये मनिऑर्डर से भेज देना, समाजकल्याण के कार्य में वे उपयोगी होंगे ।'**

यह सुनने पर सभी द्रवित हो गये । उनकी तबियत इतनी हद तक बिगड़ी होगी इसका किसीको ख़्याल भी नहीं था ।

शरीर की इस जर्जर अवस्था में अब अपना शरीर लोककल्याण के कार्यों के लिए उपयोगी नहीं रहा है, इसका श्रीमोटा को एहसास होने लगा था ।

'१९७६ की गुरुपूर्णिमा को मैं अज्ञात स्थान में जानेवाला हूँ, इसलिए कोई भी मुझ से मिलने न आए' ऐसा श्रीमोटा ने बताया । दक्षिण भारत में जाने की उनकी इच्छा थी, लेकिन ऐन वक्त पर उनकी तबीअत फिर से बिगड़ गयी और जाने का विचार छोड़ देना पड़ा, सुरत में ही रुकना पड़ा । उनके रुकने से अनायास ही उनका सान्निध्य प्राप्त होने पर ११ जुलाई के दिन गुरुपूर्णिमा का पूजन लोगों ने वहीं सुरत में ही किया ।

१२ जुलाई, १९७६ के दिन श्रीमोटा ने सुबह में ही, मोटर में बैठकर सुरत से नडियाद प्रस्थान किया । पहुँचते-पहुँचते शाम के सात बज गये । मुसलाधार बारिश से सभी के कपड़े पानी में भीग गये और सामान भी पूरी तरह भीग गया । सभी थककर चूरचूर हो गये ।

श्रीमोटा को कई बीमारियाँ थी । किस वक्त कौन-सी बीमारी अपना सर उठाएगी वह कहा नहीं जा सकता था, इसलिए बहुत-सारी दवाइयाँ साथ में ही रखनी पड़ती थीं ।

जब-जब श्रीमोटा सुरत से नडियाद आश्रम में चले आते, तब-तब विद्यानगर से डॉक्टर कांताबहन और उनके पति रामभाई भी उनकी निगरानी के लिए साथ आया करते थे । इससे वे उनकी सेवा भी कर पाते थे और जरूरत पड़ने पर आवश्यक दवाइयाँ भी दे सकते थे ।

इस बार नडियाद आने पर श्रीमोटा बहुत अस्वस्थ थे, उनकी तबीअत कुछ ज़्यादा-ही नरम लग रही थी । इसका क्या कारण होगा यह उन दोनों के भी ख़्याल में नहीं आया ।

अपने को क्या हो रहा है यह खुद-स्वयं बता देने की श्रीमोटा की वृत्ति नहीं थी । इसलिए मामला तो और भी कठिन था । सफ़र के श्रम के कारण ही यह होता होगा ऐसा उन्होंने मान लिया ।

आज श्रीमोटा ने भोजन भी बहुत कम लिया था । 'पेट में बहुत पीड़ा हो रही है, सहा नहीं जाता,' ऐसा वे बीच-बीच में बताया करते थे । पेट की ही कुछ तक़्लीफ़ थी यह निश्चित । कांताबहन की दवाइयों से फायदा भी होता था, लेकिन कुछ देर के बाद फिर से तक़्लीफ़ शुरू हो जाती थी ।

इसी तरह जुलाई की १३, १४ और १५ तारीख भी उलट गयीं ।

१६ जुलाई से श्रीमोटा को पेशाब की तक़्लीफ़ शुरू हुई । पेट में जोरों से पीड़ा हो रही थी । 'पेशाब हो जाएगा' ऐसा सतत लग रहा था, लेकिन बहुत प्रयास करने पर भी निकलता नहीं था ।

श्रीमोटा जिस खाट पर सोये हुए थे, उसकी बगल में ही स्टूल पर पेशाब के लिए इन्तज़ाम किया था । वे उठकर बैठ गये और प्रयत्न किये, फिर भी पेशाब नहीं हुआ । फिर उन्हें दोनों हाथों से पकड़कर खड़ा किया गया और बाद में उन्होंने फिर से कोशिश की, वह भी नाकामयाब रही । कैसे भी परिणाम शून्य ही आ रहा था । एक बूँद भी पेशाब आता नहीं था । यह सोना, बैठना, उठना और कोशिश करना दिनभर चलता रहा । परिस्थिति काफ़ी गंभीर हो गयी है, यह साफ़ दिखायी दे रहा था ।

छत्तीस घंटे होने पर भी पेशाब का एक बूँद तक निकला नहीं, यह देखकर कांताबहन अस्वस्थ हो गयीं । वे डॉक्टर थीं, इसलिए जानती थीं कि पेशाब अटक जाने पर उसके अंदर रहे हुए विषैले घटकद्रव्य खून में से सारे शरीर में फैलकर 'युरेमिया' होकर 'कोमा' में जाने की संभावना रहती है । वह टालने के लिए किसी भी हालत में पेशाब होना अनिवार्य था, अन्यथा श्रीमोटा की जान को खतरा था । उन्होंने गंभीरतापूर्वक श्रीमोटा से पूछा, '**मोटा**, बड़े डॉक्टरों को बुलाएँ ?

श्रीमोटा की जबान पर तो एक ही शब्द था-'ना'...वे भले ही इनकार करे, फिर भी डॉक्टर को ले आना अनिवार्य था । आखिर कांताबहन आश्रम के कर्ता-हर्ता और 'श्रीमोटा के अंतरंग साथी' नंदुभाई से मिलीं और उन्हें सब कुछ विस्तारपूर्वक बताकर

श्रीमोटा की स्थिति का गांभीर्य समझाकर विशेषज्ञ डॉक्टर को बुलाने की अनुमति माँगी । उन्होंने संमति दे दी ।

नडियाद के सुप्रसिद्ध युरॉलॉजिस्ट डॉ. वीरेंद्र देसाई के बारे में पूछताछ करने पर मालूम हुआ कि वे बाहरगाँव गये हुए थे ।

आखिर नडियाद के ही दो डॉक्टर्स–डॉ. विनोदचंद्र अमीन और डॉ. पटेल आश्रम में आने को निकल पड़े । शेढ़ी नदी में बाढ़ आने से सड़क से आश्रम तक का रास्ता बुरी तरह उखड़ गया था और खराब हो गया था, फिर भी किसी–न–किसी तरह वे दोनों आ पहुँचे । दोनों आये सही, लेकिन पेशाब निकालने का कोई साधन साथ लाये नहीं थे, इसलिए उनका आना व्यर्थ साबित हुआ और पूज्यश्री की तबीअत और बिगड़ गयी ।

इत्तफ़ाक़ से और भगवद्कृपा से इस विषय के विशेषज्ञ डॉक्टर वीरेंद्र देसाई दूसरे दिन गाँव से लौट आये और श्रीमोटा के शरीर की हालत की खबर प्राप्त होते ही, पेशाब निकालने के सभी साधन साथ लेकर, पूरी तैयारी से, शाम को करीब चार बजे आश्रम आने निकल पड़े । बाढ़ का पानी और भी बढ़ने से सड़क का रास्ता पूर्णतः बंद हो गया था, इसलिए खेतों की कीचड़ हटाते–हटाते रास्ता बनाकर वे बड़ी मुश्किल से आश्रम में आ सके ।

आने पर डॉक्टर वीरेंद्रभाई ने हाथ–पाँव धोकर पहले श्रीमोटा को प्रणाम किया और फिर विनम्रता से पूछा, '**मोटा**, अगर आप अनुमति दें, तो आप को कुछ भी तक़लीफ़ न हो इस रीति से, कॅथेटर से दो मिनिट में ही पेशाब निकाल लूँगा और फिर आपको आराम हो जायेगा । बाद में आप जो कहेंगे वैसा मैं करूँगा ।'

सब 'ईश्वरेच्छा' मानकर श्रीमोटा ने डॉक्टर को अनुमति दे दी ।

दो मिनट में ही डॉक्टर ने कॅथेटर अंदर डाला और तुरंत ही थैली में पेशाब धड़ाधड़ जमा होने लगा । करीब ढाई–तीन लीटर जितना, अटका हुआ पेशाब बाहर आ गया और श्रीमोटा को कुछ आराम हुआ । पेटपीड़ा भी कम हो गयी । 'क्या करना', 'क्या न करना' इसके बारे में सभी सूचनाएँ देकर 'कल फिर आऊँगा' ऐसा कहकर डॉक्टर ने बिदाई ली ।

पेशाब निकालने से श्रीमोटा को आराम तो हो गया, लेकिन उसी वक्त उन्हें अपने श्रीसद्गुरु का आदेश याद आ गया–'जब तू परवश हो जाएगा और लाचार परिस्थिति में होगा, तब तू तेरे शरीर को त्याग देना ।' कॅथेटर का इस्तेमाल करना यह अनैसर्गिक ही था, परवशता ही थी ।

अब क्या करना है यह श्रीमोटा से निश्चित हो गया–'अब शरीर रखने का कोई प्रयोजन नहीं रहा । श्रीसद्गुरु को जितना इस शरीर द्वारा करवाना था, वह पूरा हो गया । उनकी आज्ञानुसार आश्रम स्थापन किया, समाज को बैठा करने का प्रयास किया । वैसे तो मेरी ऐसी कोई भी इच्छा नहीं थी, फिर भी केवल 'कर्म' इस भावना से ही करता आया । लेकिन आज वह भी पूर्ण हो गया। इस शरीर का प्रयोजन अब ख़्त्म हुआ । पंचमहाभूत का यह शरीर अब उन्हें सौंपना ही चाहिए ।'

शरीर छोड़ने का श्रीमोटा का निश्चय वज्रलेप हो गया ।

दूसरे दिन, १९ जुलाई के रोज, सुबह में स्वहस्ताक्षर में लिखा हुआ काग़ज़ श्रीमोटा ने नंदुभाई को सुपूर्द किया । उसमें लिखा हुआ था :

जो–जो कोई संबंधित है उनके लिए:

'मैं, चुनीलाल आशाराम भगत उर्फ मोटा, रहवासी हरि:ॐ'

आश्रम नडियाद, इसके द्वारा जाहिर करता हूँ कि मेरी राज़ीखुशी से, मैं स्वयं मेरी जड़ देह को छोड़ना चाहता हूँ। यह देह कई रोगों से घिरी हुई है और अब लोककल्याण के काम में आए ऐसी रही नहीं है। ये रोग दूर होने की भी आशा नहीं है, इसलिए आनंदपूर्वक शरीर छोड़ना ही उत्तम है और 'उसके लिए योग्य क्षण प्राप्त हुआ है, ऐसा लगते ही' मैं वैसा करूँगा।

मेरे शव का अग्निसंस्कार एकान्त में, शांत जगह पर मृत्युस्थान के नज़दीक ही करना। और वह भी आप छ लोगों की उपस्थिति में ही करना। बहुत-सारे लोगों को इकट्ठा नहीं करना, ऐसा मैं मेरे सेवकों को फर्माता हूँ। मेरी अस्थियाँ भी संपूर्णतः नदी में डाल देना।

मेरे नाम का ईंट-चूने का किसी प्रकार का स्मारक नहीं बनाना। मेरे मृत्युनिमित्त जो कुछ निधि जमा होगी, उसका उपयोग गाँवों की पाठशाला के कमरे बाँधने के लिए उपयोग में लाना।

चुनीलाल आशाराम भगत उर्फ मोटा।'

दि. १९-७-७६

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

८९. देहत्याग

श्रीमोटा को २२ जुलाई के रोज, सुबह में नडियाद से फाजलपुर ज़ाना था।

२१ जुलाई को शाम के वक्त श्रीमोटा ने उनकी सेवा में रहनेवाले राजूभाई को बुलाकर बताया, 'मुझे कुर्सीगाड़ी में बिठाकर सारे आश्रम में घुमाना।'

आज्ञानुसार राजुभाई ने उन्हें कुर्सीगाड़ी में बिठाया। गाड़ी

चलने लगी। आश्रम की सभी वस्तुओं को श्रीमोटा अपने दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम कर रहे थे। वनस्पति, लताएँ, पेड़, पंछी, कमरे सभी की मानो वे बिदाई ले रहे थे। यह सब क्या हो रहा है, यह राजूभाई समझ नहीं पाये, फिर भी कुछ तो अलग घट रहा है, इसका किंचित् आभास जरूर हुआ।

अंत में, श्रीमोटा जिस टब में रोज़ स्नान किया करते थे, उसके बारे में उन्होंने राजूभाई को सूचना दी, 'देख, यह टब वैकुंठकाका का है। कल जल्द-से-जल्द उन्हें पहुँचा देना।'

राजूभाई तुरंत बोल उठे, 'लेकिन **मोटा**, हम लौट आएँगे तब जरूरत नहीं पड़ेगी ?'

थोड़ी सी सख़्त आवाज में डाँटते हुए श्रीमोटा बोले, 'यह पूछताछ का झंझट छोड़कर जो मैं कहता हूँ वैसा कर ना। आएँगे तब फिर से मँगवा लेंगे।'

विषय वहीं ख़त्म हुआ और श्रीमोटा को उनके रूम में ले जाया गया। २१ जुलाई की रात गुज़र गयी।

२२ जुलाई के रोज़ प्रातः दो-ढ़ाई बजे से ही श्रीमोटा कांताबहन को उठाने लगे। स्वयं भी, सब कुछ जल्द ही निबटाकर तैयार हो गये। सब लोग तैयार हो गये और गाड़ी में श्रीमोटा का सामान रखकर उनके बुलावे की राह देखने लगे। सारी रात पागल की भाँति बारिश हो रही थी और अब भी जलधाराएँ मूसलाधार बरस रही थीं। इतने में जोरो से मेघगर्जना होकर कहीं बिजली गिरी। सृष्टि मानों क्रुद्ध हो गयी थी और उसका तांडवनृत्य शुरू था। लक्षण कुछ ठीक नहीं लगते थे। सब लोग चिंतित हो गये।

इतने में जोर से आवाज़ देकर श्रीमोटा ने राम और राजूभाई को बुलाया और बताया, 'मुझे तिरपाल के नीचे से ले चलो और

तुरंत मोटर में बिठा दो । झट से । त्वरा करो, थोड़ी भी देर मत करो ।

चार व्यक्तियों ने तिरपाल को छाते की तरह पकड़ रखा और उसके नीचे से श्रीमोटा की कुर्सीगाड़ी को मर्सिडीझ कार तक ले जाया गया, त्वरा कर के झट से गाड़ी में बिठाया भी गया ।

प्रात: के पाँच बज चुके थे । पूज्यश्री के साथ गाड़ी में रामभाई और नंदुभाई बैठ गये । डॉ. कान्ताबहन और राजूभाई ये दोनों कान्ताबहन की फियाट गाड़ी में बैठे । पायलट कार की तरह कान्ताबहन की गाड़ी आगे थी ।

मुसलाधार बरसनेवाली बारिश को गाड़ी की खिड़की से देखकर श्रीमोटा विचार कर रहे थे, 'इतनी तूफानी बारिश में अगर रमणभाई के फार्म हाउस की ओर जानेवाला रास्ता पानी भर जाने से बंद हो गया, तो मुश्किल खड़ी होगी ।' इसी कारण ही तो उन्होंने त्वरा कर के गाड़ी बाहर निकालने को कहा था ।

जैसे ही श्रीमोटा की गाड़ी चालू होकर गेट से बाहर रास्ते पर गयी, तुरंत ही आश्रम की बिजली चली गयी । चारों तरफ अंधेरा छा गया । आश्रम की बिजली ग्रीड से ही सीधी लाईन से प्राप्त हुई थी, इसलिए इस तरह बिजली जाना वैसे तो मुमकिन नहीं था । इस अकल्पित घटना से, भविष्य में कुछ अशुभ और अघटित घटनेवाला है, इसका शक सभी के मन में हुआ ।

गोरधनचाचा के मुख से अनायास शब्द बाहर पड़े, 'अब **मोटा** आश्रम में लौटकर नहीं आएँगे ।'

गाड़ी 'संतराम विठ्ठल कन्या विद्यालय' के रास्ते से हाईवे पर निकल गयी । कई स्थानों पर पानी भरा हुआ था, फिर भी कुछ विघ्न उपस्थित नहीं हुआ ।

कार में ही श्रीमोटा ने नंदुभाई से कहा, 'भाई, तुम रमणभाई से बात कर लो और अगर उनकी संमति नहीं, तो फिर सीधे सुरत के आश्रम में जाकर मैं वहाँ देहत्याग करूँगा ।' श्रीमोटा देहत्याग करनेवाले हैं, यह बात तब तक नंदुभाई के अलावा और कोई भी जानता नहीं था, सभी पूर्णत: अनभिज्ञ थे ।

फाजलपुर में श्रीरमणभाई और श्रीमती धीरजबहन सुबह छ बजे स्वागत के लिए उपस्थित थे । श्रीमोटा की सूचनानुसार नंदुभाई ने रमणभाई को पास में बुलाकर बात कर ली ।–'**मोटा** आपके फार्म हाऊस में देह छोड़ना चाहते हैं । आपकी संमति होगी तो ही वे वैसा करेंगे। आपकी संमति न हो तो फिर सुरत आश्रम जाकर वहाँ देह छोड़ देंगे ।'

यह सुनकर श्रीरमणभाई पर मानो वज्राघात हुआ । उदास होकर वे बोले, 'घर पूज्यश्री का ही है । उनकी जैसी इच्छा हो वैसा करें ।' आज ही देह छोड़ने का श्रीमोटा का विचार रमणभाई को ज्ञात नहीं था ।

उस दिन पूज्यश्री ने सब के साथ भोजन नहीं लिया । उन्होंने कान्ताबहन को, कुछ बनाकर ले आने को कहा । उन्होंने सूरण पानी में उबाल कर दिया । श्रीमोटा केवल दो–चार टुकड़े ही खा सके ।

श्रीरमणभाई से संमति प्राप्त होने पर अब श्रीमोटा ने निश्चिंतता से अपना चश्मा, गले की कंठी और घड़ी निकालकर रामभाई को दी और बोले, 'भाई को दे आना ।' सब वस्तुएँ नंदुभाई तक पहुँच गयीं ।

वैसे तो रोज़, कुछ काम हो तो श्रीमोटा अपनी वस्तुएँ सेवा में रहनेवाले व्यक्ति को दिया करते थे और काम पूर्ण होते ही उससे

माँग लिया करते थे । 'आज ऐसा न कर के, ये वस्तुएँ नंदुभाई को क्यों दी गयीं ?' सभी के मन में प्रश्न खड़ा हुआ, लेकिन पूछने की किसीको हिम्मत नहीं हुई । कुछ निराला घट रहा है, यह वे जान पाये, पर उसका अर्थ पता नहीं लगा ।

नंदुभाई तुरंत श्रीमोटा के पास आ गये । श्रीमोटा ने उनसे कहा, 'भाई, आज चार बजे के बाद मैं देह छोड़ दूँगा ।'

यह सुनकर धृष्टतापूर्वक नंदुभाई ने पूछा, '**मोटा** ! इतनी जोरों से बारिश हो रही है, तो उससे देह के अग्निसंस्कार को तक़्लीफ़ होगी । मही नदी में भारी बाढ़ है । दो-तीन दिन रुक नहीं सकते?'

दृढ़ स्वर में पूज्यश्री ने उन्हें सुनाया, 'अग्निसंस्कार करना संभव नहीं हुआ तो इस देह को नदी में छोड़ देना । मैंने निर्णय ले लिया है । This is not a matter of discussion.*

अब आगे कुछ भी बोलने को बाकी नहीं रहा । नंदुभाई चुप हो गये, उनका चेहरा उतर गया ।

फाजलपुर के श्रीरमणभाई के 'फार्म हाऊस' की नामपट्टिका विधि अब तक हुई नहीं थी । नया नाम लिखी हुई नामपट्टिका कभी की आ पड़ी थी । नाम था 'हरिस्मृति ।' श्रीमोटा को वह नामपट्टिका दिखाई गयी । उन्होंने कहा, 'अभी तुरंत ही लगा दो ।'

नामपट्टिका तुरंत लग गयी और 'फार्म हाऊस' 'हरिस्मृति' बन गया । श्रीमोटा के प्रयाण के दिन ही यह नामपट्टिका लगी यह कैसा अजीब इत्तफ़ाक़ !

करीब तीन बजे श्रीमोटा ने श्रीरमणभाई को फोन कर के,

* यह बहस करने का विषय नहीं है ।

वडोदरा से बुला लेने को कहा । पूज्यश्री को मिलने श्रीरमणभाई के परिवार के सभी सदस्य आ गये । उनसे प्रेमपूर्वक बातचीत कर के श्रीमोटा ने उन्हें जरा जल्दी-ही बिदा किया ।

चार बजे उन्होंने अपनी शरीर को बरामदे से उठाकर अंदर कमरे में रखने की आज्ञा की । बाद में **नंदुभाई को कमरे में बुलाकर उनसे अकेले में पाँच-छ मिनट बातचीत की । उस वक्त नंदुभाई सहजस्फुरित अंतःप्रेरणा से बोल गये, 'तुम्हारे पीछे मैं आश्रमों में रहूँगा और आश्रमों का ध्यान रखूँगा ।'**

श्रीमोटा ने आँखों द्वारा ही अपना संतोष प्रगट किया ।

नंदुभाई से बातचीत पूर्ण होते ही उन्होंने श्रीरमणभाई, श्रीमती धीरजबहन, श्रीमती कांताबहन, श्रीराजूभाई और श्रीरामभाई को भी कमरे में बुलवाया और फिर सब को सूचना दी, 'तुम्हें अंदर बैठना हो तो अंदर बैठो, बाहर बैठना हो तो बाहर बैठो । अगर अंदर बैठना है तो भगवान का स्मरण करना । अब मुझे कोई भी न बुलाए। इस कॅथेटर को मेरे शरीर से दूर नहीं करना । यह मेरा जीवनसाथी है ।'-पूज्यश्री के ये अंतिम शब्द थे ।

सभी ने कमरे में बैठना ही पसंद किया । कमरा बंद कर के सब यहाँ-वहाँ बैठकर 'हरिःॐ' का जाप करने लगे । श्रीमोटा के करीब स्टूल पर बैठकर नंदुभाई भी आँखें बंद कर के जाप कर रहे थे ।

रात के करीब बारह बजे नंदुभाई के मन में सहजस्फुरण हुआ कि, 'योगी श्रीअरविंद को जो बीमारी थी वही 'प्रोस्टेट ग्लैंड' की बीमारी श्रीमोटा को भी है, श्रीअरविंद ने शरीर छोड़ा था शुक्रवार को और आज भी शुक्रवार ही है । उन्होंने अपना शरीर रात को डेढ़ बजे छोड़ा था । इसलिए श्रीमोटा भी शायद उसी समय शरीर छोड़ देंगे ऐसी अधिक संभावना है ।'

रात को साढ़े बारह बजे डॉ. कान्ताबहन ने नाड़ी के ठोके गिने तो तीस-पैंतीस थे । एक बजकर पंद्रह मिनट पर रामभाई को श्रीमोटा का शरीर स्पंदित होता दिखायी दिया ।

डॉ. कान्ताबहन ने १.२५ को जब नाड़ी देखी तब ठोके बिलकुल नहीं थे, हृदय पर स्टेथोस्कोप लगाया तो हृदय भी बंद ही था । निश्चित ही शरीर प्राणविहीन हो गया था ।

२२ जुलाई दोपहर चार बजे के आसपास शुरू हो गयी हुई देहत्याग की क्रियाविधि २३ जुलाई १९७६ के प्रातः १.२५ बजे पूर्ण हुई थी ।

पंचमहाभूतों को लौटाने के लिए अपना शरीर श्रीमोटा ने खाली कर दिया था ।

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

९०. 'अग्नये स्वाहा !...'

श्रीमोटा के शरीर की दहनक्रिया सुबह छ बजे रखी गयी। अभी तो सुबह के डेढ़ ही बजे थे । पाँच-साढ़े पाँच तक बहुत से महत्त्व के काम ख़त्म किये जा सकते थे, और ख़त्म करना जरूरी भी था ।

अपने हृदय में उमड़ा हुआ दुःख का सागर पीकर नंदुभाई श्रीमोटा के स्वजनों को, प्रेमीजनों को ख़तों द्वारा और तार द्वारा संदेश पहुँचाने के काम में जुड़ गये । मशीन की तरह उनकी अँगुलियाँ चलने लगीं । 'किसे और क्या लिखना' वह उनके अंतर में सूझता गया और झरझर कलम से क़ाग़ज़ों पर शब्दबद्ध होता गया । श्रीमोटा की ही शक्ति यह सब उनके माध्यम से लिखवा रही थी और करवा रही थी, इसमें उन्हें कोई संदेह नहीं था । भोर के पाँच-

साढ़े पाँच तक नंदुभाई का यही काम चलता रहा । सांस लेने की भी फुर्सत न थी । अब तक रात की कालिख को पोंछकर प्रकाश की किरणें पृथ्वी पर धीरे-धीरे उतरना प्रारंभ हो गयीं थीं ।

श्रीमोटा के शरीरत्याग के बाद तुरंत ही श्रीरमणभाई ने 'फार्म हाऊस' के व्यवस्थापक श्रीछगनभाई को चार बजे बुलाकर अग्निसंस्कार के लिए सूखी लकड़ियों का इन्तज़ाम करने का सूचन किया था। बारिश के दिनों में सूखी लकड़ियाँ पाना करीब-करीब असंभव है ऐसा श्रीछगनभाई को लगा, फिर भी पंदरह-बीस मन लकड़ियाँ की व्यवस्था सहजता से हो गयीं, यह एक आश्चर्य ही था।

मही नदी के पास में ही चिता को रचा गया । 'कल इसी वक्त भोर में श्रीमोटा नडियाद से फाजलपुर जाने को निकल पड़े थे और आज उनका शरीर थोड़ी देर में ही अदृश्य होनेवाला है, ज्वालाओं के अधीन होनेवाला है', इस विचार से सभी के हृदय भारी हो गये थे, आँखों की पलकें भीगी हो गयी थीं ।

'आज हम अनाथ हो गये, माँ हमें छोड़कर चली गयी' इस भाव से सभी के हृदय आक्रंद कर रहे थे ।

एक-दो घड़ियों में ही पूज्यश्री का शरीर आँखों से ओझल होनेवाला है, इस पर किसीको विश्वास नहीं हो रहा था । 'समय इतनी जल्दी गुज़र गया ? पूज्यश्री का अस्तित्व यह क्या सपना ही था ? अभी-अभी तार जुड़ने लगे थे, संगीत प्रगट हो रहा था और अचानक तार टूट गये ?...नहीं! **उनका अस्तित्व कोई सपना नहीं था, वे तो खुद-स्वयं ही अब अस्तित्व बन गये हैं, उनका चैतन्य सर्वव्यापी हो गया है । इस शरीर में रहते हुए भी वे शरीर में नहीं थे, वस्त्र की तरह उन्होंने शरीर सिर्फ़ धारण किया था, वे तो सर्वत्र हैं, यहाँ-वहाँ सर्वत्र हैं और हमारे**

हृदय में भी हैं । लेकिन उनका यह सुंदर शरीर अब नज़र न आएगा ।...' सब के हृदय रो रहे थे, कौन किसे सांत्वना देगा ?...

अपने मन पर काबू रखकर श्रीमोटा की देह का स्पंजिंग किया गया । प्राणविहीन कलेवर सभी ने उठाया और बारी-बारी से कंधा देकर उनके भारी कदम नदी की रेती में उठने लगे । चलते-चलते आँखों से टपकनेवाले आँसू बारिश से पहले ही भीगी हुई रेती में गिर रहे थे । धरणीमाता भी द्रवित हो गयी थी, यह भीगी रेती बता रही थी ।

घटनेवाली घटना का पूर्वाभास होने से मेघराज तो पहले ही रो चुके थे और अब सूखी आँखों से वे उस शरीर को देख रहे थे । 'स्वेच्छा से अपने शरीर का वस्त्र उतारनेवाले विधाता के इस लाड़ले नन्हें बच्चे के अग्निसंस्कार के समय, मुझे भी अपना दुःख भूलकर शांत रहना चाहिए और मूक रहकर वह देखना चाहिए', यह समझ उस मेघराज को भी थी ।

हाथ में अग्नि लेकर श्रीरमणभाई पूज्यश्री के शरीर के पास गये। चिता पर रखे हुए श्रीजी के शरीर को अग्नि ने कोमलता से स्पर्श किया, झिझकते-झिझकते स्पर्श किया और फिर थोड़े ही समय में लौ-लौ करती ज्वालाएँ आकाश में ऊपर-ऊपर उठकर आसमान को छूने लगी । 'इदं न मम...' कहते हुए श्रीमोटा ने दी हुई अपने शरीर की अंतिम आहुति भी अग्निदेव ने स्वीकार की थी । इतने पवित्र शरीर की आहुति उसे कई दिनों के बाद प्राप्त हुई थी । उसने वह आनंदपूर्वक 'चटचट' करते स्वाहा करना शुरू किया और वह काया भस्मीभूत होने लगी ।

आँखों में प्राण लाकर बारह आँखें यह सब देख रही थीं । श्रीमोटा कहा करते थे, 'जिन बातों का कोई साक्षी नहीं, उनके बारे

में मैं कभी बोलता नहीं !...' केवल छ व्यक्तियों की उपस्थिति में उनका शरीर भस्मीभूत हुआ, इसकी साक्षी थी वे बारह आँखें, पंचमहाभूत और सारी सृष्टि !

इस घटना का जगत को किंचित् भी आभास होता, तो मेले की तरह लोगों की भीड़ जम जाती, लोगों के झुंड चले आते । लेकिन हारगुच्छ, स्मशानयात्रा, नारेबाजी, भाषण, स्मारक इन सब से यह सीधा-सादा महान दिव्यात्मा दूर था, लाखों-करोड़ों मील दूर था, अस्पर्शित था ।

दो घंटों में ही अपनी आहुति ग्रहण कर के अग्निदेव अब शांत हो गये थे । सब अस्थियाँ और राख को इकट्ठा किया गया और मही नदी में उन्हें विसर्जित किया गया । वे दिव्य अस्थियाँ और वह पावन राख अपने में समाकर मही नदी का भी शुद्धिकरण हो गया ।

श्रीमोटा ने अपना शरीर पंचमहाभूतों को पूर्णरूप से लौटा दिया था । उनके शरीर की चुटकीभर राख भी पीछे नहीं रही । पीछे रह गया सिर्फ़ उनका नाम, उनका काम, उनका 'मैं सर्वत्र विद्यमान हूँ' यह आश्वासन, उनका विश्वव्यापी चैतन्य और भक्तों के हृदय में रहा हुआ उनका अटल स्थान !

एक परिपूर्ण कर्मयोगी के निष्काम कर्मयोग की पूर्णाहुति हो गयी थी ।

॥ हरि:ॐ ॥

✤ ✤ ✤

॥ हरि:ॐ ॥

खंड दो

परिशिष्ट

॥ हरि:ॐ ॥

'मुझे समाज को बैठा करना है !'

\- मोटा

॥ हरि:ॐ ॥

१. श्रीसद्‌गुरु के बारे में-पूज्य श्रीमोटा के शब्दों में!

– **‘समर्थ श्रीसद्‌गुरु’ :**

श्रीमोटा ने बताया है, ‘प्रभुकृपा से ‘इस जीव’ के श्रीसद्‌गुरु इतने समर्थ थे कि अगर वे चाहते तो यह ‘गधाशंकर’ उनकी सहजकृपा के केवल इशारे से ही चैतन्य में स्थिर हुआ जा सकता था ।

‘गुरु ने मुझे पकड़ा’ :

कई बार श्रीमोटा को भक्तों द्वारा पूछा जाता था, ‘आप अपने गुरु के बारे में बताना ।

तब वे कहते, ‘गुरु ने मुझे पकड़ा था, मैंने तो गुरु को पकड़ा नहीं था ।’

‘युवावस्था के आरंभ के समय तक इस मार्ग में जाने की इच्छा या जिज्ञासा प्रगट नहीं हुई थी ।’

‘भूगर्भ में अगर पेट्रोल हो, तो ही बाहर आ सकता है, वैसे ही मुझ में देशसेवा करने की जो ज़बरदस्त धुन थी, उसीको गुरुमहाराज ने साधनामार्ग में मोड़ दिया ।’

‘शुरू-शुरू में गुरु की मदद का और उनकी शक्ति का, कला का मुझे कुछ भी भान नहीं था । **उन्होंने मुझे सिर्फ़ साधना बतायी: स्मरण, प्रार्थना, भजन-कीर्तन, आत्मनिवेदन और समर्पण करना, अभय, नम्रता, मौन, एकान्तवास आदि प्रगटाना ।’**

‘मेरे सच्चे गुरु केशवानंदजी-धूनीवाले दादाजी’ :

‘मुझे साधना में प्रथम प्रवेश करानेवाले बालयोगी महाराज ही थे । कुंभमेला में उनसे ही मिलने दौड़ता गया था ।’

‘मेरे सच्चे गुरु तो केशवानंदजी-धूनीवाले दादाजी ही हैं । लेकिन केशवानंदजी, साँईबाबा...आदि एक ही चैतन्य का आविर्भाव है, ऐसा दादा से बोलते हुए मैंने सुना है ।’

‘वे सब मैं ही हूँ ।’ :

शुरू-शुरू में जब मेरा गुरुमहाराज के यहाँ जाना हुआ था, तब उन्हें कई बार बोलते हुए मैंने सुना है, ‘मैं अक्कलकोट स्वामी हूँ। उपासनीबाबा हूँ, साँईबाबा हूँ...’ ऐसे कई नाम वे अपने मुख से लेते थे और फिर से कहते थे, ‘वे सब मैं ही हूँ ।’

‘श्रीसद्‌गुरु भावनारूप, चैतन्यरूप है, स्थूल नहीं ।’ :

‘श्रीसद्‌गुरु यह स्थूलरूप नहीं, बल्कि चैतन्यरूप, भावनारूप हैं’ इस प्रकार से उनका स्मरण, उनका चैतन्यभाव अपने विचार, कर्म, व्यवहार, संबंध आदि में जीवंत रहेगा ऐसा अभ्यास करते रहोगे तो अपने हृदय में उनकी उपस्थिति का अनुभव होगा ही ।

‘गुरु शरीरधारी होते हुए भी, व्यक्ति होते हुए भी, व्यक्ति नहीं हैं ।’ :

‘गुरु को ज़िंदा रखना-आधार साधक पर’ :

‘गुरु को ज़िंदा रखना या मुर्दे जैसा रखना यह साधक के या भक्त के आधार पर ही निर्भर है ।’

‘...अन्यथा गुरु भी लूले-पंगु होते हैं ।’ :

‘अपने आधार के हरएक ‘...करण’ में जब तक उनके प्रति जीवंत-जागृत भाव समर्पणभाव से नहीं है, तब तक गुरु भी लूले-पंगु होते हैं ।’

‘गुरु को सक्रिय रखो’ :

‘गुरु को सक्रिय रखने के लिए सच्चे हृदय से हमें अपने हृदय में गुरु से एकरूप हो जाना चाहिए, तो ही योग्य गुरु योग्य साधक को गतिमान कर सकते हैं ।’

‘हृदय से जुड़ जाते ही, फिर श्रीसद्‌गुरु के स्थूल संपर्क की आवश्यकता रहती नहीं है ।’ :

'प्रेमभक्तिपूर्वक हृदय से जुड़ जाते ही फिर श्रीसद्‌गुरु के स्थूल संपर्क की आवश्यकता रहती नहीं है ।'

'जो श्रीसद्‌गुरु को स्थूल रीति से देखता है, वह सच्चा साधक ही नहीं है ।'

'गुण और भाव का विकास आवश्यक है ही' :

'प्राप्त कर्मों को करते-करते गुणों का और भाव का विकास करोगे तो ही आध्यात्मिक साधना की भावना का विकास होगा ।'

'अपने आधार*' में श्रीसद्‌गुरु को जीवंत करो :

श्रीमोटा कहा करते थे, 'गुरु यह शरीरधारी होते हुए भी, व्यक्ति होते हुए भी व्यक्ति नहीं हैं ।'

'गुरु की मदद यह एक वास्तविकता+ है, सत्य है और वह प्राप्त हो सकती है, सिर्फ़ अगर हम अपने 'आधार' में उन्हें जीवंत कर सकते हैं, तो ही ।'

यह कैसे करना ? :

'अगर खुद को गुरु की मदद की आवश्यकता हो, तो खुद-स्वयं के आधार में श्रीसद्‌गुरु को जीवंत करना चाहिए', यह समझ मुझे श्रीसद्‌गुरु से प्राप्त हुई, ऐसा श्रीमोटा कहा करते थे ।

यह करने के लिए शुरू-शुरू में श्रीमोटा गुरुमहाराज का स्वरूप अपनी आँखों के सामने सतत रखकर उनसे बोलने लगे, निवेदन करने लगे और इस तरह रोज़ सैंकड़ों बार उस स्वरूप को अंतर्चक्षुओं से देखने लगे ।

धीरे-धीरे करते-करते ही गुरुमहाराज के स्वरूप का सूक्ष्म भाव उनके स्वयं के आधार में प्रगट होने लगा ।

* अंतःकरण-मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहम्... 'खुद स्वयं' यह नींव ।

\+ Reality

'श्रीसद्‌गुरु का साकार स्वरूप प्रगट करना सदैव कर पाया हूँ ।' :

श्रीमोटा ने कहा है, 'मेरे श्रीसद्‌गुरु 'जीवंत समर्थ' हैं । उन्होंने प्रेमभाव से मेरा हाथ पकड़ा हुआ है ।

'प्रभुकृपा से मेरे हृदय में रहे हुए भाव के कारण, उनका साकार स्वरूप प्रगट करना सदैव कर पाया हूँ ।'

'वैसे ही, 'अंतर में भी उन्हें जगाना और उनकी मदद और प्रेरणा प्राप्त करना' कर पाया हूँ ।

'श्रीसद्‌गुरु का प्रेमभक्ति-ज्ञानभक्तियुक्त अवलंबन और उसमें से प्राप्त होनेवाला भाव और शक्ति, यह सब अनोखा ही होता है ।'

बचपन में हिमालय के सपने :

'बचपन में मुझे हिमालय के सपने आया करते थे । हिमालय में जाने की बार-बार प्रेरणा हुआ करती थी । इतना ही नहीं, बाद में साधनाकाल में भी वैसी प्रेरणा हुआ करती थी । फिर गुरुमहाराज ने सद्‌भावना प्रगट की कि 'तुज चरणे' की प्रार्थना छपवाकर उन पैसों से हिमालय की यात्रा करना ।'

गुरुमहाराज का स्वप्नों में दर्शन और साधना का मार्गदर्शन :

श्रीमोटा रोज़ रात स्मशान में सोने जाया करते थे, तब एक बार उन्हें स्वप्न में गुरुमहाराज का दर्शन हुआ और उन्होंने श्रीमोटा को कुछ साधना बतायी ।

स्वप्न मिथ्या है ऐसा मानकर श्रीमोटा ने उसे महत्त्व नहीं दिया । दूसरे, तीसरे, चौथे दिन भी वही स्वप्न आया तो भी उन्होंने ध्यान नहीं दिया । मात्र पाँचवे दिन भी वही स्वप्न आने पर श्रीमोटा को लगा, 'सतत एक ही प्रकार का स्वप्न आ रहा है, इसका निश्चित

ही कुछ अर्थ होना चाहिए । उस स्वप्न के अनुसार कर देखने में क्या जाता है?'–ऐसा सोचकर उन्होंने उस स्वप्न के अनुसार साधना करने की शुरूआत की । पाँच बार स्वप्न में बताने के बाद मुझे इसका महत्त्व समझ में आया । इसका अर्थ मेरी ग्रहणशक्ति (रिसेप्टिविटी) बहुत कम है, यह उन्हें उस समय बहुत चुभा और उत्कट प्रार्थनाभाव भी प्रगट हुआ ।

बाद में स्वप्न द्वारा गुरुमहाराज ने उन्हें कई प्रकार की साधनाएँ बतायीं, और फिर उनकी समझ में आया, 'अरे, गुरु यह कितनी बड़ी आध्यात्मिक शक्ति है ।'

'श्रीसद्‌गुरु तुम्हारे अंदर बैठे हुए हैं ।' :

एक बार किसी ने श्रीमोटा से पूछा, '**मोटा**, गुरु करने की जरूरत है क्या ?'

पूज्य श्रीमोटा ने जवाब दिया, 'गुरु तो तुम्हारे अंदर बैठे हुए हैं । वेदान्त की दृष्टि से कहें तो गुरु खोजने कहीं जाने की जरूरत नहीं है । सच्ची जिज्ञासा जागृत हो गयी हो, तो सब कुछ अपने-आप हल हो जाएगा और रास्ता दिखायी देगा । अभ्यास करो । गीतामाता ने सब बताया है । सतत अभ्यास करते रहो... । बचाव के लिए सिर्फ़ वादविवाद ही करना हो तो ठीक है, फिर कुछ करने की जरूरत नहीं है, जहाँ हो, वहीं ठीक हो ।...आपको क्या बनना है, उसका आदर्श तो सामने है ही नहीं । व्यर्थ बातें ही करने से कुछ नहीं होगा ।' 'राम राम' करो ।...

श्रीसद्‌गुरु किसलिए ? :

पूज्य श्रीमोटा लिखते हैं, 'जिस-जिस भ्रम में और अहम् के कुंड में हम पड़े हुए हैं, उनसे मुक्त करने के लिए हमारा परस्पर संबंध है । अन्यथा इस संबंध का कुछ भी अर्थ नहीं । तुम सिर्फ़

'इस जीव' को (श्रीमोटा को) केवल बहुमान दो और वाणी से या उर्मि के आवेग से कुछ व्यक्त करो, तो उससे यह संबंध फलित नहीं हो सकता है । जीवनविकास के हेतु की भावना जीवन में अखंडितता से प्रगट रहे और उसमें वह (साधक) लीन रहे यह देखना है ।

'आघात देने को श्रीसद्‌गुरु हिचकिचाते नहीं' :

'उसमें भी, जब और जिस आसक्ति-ममत्व में बँध जाने की संभावना हो, वहाँ आवश्यक वह करने में और जरूरत हो तो आघात देने से और आघात को वाणी में या लिखाई में सख़्त रीति से क्रोध की भाषा में व्यक्त करने से उस स्वजन पर और अन्य जीवों पर क्या असर होगा और वे क्या विचार करेंगे इसके बारे में सोचने की फिक्र होती नहीं ।'

श्रीसद्‌गुरु का कार्य :

'मेरे गुरुमहाराज तो मुझे शत्रु की तरह चिपके हुए थे और कई बार कड़वी गोलियाँ उन्होंने मुझसे निगलवायी हैं । इतना कुछ और ऐसा कुछ करा लिया है कि जिससे तुम तो भौचक्के ही रह जाओगे ।'

'श्री भगवान कृपालु हैं । अपनी आँखें और हृदय खोलने के लिए वे सदैव जीवंत हैं । उनका रास्ता भी न्यारा है । इस जीव को प्रभुकृपा से इतना दुःख दिया गया, तो भी वह आनंद का ही अनुभव करता रहा ।'

'दुःख जीवनविकास के लिए है ।' :

'दुःख हमें दुःख की तरह लगता है, लेकिन वह तो जीवन-विकास के लिए है' इस बात का स्वीकार करोगे तो दुःख दुःख न लगकर उसमें भी प्रसन्नता ही प्रगट होगी ।'

'श्रीसद्‌गुरु के प्रति प्रेमभाव प्रगट हुए बिना जीवनविकास असंभव' :

'चैतन्यनिष्ठ पुरुष के प्रति (श्रीसद्‌गुरु के प्रति) ज्ञान की भावना से और हेतु के ज्ञानभान से प्रेमभाव प्रगट होता नहीं है, तब तक श्रीसद्‌गुरु की जीवनविकास की साधना की भावना को हम झेल नहीं सकते ।'

'श्रीसद्‌गुरु के प्रति प्रेमभाव और उसका हेतु :

पूज्य श्रीमोटा कहते हैं, 'जगत में बड़े-से-बड़ा चमत्कार कोई हो तो प्रेम की शक्ति का है। श्रीसद्‌गुरु के प्रति प्रेम का हेतु अपनी चेतना (Consciousness) जगाने का, जगाकर क्रियात्मक बनाने का और वैसा होते-होते स्वयं का सब तरह से और संपूर्ण दिव्य रूपांतरण प्राप्त करने का है ।'

गुरुकृपा :

'साधक के निष्ठापूर्वक प्रयत्न गुरुकृपा को खींच लाएँगे । **गुरु की कृपा यह तो साधक द्वारा होनेवाले पुरुषार्थ की भावना में से फलित होनेवाला भाव है । दोनों एकरूपता से परस्पर जुड़े हुए हैं । कृपा में पुरुषार्थ है, पुरुषार्थ में कृपा है ।'**

श्रीसद्‌गुरु कैसे कार्य करते हैं ? :

पूज्य श्रीमोटा कहते हैं, 'श्रीसद्‌गुरु के साथ स्थूल परिचय रखने से तो सूक्ष्म भावना से उनके साथ अपना संपर्क बढ़े, इसका अत्यधिक महत्त्व है ।... श्रीसद्‌गुरु वाणी द्वारा उपदेश दे या न दे, साधकों को अपने स्थूल सामिप्य में रखे या दूर रखे, तो भी आध्यात्मिक शक्ति के आंदोलन को वे सतत बहाते करते रहते हैं । ऐसे आंदोलन साधक के व्यक्तित्व में गहराई तक प्रवेशकर उसका परिवर्तन करना शुरू करते हैं । साधक की निद्रावस्था के

समय जब उसके अंतरसत्त्व (Inner Being) तक पहुँचना कुछ ज़्यादा सुगम होता है, तब भी श्रीसद्‌गुरु ऐसे आंदोलनों का उपयोग कई बार करते होते हैं ।'

श्रीसद्‌गुरु से स्वप्न द्वारा भी प्राप्ति संभव है :

'कई साधकों को श्रीसद्‌गुरु की ओर से स्वप्न द्वारा भी अनुभव और ज्ञान की प्राप्ति हो सकती है ।'

'माँ की तरह श्रीसद्‌गुरु की दृष्टि सतत है ।' :

'बालक चाहे कहीं भी खेलता हो, तो भी माँ के अंतर में उसका सूक्ष्म भान रहा करता ही है, उसी तरह गुरु का भाव साधक की हरएक अवस्था में उसके पीछे रहा करता ही है ।'

'भगवान का भाव एकदम तत्क्षण प्रगट होना संभव नहीं है ।' :

'कोई भी संत या गुरु चमत्कार या जादू से किसी भी जीव में भगवान का भाव एकदम तत्क्षण प्रगट करा नहीं सकते हैं । ऐसी संभावना भी नहीं है ।... **आध्यात्मिक मार्ग का भी एक निश्चित वैज्ञानिक शास्त्र है ।'**

'पुरुषार्थ अत्यंत आवश्यक' :

'प्रामाणिकता से पुरुषार्थरत रहने से ही एक दिन सच्ची प्राणचेतना निश्चित ही प्रगट होनेवाली ही है । जो पुरुषार्थ कर रहा है, वह ध्येय प्राप्त करने के पथ पर ही है ।'

'जीवनसाधना यह कुछ हँसी-मज़ाक नहीं है, यह तो मर-मिटने का मार्ग है । शुरू-शुरू में ठीक तरह से दीर्घकाल तक प्रचंड पुरुषार्थ की अत्यंत आवश्यकता है ।'

'श्रीसद्‌गुरु के कार्य का सच्चा भान स्वयं में प्रगट हो ।':

'हम खुद को-जहाँ हैं, वहाँ ही स्थिर रहकर उन्हें हिलाना है,

जागृत करना है और उनका अवलंबन लेना है । लेकिन इसका सच्चा भान अगर हम स्वयं में प्रगट न कर सके, तो वे क्या कर सकते हैं ?'

करुणामय श्रीसद्गुरु :

'हम कई बार मानसिक रूप में श्रीसद्गुरु को छोड़ देते हैं, इतना ही नहीं, उनकी उपेक्षा करते हैं या त्याग देते हैं, उनसे अपने जीवन का कुछ भी लेन-देन नहीं है । इस प्रकार से बर्ताव करते हैं, फिर भी वे हमें कदापि छोड़ते नहीं हैं । किसी-न-किसी प्रसंग से वह जीवन के हेतु का भान हमारे अंतर में प्रगट कर के वे हमें जीवनविकास के मार्ग पर ले जाते हैं ।'

साधक का भाव श्रीसद्गुरु तक पहुँचता है या नहीं ?:

'अपना भाव श्रीसद्गुरु तक पहुँचता है या नहीं ऐसा विचार आते ही उसे झटक देना । इसका विचार करना यह साधक का काम नहीं है, और वह जाननेयोग्य शक्ति भी उसमें होती नहीं है। हृदय का भाव उन्मत्त दशा में और उच्चतम कक्षा में पहुँचे, तो ही यह संभव हैं ।'

'जिनको हमारे हृदय का प्रेमभक्तिभाव पहुँचाने की अपनी हृदयस्थ भावना है, उनके (श्रीसद्गुरु के) हृदय में हमारा हृदय प्रेमभक्तिपूर्वक हिल-मिलकर समा गया हो, एक हो गया हो, और वैसा परस्पर तादात्म्य प्रगट हो गया हो, तो ही ऐसी शक्ति प्रगट होती है ।'

'जिसका साक्षी नहीं, वह बोला नहीं ।' :

पूज्य श्रीमोटा से सदेह मिलकर साधना में प्रत्यक्ष मदद करनेवाले स्वामी समर्थ अक्कलकोट महाराज और ताज्जुद्दिन बाबा (नागपुर के) इनके बारे में उन्होंने, जिनके साथ उनका हृदयसंबंध

था, वैसे नंदुभाई जैसे व्यक्ति को भी बाताया नहीं, क्योंकि जिसका साक्षी नहीं है, वह नहीं बताना, ऐसा उनके श्रीसद्गुरु का आदेश था ।

'श्रीसद्गुरु का हुक्म नहीं है इसलिए...' :

उन्होंने और भी कहा है, 'जीवन में कई रोमांचक अनुभव आये, श्रीसद्गुरु ने की हुई कृपा, मदद इनके बारे में बहुत-सी घटनाएँ घटीं, लेकिन जब तक चैतन्यभाव में पूर्णतः निष्ठा प्राप्त हो गया हुआ व्यक्ति मिलता नहीं, तब तक लिखने का श्रीसद्गुरु का आदेश नहीं है ।

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

२. साधना के बारे में—पूज्य श्रीमोटा के शब्दों में

'साधना में एकाश्रयी रहो, गुरुभाव दृढ़ करो ।' :

'साधना में एकाश्रय की विशेष आवश्यकता है । जिसे गुरु माना है, उसीके अधीन रहना और उसीके मार्गदर्शन से जाते रहना अपने लिए हितकारक है । लेकिन अपनी दृष्टि और मन संकुचित बन जाए ऐसा इसका अर्थ नहीं है ।'

'अन्य महात्माओं के प्रति अन्यथाभाव* नहीं होना चाहिए । प्रसंगोपात अनायास किसी साधुमहाराज के यहाँ जाना हुआ तो उनमें भी 'गुरुभाव दृढ़ करना चाहिए+ ।' फिर भी यहाँ-वहाँ दौड़ादौड़ करने की जरूरत नहीं ।

'मोटा= उपासनीबाबा आदि जिन-जिन संतों के पास जाते थे,

* कम-ज्यादा भाव

\+ 'अपने ही श्रीसद्गुरु का चैतन्य इस आकार में है । ऐसा भाव रखकर गुरुनिष्ठा में स्थिर रहना चाहिए ।'

= स्वयं को निर्देशित करके श्रीमोटा का वक्तव्य ।

वे आत्मस्फुरणानुसार अथवा गुरुमहाराज के आदेशानुसार ही जाते थे और उनमें गुरुमहाराज का ही दर्शन करते थे ।

'सापेक्ष रीति से देखने पर सभी संतों में एक ही चैतन्य विलस रहा होता है। फिर भी साधक को लपेटकर रहे हुए आवरण जब तक दूर होते नहीं, तब तक उसे अपने सद्‌गुरु में ही सब को समा लेने के लिए एकाश्रय की विशेषरूप से आवश्यकता है।'

'लगनी* निर्माण होनी चाहिए :'

'जब तक ईश्वरप्राप्ति के लिए जीवंत, चैतन्यात्मक उत्कट जिज्ञासा जागृत होती नहीं है, तब तक केवल 'शिवोऽहं, शिवोऽहं' कर के और 'आत्मा-अनात्मा' इनका वाचन कर के कुछ भी उपयोग (अर्थ) नहीं है ।

'आर्द्र प्रबल भाव, उत्कटता, झोंक देने की वृत्ति और 'लगनी' निर्माण होती नहीं हैं, तब तक जान लेना कि हम आगे नहीं गये हैं ।

'कोरे ज्ञान का कुछ भी उपयोग नहीं, उसे कृति में-आचरण में लाना महत्त्व का है ।'

साधना में चित्तशुद्धि अनिवार्य :

'जब तक कामक्रोधादि रिपु हृदय से जाते नहीं हैं, तब तक कोई भी साधना में आगे नहीं जा सकता है। अगर साधना न कर सकते हो, तो महात्माओं के साथ मैत्री रखो, सत्संग करो । संतों के साथ मैत्री रखने से उनके पवित्र संस्कार अपने अंतर में गहराई तक होकर, दीर्घ समय के बाद निश्चित ही उदय होंगे और वे जीवनविकास में मदद करेंगे ।'

* लगन, व्याकुळता, अभीप्सा ।

आशीर्वाद और कृपा कब प्राप्त होंगे ? :

'साधुसंतों के पास दौड़ते हुए जाकर लोग आशीर्वाद और कृपा की याचना करते हैं यह मात्र मूर्खता है । कुछ भी न कर के, आशीर्वाद और कृपा की माँग करने के कारण ही समाज लूला हो गया है । आशीर्वाद देने से वह दिया गया है, ऐसा घटता नहीं है । वह सहज ही बहता है, सूरज की रोशनी की तरह । वह प्राप्त करने के लिए पहले पात्रता, योग्यता प्राप्त करो, फिर वह अपने-आप ही प्रगट होगा ।'

कृपा का अवतरण :

'जैसे ईश्वर निरिच्छ है, वैसे ही महात्मा भी होते हैं । उन्हें हिलाओगे तो हिलेंगे और चलायेंगे तो चलेंगे। सूर्यप्रकाश की तरह ही आत्मनिष्ठ संत सभी पर कृपा बरसाते रहते हैं, लेकिन अगर हम ही परदे लगाकर सो जाएँ, तो प्रकाश कैसे प्राप्त होगा ? अहंकार और भय छोड़कर सर्वभाव* से प्रभु की शरण में जाओगे, प्रभुसमान महात्माओं की शरण में जाओगे, तो तुम्हें कृपाप्रसाद निश्चित ही प्राप्त होगा ।'

चैतन्यनिष्ठ पुरुषों के लक्षण :

सर्वत्र विद्यमान, सर्व शक्तिमान और सर्वज्ञ हो । संपत्ति, सत्ता और विषयवासना से पर हो । 'साक्षीभाव, तादात्म्यभाव और करुणा ये तीन प्रमुख गुण हैं।'

नामस्मरण-एक अखंड जपयज्ञ :

'प्रभु का नामस्मरण-अखंड नामस्मरण-जपयज्ञ यह श्रीमोटा की साधनसिद्धि की अनुभवप्रसादी है ।'

प्राण की शक्तिओं के रूपांतरण के लिए नामस्मरण :

'अपने मताग्रह, महत्त्वाकांक्षा, लालसा, लोभ, मोह, कामना, कामवृत्ति आदि प्राण की शक्तिओं को परम चैतन्य के अनुभव

* संपूर्ण भाव से

के लिए रूपांतरित करने के हेतु से नामस्मरण और प्रार्थना के भाव का उपयोग करना है ।'

'नामस्मरण द्वारा मन की शक्ति का उपयोग करना है । **जीवनविकास के हेतु को ध्यान में रखकर संसार के व्यवहार में जितना जरूरी है, उतना ही मन को व्यस्त रखना है और वह भी गौणता से व्यस्त रखना है और व्यवहार का काम भगवान के काम के रूप में स्वीकार करना है ।** अपने आग्रह, वृत्ति आदि को जबरन् थोपना नहीं है। इस प्रकार के अभ्यास से उदारता, मतांतर, सहिष्णुता और आंतरिक शांति का अनुभव होगा।'

जागृत रहो, आत्मनिरीक्षण करो :

'विचारों की पकड़ और वृत्तियों के आक्रमण के प्रति साधक को जागृत रहना चाहिए और इसके लिए सतत आत्मनिरीक्षण करते रहना चाहिए ।'

मौन-एकांत का महत्त्व :

'नामस्मरण के साधन से और जागृत रहकर आत्मनिरीक्षण से, मौन-एकांत में, अपने ही अंतरस्वरूप से मुकाबला करना है। मौन यह तो महाशक्ति है । मौन द्वारा भावना और अंतरमंथन को गति प्राप्त होती है। नम्रता, निराग्रह, अनासक्ति, तटस्थ्य, विवेकशक्ति जैसे गुणों का विकास साधा जा सकता है । निष्क्रियता और आलस्य जैसे तमोगुण कार्य को प्रेरित करनेवाले रजोगुण और अभय, शांति आदि सत्त्वगुण इनका हेतुपूर्वक रूपांतरण कर के जीवन में सत्-चित् और आनंद का अनुभव मौन-एकांत में प्राप्त किया जा सकता है ।'

जप, ध्यान, धारणा :

'जप का उद्‌भवस्थान हृदय है । जप भी आखिर एक भाव ही है । अगर हम जप हृदय के स्पंदनों के साथ करें, तो ध्यान

भी अपने-आप वही होगा ही । यह अभ्यास स्थिर होते ही जप हृदय में स्वतंत्रता से होते रहेगा और अगर उसमें भाव भी प्राप्त हो जाए, तो धारणा भी रहेगी । इस तरह तीनों-जप, ध्यान और धारणा एक साथ ही घटेंगे ।'

'मंत्र एक ही रखो, सातत्य, स्थिरता, भाव इन्हीं का महत्त्व है ।'

'बार-बार मंत्र नहीं बदलना । एक ही दृढ़ता से पकड़ रखो। **जपसंख्या पर ज्यादा भार नहीं देना । उसमें 'सातत्य' रहना महत्त्व का है ।** हृदय में 'भाव' स्थिर रहकर वह अटलरूप से प्रगट हो, यही सब से महत्त्व का है ।'

'नाम, जप, ध्यान कैसे करना ? मनःशांति कैसे प्राप्त होगी ?'

'सब से पहले अशांति निर्माण होने का कारण खोज लेना चाहिए । **दूसरों के प्रति स्वयं में रही हुई इच्छा-अनिच्छा, मन की गाँठें, चाह-अचाह, अपेक्षा इनके कारण ही अशांति उत्पन्न होती है। प्राप्त हो गया हुआ कार्य प्रभुप्रीत्यर्थ करोगे, तो अशांति उत्पन्न नहीं होगी । फिर भी अशांति उत्पन्न हो, तो प्रार्थना करो, नामस्मरण करो ।'**

'व्यापार के लिए पूँजी की आवश्यकता होती है । सब से पहले मन की एकाग्रता प्राप्त करने के लिए नामस्मरण की आदत बनाना। नामजप एक ही स्थान में, निश्चित समय पर, निश्चित की हुई अवधि तक, नियमितता से, एक ही आसन पर बैठकर करो। उसमें एकाग्रता प्राप्त होने के बाद प्रारंभ में एक ही विचार पर, मूर्ति पर, या तो अपने इष्टगुरु पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए । फिर धीरे-धीरे शांति प्राप्त होगी ।'

'भक्ति का आधार भाव है, बुद्धि नहीं ।'

'जब 'भाव' जागृत होता है, तभी सच्ची भक्ति होती है और जब सच्ची भावपूर्वक भक्ति होती है, तब उसका फल प्राप्त होनेवाला ही है, यह दृढ़ता से जान लो । **भक्ति यह हृदय का कार्यक्षेत्र है, बुद्धि का नहीं ।'**

'दुःख का कारण-स्वयं ही, वृत्ति ही ।' :

'दूसरों के कारण हम दुःखी होते हैं, इस धारणा में दोष है। सच तो यह है कि हम खुद स्वयं की प्रकृति और स्वभाव के कारण ही दुःखी होते हैं। हम बहिर्मुखता के कारण जिस-तिस में अमुक-अमुक प्रकार से देखना-मानना-समझना और उस तरह मूल्यांकन करना जारी रखते हैं और 'अमुक ऐसा बर्ताव करता है और उसका बर्ताव योग्य नहीं है', ऐसा मानते हैं और उसी कारण दुःखी होते हैं ।

'दुःख को दूर करने का उपाय पैसा नहीं, बल्कि वृत्ति है ।'

'भिन्न-भिन्न प्रकार की जीवदशा की अनेक प्रकार की वृत्तियों के कारण और उनसे प्रगट होनेवाले असंतोष के कारण मनुष्य दुःखी होता है ।'

'वृत्ति यही दुःख का मूल कारण है ।'

'स्वयं में रहे हुए दोष देखो' :

'व्यक्तियों की भिन्न-भिन्न प्रकृति के कारण और संसार-व्यवहार के कारण अगर संघर्ष निर्माण हो तो सच्चा साधक उस वक्त स्वयं में रहे हुए दोष देखता होता है । उसके हृदय में रहे हुए सद्भाव और प्रेम अगर ऐसे संघर्ष में विशेषरूप से जागृत और तेजस्वी बन जाते होंगे तो सुसंवाद और मनोमिलन प्रगट होगा ही, यह दृढ़ जानो ।'

'अपरा प्रकृति की प्रवत्ति की 'नींदणी' (निराई, नलाई) करो ।' :

श्रीमोटा ने कहा है, 'इस जीव' को अपरा प्रकृति की प्रवृत्तियाँ कुछ कम नहीं थी । प्रभुकृपा से उन्हें खोजता रहता, उसके लिए सतत प्रार्थनाभाव में डूबा रहता । **जीवभाव की वृत्तियों को खोजकर उनकी 'नींदणी' करना आवश्यक है ।'**

'नींदणी' याने क्या ? : 'नींदणी' याने उसकी निंदा करना इतना ही नहीं, बल्कि उसे उखाड़कर फेंकना भी है ।

'नींदणी' कब होगी ? : 'जब किसान की समझ में आता है कि 'जो सार्थ है, उसके साथ ही व्यर्थ भी उगा हुआ है, वह उखाड़कर फेंक देता है—इसे ही 'नींदणी' कहा गया है ।

'नींदणी' करने की क्रिया साधक को जागृतिपूर्वक करते रहना अत्यावश्यक है ।

समर्पण :

'जीवन में होते रहते सभी प्रकार के कर्म, विचार, वाणी, वृत्ति, ऊर्मि, भावना, संबंध, संपर्क - यह सब कुछ ही हमें ज्ञानभक्तिपूर्वक उसके चरणकमलों में सतत एकसा समर्पित करते रहना है ।'

'जीवनविकास की साधना करनेवाले साधक को यह समर्पणयज्ञ भावना क्षणक्षण में एकसा जारी रखना चाहिए, तो ही वह भगवान का भक्त बन सकता है । जो कुछ भी घटे, वह तुरंत ही उसे (प्रभु को) याद कर के उसके चरणों में सौंप देना है ।'

'भाव की एकाग्रता आवश्यक ।' :

'वर्तमान में भगवान के भाव में, ज्ञानभक्तिपूर्वक नम्रता प्रगट कर के, सभानता से श्रीप्रभु में चित्त लगाकर, हृदय से जुड़कर, वैसा भावपूर्वक आचरण प्रगट होना चाहिए ।'

'कर्म करते समय जो विचार, वृत्ति, ऊर्मि भावना प्रगटते हैं, उन पर से भावना कौनसी कक्षा में और कैसी प्रगट हुई है, यह हम जान पाते हैं। भावना प्रगट होते ही गुणशक्ति प्रगट हुए बिना रहते नहीं ।'

'भगवान की कृपाशक्ति के अनुकूल बन जाओ ।'

'श्रीभगवान की कृपाशक्ति असीम और अपार है । लेकिन उस कृपाशक्ति के अनुकूल जीना अगर हम से बनता नहीं तो उसकी कृपा की शक्ति का स्वीकार भी हम से नहीं होगा ।'

'प्रभु की कृपाशक्ति को काम करने के लिए, 'आधार' हमें अपने अंदर प्रगट करना चाहिए । अपने चित्त में जीवनविकास के लिए भावना सचमुच ही प्रगट हुई हो तो ही श्रीसद्‌गुरु को हृदय में प्रगट कर के उनकी भावना फलित होने के लिए ज्ञानभक्तिपूर्वक सदुपयोग हो सकता है ।'

'महत्त्व कृपा का ही है ।'

अपना 'कर्तृत्वपन', अपना बल, स्वयं से होनेवाला पुरुषार्थ इनका उसकी (प्रभु की-श्रीसद्‌गुरु की) कृपा के सामने कुछ भी मूल्य नहीं है। इसका स्पष्ट भाव अपने अंदर जागृत होना चाहिए।'

'अहंकार पूर्णतः गलना चाहिए ।'

'इसका अर्थ ऐसा नहीं कि यह सब करना नहीं है, बल्कि जब तक सूक्ष्म 'अहंपन' गल जाता नहीं है, तब तक भगवान का भाव लाखों उपाय करने पर भी प्राप्त होनेवाला नहीं है ।

'अहंपन' को-अहंकार को जड़मूल से उसकी (प्रभु की) शून्यता में पिघलाने के लिए और भगवान की भावना को प्राप्त करने के लिए हमें अहम् का दिव्य रूपांतरण कर के उसका ज्ञानयुक्त सदुपयोग करना है ।'

'अहम् सूक्ष्म और सूक्ष्म होता जाता है ।' :

'जैसे-जैसे जीवन की उच्चतर और उच्चतम कक्षाएँ प्रगट होने लगती हैं, वैसे-वैसे अहम् का सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम स्वरूप बदलता रहता है ।'

'छिन्नभिन्न हो गया हुआ और टूटा हुआ लगने पर भी नये-नये वेश धारण कर के नये रूप में वह अहंकार प्रगट होता है।'

'साधना के भाव की अखंडता प्रगट होती है, तब उसमें से फलित हो गये हुए विवेक से हम इस अहम् को पकड़ सकते हैं और उसे योग्य प्रकार की दिशा प्रभुकृपा से दे सकते हैं ।'

कर्म का प्रेमभक्ति से स्वीकार

'प्राप्त हो गया हुआ कर्म अपने जीवनविकास के हेतु से प्रेमभक्तिभाव से स्वीकार किया जाए, यह साधना में अति आवश्यक है । हृदय में उत्कट भाव प्राप्त कर के उत्तम रीति से कर्म करने से, और उसमें (कर्म में) प्रभुप्रीत्यर्थ की भावना को अखंडरूप से जीवंत-जागृत रखने से, गुण और शक्ति दोनों प्रगट होते हैं ।' **'कर्ममात्र भावना को प्राप्त करने के लिए है । कर्म से भावना साकार होती है । इसलिए जीवन को उन्नयन करने में कर्म की विशेषता है ।'**

साधना की दृष्टि से 'मरण'

'मरे बिना कोई स्वर्ग नहीं जा सकता है । हमें भी मरना है ही, और वह जितना जल्दी हो, उतना अच्छा ।'

'यहाँ 'मरने' का अर्थ है—**अहंशून्य होना और द्वंद्वातीत एवं गुणातीत होना । उसके बाद जो पुनर्जीवन प्राप्त होता है, और वही 'सच्चा जीवन' कहा जाता है । सांप्रत का अपना जीवन तो द्वंद्वात्मक और गुणात्मक है ।'**

लगे रहो :

'तुम सब को लिख-लिखकर भी क्या होगा ? बहुत कुछ लिखा भी है । लेकिन जहाँ ध्येय में ही मंदता हो और ध्येय की सच्ची और नितांत अनिवार्यता प्रगट हुई ही नहीं हो, वहाँ उपाय भी मंद ही होंगे । फिर भी मेरी आपसे प्रार्थना है कि किसी-न-किसी तरह साधना के अभ्यास में लगे रहो और उसमें भाव प्रगट हो इसका भान रखो ।'

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

३. प्रार्थना पूज्य श्रीमोटा के शब्दों में

अंतर्मुखता, शक्ति, आत्मविश्वास प्रगट करने के लिए प्रार्थनाः

'प्रार्थना जैसा सरल और सहज दूसरा कोई भी साधन नहीं है । अंतर में से आर्द्र और आर्त भाव से प्रगट हो गयी हुई प्रार्थना शक्तिस्वरूप बन जाती होती है । प्रार्थना अगर उसके सच्चे अर्थ में और भाव में प्रगट हुई हो तो वह कदापि मिथ्या सिद्ध हो सकती नहीं है । प्रार्थना ध्येय के हेतु को सदैव जीवंत रखती है और ध्येय को साकार करती है ।'

'सच्चे हृदय से आर्द्र और आर्त भाव से की हुई प्रार्थना अंतर्मुखता प्राप्त करा देती है । प्रार्थना 'जीव' की स्वयं की शक्ति को प्रगट कर के उसमें आत्मविश्वास का जन्म कराती है ।'—ऐसी प्रार्थना 'यह लेखक' (पूज्य श्रीमोटा) रोज़ और रोज़ किया करता था ।'

प्रार्थना कब प्रगट होती है ? कब फलीभूत होती है ? :

जब साधना में रुचि निर्माण होकर अपना हृदय वहाँ खींचा जाने लगता है और हम पिघलने लगते हैं, तब अपने अंदर एक

प्रकार का उत्कट आर्तभाव और आर्द्रभाव प्रगट होता है और तब अपनी ऊर्ध्वगति होने में जो-जो अड़चनरूप लगता होता है, वह इतना चुभता है और इतनी तीव्रतम वेदना प्रगट होती है कि उससे मुक्त होने के लिए प्राणांतिक प्रयत्न किये जाते हैं । वैसे प्रयत्न में जब प्रामाणिकता, वफ़ादारी, निष्ठा संपूर्णतः प्रगट होते हैं, तब वैसी हृदय में होनेवाली प्रार्थना की पुकार से जीवनविकास की भावना के लिए बल-स्फूर्ति-गति प्रगट होते हैं, जिसे केवल अनुभवी ही जान सकता है ।

'प्रार्थना में जीवंत-जागृत पुरुषार्थ प्रगट होना चाहिए ।':

'जब तक प्रार्थना में हृदय से सच्चा और संपूर्ण जीवंत-जागृत पुरुषार्थ प्रगट होता नहीं है, तब तक वैसी प्रार्थना जीवनविकास की साधना में फलीभूत नहीं हो सकती है ।'

'अंतर से प्रगट होनेवाली आर्त और आर्द्र प्रार्थना ही सुनी जाती है ।' :

अपने अंतर में प्रगट हो गये हुए उत्कट और आर्त-आर्द्र भाव की प्रार्थना ही फलित होती है, वही प्रार्थना सुनी जाती है । केवल ऊर्मिप्रधान साहित्यिक प्रार्थना से जीवनविकास नहीं साधा जा सकता है, यह दृढ़ मानना । केवल तत्कालीन ऊर्मिजन्य प्रार्थना से साधना में विशेष कुछ नहीं घट सकता है ।

'प्रार्थना एक प्रकार का साकार ध्यान ।' :

'प्रार्थना भी एक प्रकार का ध्यान है । प्रार्थना साकार है, ध्यान निराकार है ।'

'प्रार्थना से सब संभव ।' :

'दीर्घकाल पुरुषार्थ कर के जो काम साध्य हो सकते हैं, वे या पुरुषार्थ कर के भी असंभव लगनेवाले काम, ये सब केवल

प्रार्थना से त्वरित साध्य हो सकते हैं । लेकिन सच्ची प्रार्थना की अनिवार्य रूप से आवश्यकता निर्माण होकर वह अंदर से जागृत हो जानी चाहिए ।'

'अपने हृदय में-हृदयपूर्वक और सच्चे 'भाव' का आश्रय कर के आर्तता से और आर्द्रता से-जो 'जीव' प्रार्थना का अवलंबन करता है, उसे वह कभी भी निराश करती नहीं है ।'

'प्रार्थना करने की कला प्राप्त हो गये हुए साधक को जीवन में बल, प्रेरणा, सहानुभूति, धैर्य, हिंमत आदि प्राप्त होते हैं ।'

'प्रार्थना के एकसा भावपूर्ण अभ्यास से कर्मो में रहे हुए दोष कम होते हैं और सद्‌विचारों के लिए प्रेरणा प्राप्त होती है । प्रार्थना से सब कुछ घट सकता है । प्रार्थना कोई भी काम करते हुए की जा सकती है ।'

'प्रार्थना यह एक सरल, सहज और उत्तम साधन है ।'

आत्मनिवेदन

'आत्मनिवेदन में हृदय में रहे हुए भाव का महत्त्व है । आत्मनिवेदन से अपना हृदय भगवान के हृदय से जुड़ जाता है ।'

'वह मनादि का मैल धो डालने के लिए प्रभु के चरणकमलों में किया गया हुआ निवेदन है । उसमें से 'नम्रता' और 'शक्ति' प्रगट होनी चाहिए । जिसका निवेदन किया गया, वैसे प्रकार का कर्म हम से फिर से न हो, इसकी 'ज्ञानयुक्त जागृति' प्रगट होनी चाहिए, तो ही उस आत्मनिवेदन का कुछ अर्थ है ।'

भजन :

भजन गाने पर अगर वैसा उत्कट भाव अंतर में निर्माण होता हो तो ही उसे गाने का उपयोग ।

✤ ✤ ✤

॥ हरि:ॐ ॥

४. ध्यान—पूज्य श्रीमोटा के शब्दों में

ध्यान का हेतु

'ध्यान में बैठने का एक हेतु नीरवता प्रगट करने का है और दूसरा हेतु 'वह नीरवता की स्थिति अपने रोज़ के कर्मव्यवहार होते हुए भी न ढले और कर्म अपनेआप सहजता से हुआ करें' ऐसी शक्ति जागृत करने का है ।'

एकाग्रता की प्राप्ति बिना ध्यान असंभव

'जैसे व्यापार करने के लिए पूँजी की नितांत आवश्यकता है, वेसे ही शुरू-शुरू में मनादिकरणों में एकाग्रता प्राप्त करना भी ध्यान के लिए आवश्यक है । एकाग्रता प्राप्त किये बिना ध्यान लगने की संभावना बिलकुल नहीं है ।'

ध्यान

'ध्यान का कोई एक ही प्रकार होता नहीं है ।'

'अपने जीवन की भूमिका में अखंडितता से एकाग्रता का भाव प्रगट हुए बिना ध्यान संभव नहीं है ।'

'ध्यान क्या है, वह किसका, किसलिए और कैसे करना इसकी समझ बहुत कम लोगों को होती है ।'

'आँखें बंद कर के बैठना उसे ही आजकल ध्यान कहने लगे हैं, वैसा नहीं है ।'

'ध्यान के लिए निश्चित समय, निश्चित स्थान और विशिष्ट प्रकार की अखंड एकाग्रतायुक्त मनोदशा इन सब की अति आवश्यकता है ।'

'विचारों को साक्षीभाव से देखते रहो ।'

'ध्यान में जो-जो विचार उठें उन्हें-नदी के किनारे पर बैठकर

हम उसके पानी को बह जाते हुए देखते रहते हैं-वैसे ही विचारों को साक्षीभाव से सिर्फ़ देखते रहना है ।'

'एक के बाद एक विचार आकर चला जाए तो कोई हर्ज़ नहीं, लेकिन उस विचार में रसपूर्वक भाग न लेना । आकाश के बादलों की तरह अपना अंतर उनसे घिर न जाए इस पर ध्यान रखना चाहिए।'

'ध्यान में जो विचार आएँ उन्हें आने देना, उनमें रस लिये बिना साक्षीभाव से उन्हें देखते रहने का अभ्यास करते रहना । जो कुछ आये—अच्छा या बुरा—उसका प्रेमभक्तिभाव से, हेतु के ज्ञानभान के साथ समर्पण करते रहना । इस प्रकार से उस-उस विचार के समर्पण की अखंड हारमाला चलती रहे, वह भी एक प्रकार का ध्यान है ।'

श्रीसद्‌गुरु का ध्यान :

'दूसरे एक प्रकार के ध्यान में हम अपने श्रीसद्‌गुरु के हृदय के प्रति एकाग्र और केंद्रित रहने को सतत प्रयत्नशील रहते हैं और वैसा भाव तब अखंडितता से एकसा 'जीवंत जागृत' प्रगट होता रहता है ।'

शून्यत्व का ध्यान :

'और एक ध्यान शून्यत्व का भी हो सकता है। फिर भी वह शून्यत्व रूखा-सूखा या अभावात्मक (भावविहीन) नहीं होता है। शून्यावकाश यानी 'कुछ भी नहीं' ऐसा नहीं, बल्कि उसमें भी एक प्रकार का गूढ़ भाव व्यापकर रहा हुआ होता है ।'

ध्यान का परिणाम :

'ध्यान से एकाग्रता और केंद्रितता प्रगट होती है, इतना ही नहीं, बल्कि तटस्थता, समता, प्रसन्नता आदि भी प्रगट होते

हैं । इसका उपयोग रोज़ के जीवन के वर्तन-व्यवहार में समझपूर्वक करना है। यानी कि हम जो कुछ कार्य करते हैं, वह शांति से, प्रसन्नता से, समता से, तटस्थता से करते रहें तो ध्यान में भी गहरे और गहरे जा सकते हैं ।'

'सुबह में घंटा-आधा घंटा ध्यान किया तो ख़त्म हुआ', ऐसा कई लोग मानते हैं, वह योग्य नहीं है ।'

'ध्यान के परिणामों को जीवनव्यवहार में प्रगट करते रहो ।'

'ध्यान से फलित होनेवाले परिणाम को अपने व्यवहार-वर्तन में प्रगट करते रहें और ध्यान से फलित होनेवाली भावना को भी व्यवहार-वर्तन में होशपूर्वक प्रगट करते रहें तो उससे ध्यान में एक प्रकार की अखंडता प्रगट रहती है ।'

'दीर्घकाल सद्‌भावपूर्वक सेवन किये हुए निरंतर अभ्यास से ध्यान में भावात्मक शून्यावकाश का अनुभव होता है ।'

'दूसरे की ओर न देखो—अंतर्मुख हो जाओ ।':

'दूसरे की ओर देखने से हम दुःखी हो जाते हैं। दूसरों का साधन अच्छा हो रहा है, यह देखकर 'लघुताग्रंथि' प्रगट हो सकती हैं। 'हम नालायक ही सिद्ध हुए' ऐसा लगाकर दुःखी हो जाने की संभावना रहती है ।

'दूसरे जैसा बनने की लालसा न हो ।' :

'हमें अपनी इच्छाशक्ति को सशक्त करना है, द्विधावृत्ति छोड़ना है। किसी दूसरे जैसा बनने की लालसा होती हो तो उसे जड़मूल से उखाड़कर फेंक देना चाहिए ।'

'खुद का आत्मनिरीक्षण करो ।' :

'हम स्वयं जहाँ खड़े हैं, वहाँ से आगे बढ़ने के लिए खुद के ही दोषों का निरीक्षण कर के उनसे मुक्त होने के लिए हमें

उन प्रकार के प्रयत्नों के साथ ही प्रार्थनासाधन का भी उपयोग करना है ।'

✤ ✤ ✤

॥ हरि:ॐ ॥

५. पूज्य श्रीमोटा —— एक बहुरंगी व्यक्तित्त्व

श्रीमोटा के व्यक्तित्व के कई पहलू हैं, उनमें से कुछ पहलुओं का संक्षिप्त परिचय कराना जरूरी है ।

१. लोकलज्जा और लोकनिंदा से मुक्त :

नाड़ की हाफपैंट, माथे पर रुमाल लपेटा हुआ और बाकी शरीर खुला–इस पोशाक में घूमने में उन्हें संकोच नहीं होता था। जब 'हरिजन सेवा संघ' के मंत्री थे, तब भी उनकी पोशाक ऐसी ही रहती थी । शादी में और बाहर भी इसी पोशाक में घूमते थे। कभी–कभी लुंगी की तरह धोती लपेटकर और माथे को साड़ी लपेटकर रहते थे ।

चूड़ियाँ पहनकर प्रवास :

मज़ाक–मज़ाक में पहनने को दी हुई सोने की चूड़ियाँ उन्होंने पहनकर दिखार्यीं, इतना ही नहीं, शर्त के अनुसार कुंभकोणम, त्रिची, मद्रास, बंबई, अहमदाबाद ऐसा सफ़र भी उन्होंने चूड़ियाँ पहनकर ही किया, क्योंकि वैसा करने से वे चूड़ियाँ उन्हें मिलनेवाली थी । शर्त के अनुसार जीती हुई वे चूड़ियाँ उन्होंने साबरमती आश्रम को समाजसेवा के लिए दे दीं ।

स्त्रियों के कपड़े पहनकर मंदिर में :

स्त्रियों की भावना प्रगट हो, इस हेतु से और तन्मयता प्रगट करने के लिए कन्याकुमारी माता का दर्शन करते समय वे स्त्रियों की पोशाक पहनकर ही गये थे ।

'मैं गधा हूँ ।' :

जब चिढ़कर किसी ने उनसे कहा, 'आप गधे हैं ।–तब गुस्सा न होकर उन्होंने उसपर एक काव्य रचा । **उसका भावार्थ था– 'मैं गधा हूँ, क्योंकि मैं ईश्वर को भूल गया हूँ ।'**

२. घृणा से मुक्त :

एक बार वे एक महीना साधना हेतु मध्यप्रदेश में गये थे । वहाँ चट्टानों में एक कुएँ जैसी जगह थी, जहाँ जाना बहुत दुष्कर था । वे वहाँ रस्सी की सहायता से अंदर उतरे और कुछ आहार लिये बिना केवल स्वमूत्र और स्वविष्टा खाकर चौबीस–पच्चीस दिन रहे । उस समय वे कुछ खाते नहीं थे, तो भी रोज़ मल बाहर निकलता था । 'दुर्गंध नहीं थी और गोबर जैसा स्वाद था,' ऐसा उन्होंने बताया ।

'घृणा नहीं हुई । घृणा, स्वाद-अस्वाद, सुंदरता-असुंदरता इन द्वंद्वों के पार होना यह हेतु था । अतिशय उत्कट भावना के आवेग में यह घटा । इसे 'अघोर पंथी साधना' भी कह सकते हैं। मुझे स्वयं को सूझा, इसलिए मैंने यह किया, किसी के आदेश से नहीं।–ऐसा भी श्रीमोटा ने कहा है ।

३. स्थितप्रज्ञ :

नडियाद के हरि:ॐ आश्रम में ८×१० फीट इतने छोटे से कमरे में वे रहा करते । आश्रम के नियमानुसार उसमें पंखा भी नहीं था । शुरू–शुरू में भारी बोझ से भरा हुआ संदूक सिर पर रखकर वे कई बार आश्रम से रेलवे स्टेशन तक पाँच मील चलकर जाया करते थे । 'आश्रम को खर्च का भार न हो' यह हेतु भी उसके पीछे रहता था और सहज तप भी हो जाता था ।

४. नम्रता और सेवावृत्ति :

नम्रता : अपने ही सहकारियों का भारी सामान, ट्रंक्स, इ. ले जाना, 'हरिजन सेवा संघ' में मज़दूर की तरह काम करना, मलमूत्र साफ़ करना यह भी कई बार घटा है ।

सेवावृत्ति : बीमार व्यक्ति की रात-रात जागकर सेवा करना, निगरानी रखना, स्वजनों का और सेवकवर्ग का ख़्याल रखना, वैसे ही उनकी प्रसंगोपात सेवा करना, आनंदपूर्वक किया करते थे ।

नववर्ष की भेंट : अपने सहकारी व्यक्ति* का बेटा मोहन-इसने नववर्ष के दिन मज़ाक में दी हुई चुटकीभर धूल उन्होंने भावपूर्वक प्रसादभाव से ग्रहण की । भगवान ने ही उसके रूप में इस निमित्त से प्रसादी दी है ऐसा भाव था, नम्रता प्राप्त करने का प्रयत्न था ।

'शौच को न जाना' : शौच जाते समय अहमदावाद के साबरमती आश्रम में 'हरिजन कन्या छात्रालय' की छोटी-छोटी लड़कियाँ कई बार उन्हें मज़ाक से कहती, 'चुनीभाई, शौच को न जाना ।'-तब वे, 'ऐसा है ? ठीक ।' कहकर लौट जाते ।

स्वयं की धारणाएँ, मत, आग्रह इत्यादि तोड़ना यह हेतु रहता था, साधना का भाव रहता था । नम्रता को अंतिम हद तक-शून्य तक ले जाने का उनका प्रामाणिक प्रयत्न रहता था ।

५. नौकर-चाकरों के प्रति समानता :

वे गाड़ी में सदा ड्राइवर के पास में ही बैठते थे । सेठ और ड्राइवर ऐसा भेद मन में कभी नहीं रखते थे । सब से प्रेमपूर्वक और समभाव से बातें किया करते थे ।

---

* श्री नरहरिभाई परीख

६. नौकर-चाकरों के प्रति उदारता व क्षमाशीलता :

नौकर-चाकरों ने चोरी की, या उनमें दूसरे दोष हो, तो भी उनका कभी त्याग नहीं किया, बल्कि अधिक प्रेम देकर अपनाया । प्रेम से सभी को जीता, उनकी ग़लतियों को क्षमा किया ।

७. माँ और शिक्षक :

एक माँ की भाँति वे बालक का मलमूत्र साफ़ करते थे, उसे स्नान कराते थे, उसके साथ खेलते थे, उन्हें घूमाने को ले जाते थे । इतना ही नहीं सब के सामने उसका 'घोड़ा' बनने में भी उन्हें शर्म नहीं आती थी । बालक की पहियों की बाबागाड़ी स्वयं खींचते हुए बाज़ार जाने में उन्हें लज्जा-संकोच होता नहीं था । माँ की तरह वे बालक को गोद में लेकर सोया करते थे ।

माँ की भूमिका निभाने के अलावा उसे पढ़ाना, सिखाना भी श्रीमोटा आनंदपूर्वक किया करते थे । इस तरह वे बालक की माँ भी थे और शिक्षक भी ।

८. गुप्त साधना :

जिनके साथ श्रीमोटा ने कई साल सेवाकार्य किया, वे श्रीठक्करबाप्पा, श्रीपरीक्षितलाल मजमुदार, श्रीहेमंतभाई नीलकंठ जैसे सहकारी मित्र, जेल में सहकारी व्यक्ति-इन सब को 'श्रीमोटा साधक हैं और साधना कर रहे हैं' इसकी किंचित्मात्र भी जानकारी कई सालों तक नहीं थी । बहुत देर पश्चात् उन्हें यह सब ज्ञात हुआ ।

९. शिष्य नहीं बनाये :

कभी, किसी को भी शिष्य नहीं बनाया या शिष्य बनने के लिए कभी सुझाव भी नहीं दिया । फिर भी, साधना में उन्नति करने की जिनकी हृदयपूर्वक सच्ची भावना थी, उन्हें प्रेम से मदद की ।

'मैं गुरु नहीं हूँ' ऐसा ही वे सतत कहा करते थे ।

१०. अभय :

अभयप्राप्ति की कसौटी के लिए वजुभाई जानी के साथ गिरनार के घने जंगल में सिंहों के बीच सात दिन तक रहे थे ।

११. लक्ष्मी का उपयोग किया, उपभोग नहीं किया :

लक्ष्मी की कभी उपेक्षा नहीं की । वह 'शक्ति' है, ऐसा वे मानते थे । लेकिन जिनके जीवन में 'गुण' और 'भाव' प्रगट नहीं हुए हैं, उन जैसों को प्राप्त हो गयी हुई लक्ष्मी जीवन का उत्कर्ष नहीं करा सकती है, ऐसा उनका कहना था ।

१२. 'ढोंगी संत ?' :

एक बार मुंबई के एक स्वजन श्री दिलीपभाई मणियार ने उनसे कहा, '**मोटा**, आपको रोग-बोग कुछ नहीं है । यह सब दिखावे का है, ढोंग है ।' एक दो बार फिर से वही वक्तव्य करने के बाद, उसका वह वाक्य पकड़कर वे बोले, 'तू एक सोने का मुकुट बनवा ले और उस पर बड़े अक्षरों में 'ढोंगी संत' लिखवा ले । मैं उसे ज़ाहिर रीति से सब के सामने पहनूँगा, फिर लोगों को इसकी जानकारी होगी ।'

बोलनेवाले को बहुत पछतावा हुआ और उसने माफ़ी माँगी, लेकिन वे पीछे नहीं हटे और उसे मुकुट बनाकर लाना पड़ा । ज़ाहिर समारंभ में सब के सामने श्रीमोटाने उसे पहन लिया । इस प्रसंग के फोटो भी उपलब्ध हैं ।

१३. भावोद्रेक :

कई बार स्वजनों से मिलते समय या मात्र उन्हें देखते ही, वे गद्‌गद हो जाते थे, आँखों में आँसू भर आते थे और भावविभोर हो जाते थे ।

उनका कहना था, 'अगर 'भाव' न हो, तो संबंधों का कोई अर्थ नहीं है । संबंध 'जीवंत-जागृत' होते हैं तो केवल 'भाव' के कारण ही ।'

१४. वृक्षप्रेमी :

नडियाद, कुंभकोणम्, साबरमती और सुरत आश्रम में, वैसे ही, और भी कई स्थानों में वृक्षों का संवर्धन किया, कई नये वृक्ष लगाये । **वे आश्रम के वृक्ष काटने को संमति नहीं देते थे ।** नडियाद आश्रम में वटवृक्ष की बढ़ी हुई नयी शाखाओं को जमीन में गहराई तक गड़वाकर उन्होंने उसका विस्तार बढ़ाया ।

गुजरात के सब से पुराने और भावना की दृष्टि से अति महत्त्व के 'कबीरवट' (मंगलेश्वर, ता.जि. भरुच, गुजरात) का (भक्त कबीर जब गुजरात में आये थे, तब उनके चरणामृत से वट की सूखी डाली अंकुरित हुई थी ।) रक्षण किया, उसके पुनरुद्धार के लिए मेहनत की व निधि दी ।

१५. छोटों की कद्र :

नौकर-चाकर और बच्चों से उनका समानता का, सम्मान का और प्रेमपूर्ण बर्ताव रहता था । सब एक ही पंक्ति में भोजन लिया करते, फिर वह सेठ हो, ड्राइवर हो, मज़दूर हो, हज्जाम हो या भंगी हो ।

१६. प्रार्थना :

वे साधना के प्रारंभ से ही प्रार्थना पर बहुत भार देते थे । 'निजी प्रश्न, समस्याएँ, साधना की बाधाएँ इन सब का हल प्रार्थना से और साधना से ही प्राप्त होगा,' ऐसा वे कहा करते थे ।

'मैं भगवान का नौकर हूँ, चाकर हूँ, मुनीम हूँ । मैं प्रार्थना द्वारा उनके चरण में सब निवेदन करूँगा,' ऐसा श्रीमोटा आनेवाले सभी से कहते ।

१७. शरीर कई रोगों का घर, फिर भी कार्यरत :

उनकी कमर के चार-पाँच मनके करीब-करीब नष्ट हो गये थे । आखिरी कई वर्षों में वे चल भी नहीं सकते थे । उन्हें उठाकर कुर्सीगाड़ी में बिठाकर घुमाना पड़ता था । कमर के मनकों में सतत पिन के चुभन जैसी तीव्र पीड़ा होती रहती ।

सर्पदंश की गरमी भी शरीर में थी ही ।

'ग्लूकोमा' की वजह से असहनीय सिरदर्द सतत रहता था, एसिडिटी, संग्रहणी, शरीर में पानी भर जाना, गले में दर्द, चमड़ी की एलर्जी, खाज... आदि सब प्रकार की व्याधियाँ और पीड़ाएँ थीं ।

अचानक हमला करनेवाली दमा की बीमारी ने भी कई साल तक साथ दिया । बहुत बार ऑक्सिजन लेना पड़ता था ।

'प्रोस्टेट ग्लेन्ड की बीमारी, मूत्रपिंड की बीमारी, बवासीर (अर्श) ने भी उनके शरीर में घर किया था ।

क्षय, डायाबीटिस भी कई दिनों तक थे ।

वजन घटाने से डायाबीटिस कम हो सकता है, यह डॉक्टरों ने बताया, तब उन्होंने पंद्रह दिन में पंद्रह सेर वजन घटाया और डायाबीटिस से मुक्त हो गये ।

बीमारियों का कारण :

चैतन्यस्थित पुरुषों के संपर्क में जो-जो व्यक्ति आते हैं, उनके प्रति कोई निमित्त से तादात्म्यभाव निर्माण होने के कारण, उस-उस व्यक्ति की पीडाएँ-रोग-भोग, उस संतपुरुष पर असर करते हैं। कुछ शरीर में से गुजर जाते हैं, कुछ शरीर को चिपके रहते हैं ।

तादात्म्यभाव से रोग-कुछ उदाहरण :

संत बीमारियाँ अपने शरीर पर नहीं ले लेते । लेने में तो प्रयत्न होता हैं । वह तो घटता है निमित्त से, सहज ही । जैसे -

१. श्रीमोटा की भतीजी जब क्षय से बहुत बीमार थी, तब उसके लिए उन्होंने भगवान से प्रार्थना की और उन्हें खाँसी और खून की उलटियाँ होने लगी ।

२. जयाबहन जानी को प्रसूती के समय असहनीय प्रसूतीपीड़ा हो रही थी, तब उन्होंने वह पेटपीड़ा सह ली और जयाबहन को आराम हो गया ।

३. गांधीजी को चरणस्पर्श कर के नमस्कार करने के बाद उनके पेशाब के जहरीले कीटाणु श्रीमोटा के पेशाब में दिखायी दिये और कई दिन मूत्रपिंडों की बीमारी थी ।

४. 'डायाबीटिस'... और

५. 'स्पाँडिलायटिस' श्रीमती कांताबहन (श्री नंदुभाई की पत्नी) निमित्त थीं । ये दोनों बीमारियाँ भी उसी तरह तादात्म्यभाव से ही हुईं ।

किताब की पृष्ठमर्यादा का भान रखकर, संक्षेप में श्रीमोटा के कुछ पहलुओं पर प्रकाश डालने का किंचित् प्रयत्न किया है । 'कण से मन की परीक्षा' इस न्याय से अप्रगट ऐसा उनकी जीवनी का और व्यक्तित्व का भाग, हरएक अपने-अपने अंतर की गहराई में मौन में जान ले यही उचित है ।

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

६. पूज्य श्रीमोटा का साहित्य और पद्यलिखाई

'जो अनुभव किया, वही लिखा है । :'

श्रीमोटा ने स्वयं कहा है, 'प्रभुकृपा से 'यह जीव' (श्रीमोटा)

जो अनुभव करता है, वही लिखता है, फिर भले ही उसमें दूसरे किसी समर्थ की या सत्पुरुष की वाणी से साम्य हो या न हो। 'इस जीव' ने कुछ पढ़ा नहीं है, किया नहीं है। महात्मा पुरुषों के कई वचनों के साथ 'इस जीव' की लिखाई में साम्य, कई स्थानों पर प्रगट हुआ दिखायी देता है, लेकिन उससे तो ऐसा कदापि न माना जाएगा कि वह सब मेरा नहीं है।'

'जो समझ प्रगट हुई, उस प्रकार से लिखता गया।':

'जीवनविकास की साधना में से जो-जो समझ प्रगट होती गई उस-उस प्रकार से मैं लिखता गया। हरएक का अनुभव भिन्न भी हो सकता है। सत्यरूपी हीरे के पहलू अनंत हैं और हरएक अपनेआप को प्राप्त हो गये हुए अनुभव-पहलुओं के अनुसार ही, उसके बारे में लिखता होता है।'

'मुझे समझाना आता नहीं है। सभी परिस्थितियों में चैतन्ययुक्त ज्ञानपूर्वक तटस्थता आवश्यक होती है। केवल चर्चा में मुझे रस नहीं आता है।'

'मेरी लिखाई सीधी-सादी है, क्योंकि आध्यात्मिक साहित्य के शास्त्रीय शब्दों की मुझे जानकारी नहीं थी।'

'मेरा जीवनध्येय जो निश्चित किया था, उसकी तरफ़ जाने की 'भावना और धारणायुक्त पुरुषार्थ' सतत होता था और उसके लिए सतत जो जिज्ञासा-ज्वलंतता जागृत रहती थी, उनकी तरफ़ दृष्टि रखकर ही लिखता हूँ।'

'गीता के अलावा और कोई शास्त्र पढ़ा नहीं, सब प्रभुकृपा से अवतरण।':

वैसे तो श्रीमोटा की पढ़ाई गुजराती विषय लेकर बी.ए. तक हुई थी, फिर भी छियासठ (६६) किताबें लिखी हैं।

गीता के अलावा और कोई शास्त्र उन्होंने पढ़ा नहीं, फिर भी भगवतकृपा से यह सब 'अवतरण' हुआ।

उनकी लिखी पुस्तकें शुरू-शुरू में बिना नाम के ही छपती थीं। उन्होंने स्वजनों को लिखे हुए ख़तों का समावेश कई ग्रंथों में है। काव्य, प्रार्थना, भजन, गज़ल स्वरूपों में भी ग्रंथ हैं।

उनके उपलब्ध बोल, इन्टरव्यूज़, अप्रसिद्ध ख़त, प्रवचन, टेप की हुई प्रश्नोत्तरी...आदि की पुस्तकें भी प्रकाशित हो रही हैं।

किसी ने सुझाव दिया और खर्च की जिम्मेदारी ली, तब-तब लिखते गये :

जिस ने जिस का सुझाव किया और छपाई के खर्च की जिम्मेदारी स्वीकार की, तब-तब उन-उन विषयों पर लिखते गये।

भाव, जिज्ञासा, श्रद्धा, निमित्त, रागद्वेष, कर्मउपासना, कृपा, स्वार्थ, प्रेम, मोह...ऐसे कई भाववाही विषयों पर लिखते गये।

'यह सब भगवान का प्रताप।' :

उन्होंने कहा है, 'यह सब मेरा नहीं बल्कि भगवान का प्रताप है। गुरुमहाराज एक बार मुझे बोले थे, 'तू भगवान का 'नाम' ठीक से ले, और फिर देख, तुझ में कैसी शक्ति जागृत होती है वह।' ...मेरे गुरुमहाराज के ये शब्द आज खरे साबित हुए हैं।

'उन्होंने सब लिखवा लिया।' :

'मेरी साधना की किताबें भी उन्होंने ही मुझ से लिखवा ली हैं।...मेरे शरीर में कई रोग थे और हृदय निचोड़ा जाए ऐसी गहन पीड़ा रहते हुए भी भजन लिखे गये, वे, कोई अंदर जागृत रहकर, लिखवा लेता न हो, तो कैसे संभव है?'

वे और भी कहते हैं, 'भगवान ने मुझे 'बुद्धू का विद्वान' बनाया है यह बात झूठी नहीं है। जैसे मेरा स्मरण धारावत्

(अविरत) शुरू है, वैसे ही मेरी लिखाई भी धारावत् ही जारी है।'

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

पूज्य श्रीमोटा की पद्यलिखाई

पूज्य श्रीमोटा की पद्यलिखाई यह एक निराला ही विस्तृत विषय है और उसे संक्षेप में व्यक्त करना यह असंभव है।

उन्होंने ये काव्य भुजंगी, वसंततिलका, मंदाक्रांता, शार्दूल-विक्रीड़ित, शिखरिणी, अनुष्टुप ऐसे अनेकविध छंदों में लिखें हैं।

कई मुक्तक काव्य (मुक्त काव्य) हैं।

कई गज़ल स्वरूप में व्यक्त किये गये हैं। उनके काव्य की अभिव्यक्ति में कौन-कौन से विषय समाविष्ट हुए हैं, यह देखने पर मानवी मन चकित हो जाता है।

मनने (मन को), तुज चरणे (तेरे चरणों में), याचना, श्रद्धा, ध्येयलक्षिता, शरणागति, जीव-शिव, कृपा दे, कब, निवेदन, आत्मनिरीक्षण, साधना, हृदयपुकार, श्री गंगाचरणे, माँ को अंजलि, सच्ची ईश्वरभक्ति, साधना की पाराशीशी, प्रेरणा, दुःख, दुःखमर्म, दुःख-प्रभु का आशीर्वाद, गूढ़तत्त्व, पुरुषार्थ, लगनी, सच्ची जीवनदृष्टि, शून्य, एक आत्मनिवेदन, नामस्मरण, गुरुमाहात्म्य, साधना अनिवार्य, स्वप्न में साधना, मायका, जीवनधंधा, समर्पण, स्वजन, भाव, मोह, विघ्न, युद्ध, मानवदेह, गूढ़ता, आत्मनिष्ठ... ऐसे अनगिनत विषयों के काव्यों का 'अवतरण' हुआ है।

पूज्य श्रीमोटा अपने ही शब्दों में कहते हैं, 'जो कुछ पद्यलिखाई है, उसे कविता तो मानता नहीं, सिर्फ़ 'तुकबंदी' ही मानता हूँ। उस लिखाई में मज़ा आता है। जो कहना है, वह स्पष्टता से और

ठोसरूप से व्यक्त करना बन सका है। वह गद्य में उतनी पूर्णता से संभव नहीं है। प्रभुकृपा से जिस-जिस समय जो-जो साधन प्राप्त हुए, उनका ज्ञानभाव से उपयोग करने की दृष्टि से उनमें जुड़ा रहा हूँ या नहीं, इतना ही 'यह जीव' (श्रीमोटा) देखता रहता था।'

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

७. पूज्य श्रीमोटा का एक ख़त

जिस 'जीव' में जीवनविकास की उत्कट-से-उत्कट लगनी जगी हुई है, जिस ने श्रीप्रभु की शरण का अवलंबन हृदय में हृदय से स्वीकार कर लिया है, वैसे 'जीव' को ही कृपा की कुछ समझ होती है सही। बाकी के 'जीवों' को तो कृपा यानी क्या इसका कुछ भी ज्ञानभान होता नहीं है। जिस वस्तु का परिचय ही नहीं, जिसका अनुभव ही नहीं, उसके बारे में वह क्या समझ पानेवाला है? इसके लिए तो प्रथम हृदय में वैसा अभ्यास प्राप्त करना जरूरी है। शुरू-शुरू में साधक के लिए प्रचंड पुरुषार्थ आवश्यक है। वह पुरुषार्थ होता रहे और 'उसकी कृपा' की प्रार्थना करता रहे, कृपा के मदद की हृदय से याचना करता रहे, यह भी अत्यंत महत्त्व का है। लेकिन ऐसा नया साधक शुरू-शुरू में केवल कृपा के अवलंबन पर ही रह सके, इतनी शक्ति और वैसी स्थिति उसमें जागृत हुई होती नहीं है। इसलिए उसे जरूरी है कि खुद-स्वयं ही कृपाशक्ति को धीरे-धीरे स्वयं में प्रगटा-प्रगटाकर खुद से जितना हो सके उतना आत्यंतिक पुरुषार्थ करने में ही सयानापन और विवेक रहा हुआ है। यथायोग्य और भावपूर्ण शरणागति की

दशा 'जीव' को जब प्राप्त होती है, तब वैसी दशा में ही कृपा का अवलंबन 'जीव' को प्राप्त हो सकता है, उसके बिना वह कदापि संभव नहीं हैं ।

कृपा का अवलंबन भी जिस 'जीव' को शुरू-शुरू में लेना है, वैसे 'जीव' में वह प्राप्त करने की प्रेमभक्तियुक्त प्रचंड भावना हृदय में अपरंपार सतत जागती रहे तो ही यह घट सकता है । उसके लिए उसके हृदय का प्रार्थनाभाव सब कुछ करते-करते भी (कोई भी कर्म करते समय) अंतर में जागृत रहे यह आवश्यक है । कृपा के अवलंबन को माननेवाले 'जीव को' थोड़ासा भी अहंकार खुद में रहा हुआ है' इसका भान होते ही उस बात का कितना गहरा दु:ख होता है, यह तो उसका अनुभवी ही जान सकता है । कृपा के अवलंबन को माननेवाले 'जीव' के मन में किसी भी प्रकार के तरंग, विचार, ममता-आसक्ति, वृत्ति आदि उत्पन्न होते ही, खुद-स्वयं को जो कृपा के अवलंबनयोग्य मानता होता है, वह मिथ्या सिद्ध हो जाता है । उसे स्वयं को भी —ऐसा घटते ही, वह स्वयं भी झूठा सिद्ध होता है, इसका उसे तीव्र ज्ञानभान जगता है, उस समय वह उसके इस प्रकार के जीवस्वभाव और प्रकृति के बहाव से तुरंत ही पीछे लौटता होता है, और कृपा को पुकारता होता है कि 'तेरा अवलंबन लिया है, तो अब कृपा कर के 'यह सब जो हो रहा है' इससे बाहर आने के लिए और 'तेरे आश्रय से ही संपूर्णत: जी सकूँ' ऐसा रहने के लिए प्रेरणात्मक बल, हिंमत, वैसी मन-बुद्धि-प्राण और अहं की दशा ऐसी रखना कि जिससे मैं तेरी कृपा के योग्य बन जाऊँ । तेरी कृपा के योग्य मनन, चिंतन इस 'जीव' में रहे, इसका ध्यान और वैसी चेतनायुक्त जागृति रहे ऐसी प्रेरणा देना । इस तरह कृपा के योग्य स्थिति न

रहने पर फिर से वह जागृत बनता है और स्वयं को उस योग्य बनाने के लिए कृपा के मदद की प्रार्थना कर-कर के उसे पुकारता होता है । 'जीव' को जिस-जिस प्रकार से मन-बुद्धि-प्राण और अहम् खींचकर ले जाते हैं, उस प्रकार से घसीटते हुए जाते समय भी, हृदय में प्रार्थना कर-कर के, मदद के लिए कृपा का अवलंबन लिया जा सकता है । कृपा का अवलंबन जो लेता है, वह तो कृपा के भाव में ही जीवंत रहने की अभीप्सा करता होता है । अगर उससे ऐसा हो न पाता हो, और खुद-स्वयं के जीवस्वभाव और प्रकृति के बहाव में ही इधर-उधर टकराता रहता हो, तो उसने ज्ञानभक्तिपूर्वक कृपा का अवलंबन लिया नहीं है, ऐसा समझना और मानना ।

तुझ जैसों में मेरा जीव प्रभुकृपा से रहता है । (तुझ जैसों से मैं जुड़ा हुआ रहता हूँ), लेकिन जो जीव खुद-स्वयं के जीवन में, भावना के कारण सूक्ष्मता से रहे हुए और प्रत्यक्ष कार्य करनेवाले श्रीसद्गुरु के हाथ को पहचान लेता है, और वैसे ज्ञान के अनुभव से जिसके हृदय में उत्साह बढ़ता है, हिंमत, साहस आदि प्रगट होते हैं, माथे पर समर्थ आधार है, ऐसा प्रत्यक्ष अनुभवज्ञान वह प्राप्त करता है, तब वैसे 'जीव' पर सद्गुरु बहुत-बहुत प्रसन्न होते हैं। जिसको जो (जीव) जिस तरह मानता है, उसको—वह उस प्रकार से पहचानता है और अनुभवता है ।

इसलिए तुझे निराशा के पल में, अन्याय होने पर या ऐसा ही दूसरा कुछ होते ही-उनके प्रति किस प्रकार की दृष्टि, वृत्ति और बहाव रखने से शांति, समता, तटस्थता, धैर्य, विवेक आदि में त्रुटि न रहे, इसके बारे में विचार कर-कर के उस क्षण में सद्गुरु की चैतन्यभावना को हृदय में प्रार्थनाभाव से पुकार-पुकारकर, कृपामदद को हृदय में आमंत्रित कर-कर के सदैव जागृत रहना है । साधक

को दुर्बल क्षणों का सामना करना पड़ता ही नहीं, ऐसा नहीं है । अगर वैसी परिस्थिति आ जाएँ और उस समय वह हताश हो जाएँ, स्वयं सावधान न रहे, तो वैसा 'जीव' घसीटते हुए खींचा जानेवाला ही है । (जीवप्रकृति के वश होनेवाला ही है ।) उस समय तू तेरे सद्‌गुरु को हृदय में जीवंत क्यों करती नहीं ? अगर ऐसा न करें, तो सद्‌गुरु को भी कितना दुःख होता है । अपने करीब ही मदद हो और जीव अगर उसे न लेता हो, और दुःख, क्लेश, उद्वेग, अन्यथाभाव इत्यादि को अपने मनादि 'करणों' में बहने देता हो तब क्या सद्‌गुरु पर कुछ भी असर नहीं होगा ? तो फिर सद्‌गुरु किया ही किसलिए । झख मारने ?

सद्‌गुरु यह केवल शोभा का पुतला नहीं है । अगर उनका ज्ञानभक्तिपूर्वक उपयोग किया न जाता हो, वैसा सूझता न हो, तो उन्हें व्यर्थ ही सिर्फ़ पकड़े रहने का कोई अर्थ नहीं, वह मिथ्या है । साधक को सद्‌गुरु की प्रत्यक्ष मदद प्राप्त करने की कला जीवन में अनुभव कर-कर के, वैसा अनुभवज्ञान प्राप्त कर के, जीवंत करनी चाहिए । अगर तू ऐसा करे, करती रहे, तो अपने हृदय में उनकी चैतन्यभावना जागृत होगी । अगर उनमें (सद्‌गुरु में) चैतन्य जागा हुआ हो तो, और अगर तू ज्ञानभक्तिपूर्वक उपयोग करने के भाव से उनका हृदय में अनुभव करती रहे, तो ही वे तुझे कुछ मदद कर सकेंगे न ? 'अकेली हूँ, अकेली हूँ' ऐसा कहते रहने से और इस तरह व्यक्त करने से दुःख तुझे नहीं बल्कि सद्‌गुरु को होता है कि, 'अरेरे ! यह 'जीव' अपने हृदय के भाव को सद्‌गुरु में पूर्णतः स्थिर करता नहीं है और उनके (सद्‌गुरु के) साथ अपने '-करणों' से हिल-मिलकर समा नहीं जाता है (एकरूप होता नहीं है), अपने जीवन की मूलभावना के

साथ हृदय से हिल-मिल जाता नहीं है और फिर चिल्लाता है कि 'अकेला हूँ, अकेला हूँ' तो वैसे साधक के लिए उस सद्‌गुरु को अगर बुरा लगे तो उसमें आश्चर्य कैसा ? इसलिए कृपा कर के सद्‌गुरु को अपने हृदय में जीवंत करना है ।

सद्‌गुरु यानी उनकी दिखायी देनेवाली आकृति नहीं बल्कि उनके हृदय में रही हुई चैतन्यभावना कि जिसकी मदद लेकर ऊपर आ सकते हैं । उस शक्ति को आह्वान कर-कर के (अलबत्ता, हृदय के प्रार्थनाभाव से) हमें जीवप्रकृति से मुकाबला कर के टिके रहना है । तू दुर्बलता छिपाती है, ऐसा मेरा कहना नहीं है । लेकिन वैसी दुर्बलता की पलों में तूने कितनी और कैसी जागृति, सजगता, सावधानी रख-रखकर युद्ध कर के उसका मुकाबला किया है, वह मैं जानना चाहता हूँ । 'हृदयपुकार' में क्या अपनी दुर्बलताएँ बतानी नहीं हैं ? लेकिन वह तो, भगवान को अपने हृदय में जागृत करने के लिए, और भावपूर्वक उससे (दुर्बलताओं से) युद्ध कर-कर के मुक्त होने के लिए, वैसी भावना से, हृदय में हृदय से प्रार्थना की पुकार की हुई होती है ।

'बालक 'माँ ! माँ !' करता ही रहे, तो क्या माँ गुस्सा होकर उसे धुत्कारकर हकाल देगी ?-ऐसी समझ आध्यात्मिक क्षेत्र में लागू होती नहीं है । पहले तो अपने अंदर बालक जैसी सहज निर्दोषता, सरलता प्रगट नहीं हुई है । बालक में जब तक निर्दोषता है, विवेक की कुछ समझ प्रगट नहीं हुई है, तब तक उसने की हुई तोड़फोड़ भी माँ को अच्छी लगती है । वैसे तो बहुत-सी माँएँ उसके लिए बालक को कोसती भी हैं और मारती भी है, लेकिन वह सहसा घटता नहीं है । लेकिन बालक बड़ा होने पर अगर योग्य रीति से बर्ताव रखता न हो, तो माँ उस पर क्रोध भी करती है।

लेकिन आध्यात्मिक क्षेत्र में अगर साधक खुद को जाने-अनजाने में धोखा देता रहे और सद्‌गुरु या गुरु करने पर भी उनके प्रति हृदय में कुछ भी धारण करता न हो, सद्‌गुरु की भावना जीवन में बुनने का अभ्यास जिसका नहींवत् है और जिसे साधना के भाव से और साधना का हेतु फलित होने के लिए पर्याप्त प्रमाण में कुछ भी करना नहीं है, हृदय में हृदय से साधना हो सके वैसी जागृति, सावधानी रखनी नहीं है, और रख सकता नहीं है, तो सद्‌गुरु बता-बताकर, लिख-लिखकर कितनी भी पोथियाँ भर दे, तो भी उससे क्या होनेवाला है ? क्योंकि हृदय में हृदय से सूक्ष्मभाव का स्वीकार करने की कला तो अब तक उसे प्राप्त ही नहीं हुई है——यानी कि स्थूल रीति से जो बताया जाता हो, वह अगर ठीक से सावधानीपूर्वक उमंग से, उत्साह और स्वयं के जीवनविकास के हेतु से उसकी लगनी को बढ़ा-बढ़ाकर ज्ञानभक्तिपूर्वक वर्तन में रखता न हो, और साधक प्रति की गुरु की भावना का हृदय से स्वीकार होता न हो, साधक का दिल सद्‌गुरु के हृदय में रहता ही न हो, 'स्वयं साधना करुँगा' ऐसा झंडा लेकर बैठा हो, साधना को और साधना के भाव को तो स्वयं ने टाँड पर (कहीं कोने में) रख दिया हो, (संपूर्ण उपेक्षा करता हो) तो उस समय दो हाथ फैलाकर सद्‌गुरु क्या उसे गले लगाने जाएँगे ? सद्‌गुरु का प्रेमभाव मिथ्या नहीं है, लेकिन अगर उन दोनों के हृदय एकदूसरे में हिल-मिल सके इसके लिए, साधक के दिल में सद्‌गुरु के प्रति हृदय का प्रगट सद्‌भाव और उत्कट प्रेमभाव उत्पन्न हुआ हो ऐसी भूमिकावाला वह जब तक हृदय में बना हुआ नहीं है, तब तक कुछ भी घट सकता नहीं हैं, साधक अगर वैसा-का-वैसा ही रहता हो, तो गुरु भी साधक में से अपने (गुरु के) हृदय का सहकार

खींच लेते होते हैं, और वैसी उसके (साधक के) मन में चुभन निर्माण होने देते हैं कि जिससे वह फिर से अपने हृदय में हृदय से सद्‌गुरु की तरफ़ मुड़ सके ।

अब भी कहता हूँ कि साधना यह पराक्रमी जीव से ही हो सकती है यह निश्चित । **साधना करनेवाला 'जीव' किसीके भी प्रभाव में आता नहीं है, किसी से भी आवृत्त होता नहीं है, या किसी से भी दब जाता नहीं है । शुरू-शुरू में शायद वह वैसा हो भी जाए, तो भी उसमें बहते-बहते, डूबते-डूबते, खींचे जाते हुए भी-जितना खुद से बन सके उतना उसका मुक़ाबला निश्चित ही करता होता है । ऐसे ही, सहज ही वह हार मानता नहीं है ।** साधक के लिए स्वयं की प्रकृति और जीवस्वभाव के बहावों का इनकार करते रहना बहुत ही आवश्यक है । जब-जब वे उठे, तब-तब उन्हें किसी प्रकार से साथ न दिया जाए, उस प्रकार की तटस्थता, समता आदि को उसने अभ्यासपूर्वक रखा करना ही है, और वैसा करते-करते वह हृदय में हृदय से प्रार्थना कर-कर के प्रभुकृपामदद की याचना करता होता है ।

जगत में, संसार-व्यवहार में पाप-पुण्य, सुख-दुःख, नीति-अनीति, न्याय-अन्याय आदि द्वंद्व तो रहनेवाले ही हैं । हम अगर उनके प्रभाव में आकर उनकी रीति से वर्तने जाएँगे तो उससे उलटा अधिक त्रास, क्रोध, दुःख, तक़लीफ़, उपाधि आदि उत्पन्न होनेवाले ही हैं, जीव को उनसे कभी भी, किसी भी प्रकार की शांति-प्रसन्नता आदि प्राप्त हो सकनेवाले नहीं है । उन सब से जीव की रीति से (जीवभाव से) मुक़ाबला करने से क्या होनेवाला है ? उससे तो उलटा हम 'जीवपना' के प्रभावक्षेत्र में और अधिक प्रवेश करेंगे,

और अधिक रागद्वेष के द्वंद्व में पीसे जाएँगे, इसलिए ऐसी घड़ी में मुक्त होने का उपाय जीवपना से वर्तन करने में नहीं है, बल्कि 'जीवपना' के अलावा अन्य रीति से वर्तने से ही उसका योग्य प्रकार से मुक़ाबला किया जा सकेगा । अन्याय का मुक़ाबला उदारता से वर्तने में होता है ।

अन्याय, दुःख, त्रास उत्पन्न करनेवाले प्रसंगों में-वे-वे प्रसंग जीवन को आकार देने के लिए परम कृपा से प्राप्त हुए हैं, 'अमुक-अमुक गुण, धैर्य, सहनशीलता, उदारता, सहिष्णुता ऐसे ऐसे अनेक गुणों की प्राप्ति के लिए वैसे-वैसे प्रसंग प्राप्त हुए हैं, ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञानभान जीव अगर रख सके, तो वैसे प्रसंगों में उसे बहुत कुछ प्राप्त हो सकता है, उसमें उसे तो आनंद-आनंद ही प्राप्त होता रहता है ।

लेकिन 'जीव' अगर वैसा न कर के मन से टूट जाए या नामर्द बनकर निष्क्रिय-जड़वत् बन जाए और उस तरह के विचार करे, तो उस समय सद्‌गुरु से क्या बैठा रहा जा सकेगा ? उस समय तो गुस्सा कर के भी वे साधक को चेतावनी देते ही रहते हैं । उसे भले ही बुरा क्यों न लगे, फिर भी सत्य स्थिति की पहचान तो करा देते ही हैं । **साधक को जीवप्रकृति के बहावों का ज्ञानपूर्वक जागृति से इनकार, और वह भी सख़्त रीति से, करते रहना चाहिए। संसार-व्यवहार के वर्तन के प्रसंगों में 'जीवपना' की रीति से (जीवभाव से) कभी भी साधक का वर्तन न हो ।** बल्कि, उन सब में जीवनविकास के साधना की भावना किस तरह और जीवंत बने और किस तरह शांति-समता-प्रसन्नता आदि में खंडितता प्राप्त न हो, इतना ही नहीं बल्कि,

उलटा उनकी मात्रा में वृद्धि ही हो, इस प्रकार से साधक को वर्तन रखने का ज्ञानपूर्वक अभ्यास प्राप्त करते रहना चाहिए ।

मोटा

'जीवनसोपान'

आवृत्ति प्रथम (पृष्ठ ३०५ से ३०७)

✤ ✤ ✤

॥ हरिः ॐ ॥

८. हरिःॐ आश्रम

गुरुमहाराज का आदेश :

श्रीमोटा को एक बार गुरुमहाराज ने आदेश दिया, 'तूने देशसेवा बहुत की, अब मानवों में 'गुण' और 'भाव' इनका विकास हो, ऐसी सेवा कर ।' गुरुमहाराज ने श्रीमोटा को डंडा देने की इच्छा भी व्यक्त की ।

डंडा लेने से इनकार :

गुरुमहाराज उन्हें डंडा देने चाहते थे, फिर भी श्रीमोटा ने उसे इनकार किया । वे बोले, 'मैं संसार में रहनेवाला हूँ, इसलिए डंडा लेकर लोगों को सही रास्ते पर न ले जा न सकूँगा, प्रेम से ही उन्हें इस रास्ते पर ले जा सकूँगा ।

श्रीमोटा ने कहा है, 'बचपन से ही संन्यास लेने का विचार मन में कभी नहीं आया । 'जीवन का समग्र स्वीकार' यह धारणा पहले से ही अंतर में थी ।'-इसीलिए उन्होंने डंडा लेने से इनकार किया ।

गुरुमहाराज ने उनका कहना मान लिया और मौनमंदिर स्थापन करने का रास्ता बताया ।

ऋण कैसे चुकाऊँगा ?

आदेश होने के बाद प्रथम साबरमती आश्रम में ही श्रीमोटा 'मीराकुटीर' में मौनमंदिर चलाने लगे । कंतान के पर्दे से एक कमरे के दो भाग बनाकर एक में बैठने की और दूसरी ओर मलमूत्र विसर्जन की व्यवस्था की थी । वहाँ मौन में बैठनेवालों का ख़्याल रखना और मलमूत्र साफ़ करना भी वे खुद ही किया करते थे ।

धीरे-धीरे श्रीमोटा ने आश्रम के लिए स्वजनों से निधि जमा की, लेकिन 'मैं उनका ऋण कैसे चुकाऊँ ?' इस प्रश्न का उत्तर अंतर में, हृदय में प्राप्त न होने से इकट्ठा किये हुए सब रुपये-करीब करीब एक लाख-रुपये-जिनके थे उन्हें लौटा दिये ।

'मैं ऋण चुकाऊँगा ।' :

एक दिन कुंभकोणम् में कावेरी नदी के किनारे पर उन्हें श्रीसद्‌गुरु का आदेश प्राप्त हुआ, 'आश्रम को जो कोई देगा, उसका ऋण मैं चुकाऊँगा, तू आश्रम स्थापन कर ।'

आश्रम की शुरूआत :

आदेश प्राप्त होने पर १९५० में कुंभकोणम् में ही कावेरी नदी के किनारे पर पहला आश्रम स्थापन हुआ, बाद में नडियाद में १९५४ में शेढ़ी नदी के किनारे पर और १९५६ में सुरत में तापी नदी के किनारे पर ऐसे तीन आश्रम स्थापन हुए ।

मौनमंदिरों का हेतु :

श्रीमोटा ने बताया है, 'मौनमंदिरों में बिताया हुआ समय यानी, मेरे मतानुसार, इस 'जीव' से (श्रीमोटा से) उस 'जीव' की (साधना की) जुड़े रहने की क्रिया है । अगर ऐसा न होता, तो

आप में से कोई भी जीव मेरे साथ रह न सकता...हर एक 'जीव' का मौन-एकांत का समय यह अमूल्य ऐसा समय है ।'

उन्होंने और भी बताया, **'वे ही लोग यहाँ आएँगे, जिनसे मेरा 'निमित्त' है ।'**-मतलब कि **'निमित्त' वे स्वयं और कर्ता-कराता ईश्वर, यही भाव इसमें व्यक्त है ।**

मंदिर में मूर्ति की प्राणप्रतिष्ठा की जाती है, वैसे ही श्रीमोटा ने इन मौनमंदिरों की प्राणप्रतिष्ठा की है । इसलिए मौनमंदिर खाली नहीं है, बल्कि श्रीमोटा और उनके श्रीसद्‌गुरु की चेतना से भरे हुए हैं । उनकी वाणी, आदेश, स्पर्श, दर्शन...इस तरह के कई प्रकार के अनुभव मौनमंदिरों में बैठे हुए साधकों को आज भी प्राप्त होते हैं।

मौनमंदिरों में क्या घटता है ? :

यहाँ साधकों को उनके 'अर्धजागृत और अजागृत मन' में गहराई में रहे हुए भिन्न-भिन्न दिशाओं के प्रवाह और उनकी अपनी 'प्रकृति' वैसे ही 'स्वभाव' इनका जीवन में पहली बार स्पष्टता से एहसास होता है, जानकारी होती है, दर्शन होता है और उनमें होश जगता है ।

अब तक सुषुप्त रहे हुए मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहं में, मानो तूफ़ान आकर, उनमें गहराई में दबे हुए संस्कार, वृत्तियाँ और आवेग ऊपर सतह पर उभरने लगते हैं, यमुना के जल में रहे हुए कालिया को बालकृष्ण ने छेड़ा था, उसी तरह ।

जप सोलह-सोलह घंटों तक भी जारी रहता है, फिर भी शरीर को थकान महसूस होती नहीं है या श्रम भी लगता नहीं है ।

इस तरह दीर्घकाल तक एकाग्रता से हो गया हुआ 'जपयज्ञ' साधक के सत्त्व जीवकोश पर (यानी 'आधार'* पर) शिलालेख

* अंतःकरण-मन, बुद्धि, चित्त, प्राण और अहम्

की तरह गहरे संस्कार निर्माण करता है। ये संस्कार पोंछे जाते नहीं हैं और समय पक्व होते ही, वे उदय होकर साधक को निश्चित ही उर्ध्वगति देते ही हैं ।

इसके अलावा दिव्य दर्शन, दिव्य ध्वनिश्रवण, प्रकाशदर्शन, भविष्यसूचक चित्र या स्वप्न, श्रीमोटा की उपस्थिति का अनुभव (ध्वनि, स्पर्श, स्वप्न-दर्शन, प्रत्यक्ष दर्शन) ऐसा कुछ-न-कुछ अनुभव अंदर बैठे हुए कई जिज्ञासु और मुमुक्षु साधकों को प्राप्त होता है ।

भूतकाल में बने हुए प्रसंग, विचार, भावनाओं के आघात मूर्त स्वरूप में सिनेमा के चित्रों की तरह दृश्यमान होते हैं । उसमें से ही पश्चात्ताप की पुनीत धारा बहने लगती है ।

जीवनविकास के लिए, ईश्वरमय जीवन के लिए मौनमंदिर:

'जीवनविकास के लिए यानी कि ईश्वरमय जीवन जीने के लिए मौनमंदिर हैं। जिस 'जीव' को जीवन के बारे में मनन, चिंतन और निदिध्यासन करना है, उसे जीवन में उतारना है, मंथन करना है, अपने जीवन के बारे में गहराई तक पृथक्करण कर के खुद स्वयं की खोज करनी है, उनके लिए ही यह स्थान है', ऐसा श्रीमोटा ने स्वयं बताया है ।

'जीव पड़े न रहें ।' :

'मौनमंदिर पड़े रहें (खाली रहें) तो भी हर्ज़ नहीं (आपत्ति नहीं), लेकिन 'जीव' अगर पड़े रहें (निष्क्रिय रहें) तो फिर श्रीमोटा को बहुत ही आपत्ति है'-वैसी चेतावनी देकर श्रीमोटा ने 'जागृतिपूर्वक साधना से जुड़े रहना ही चाहिए' इस पर भार दिया है।

किनके लिए मौनमंदिर ? :

सभी धर्मों के और सभी जातियों के स्त्री-पुरुष अंदर बैठकर

अपनी-अपनी इष्टसाधना कर सकते हैं । उम्र की पाबंदी नहीं है। सात बरस से लेकर अस्सी-नब्बे बरस की उम्र के व्यक्ति भी मौन में बैठ सकते हैं, बैठे हैं ।

अंदर इन्तज़ाम कैसा ? :

केवल पाँच रुपये प्रतिदिन इस हिसाब से पहले से आरक्षण कराकर साधक एक हफ्ते से लेकर, दो-तीन या चाहे जितने हफ्तों तक भी, मौन में बैठकर अपनी इष्टसाधना कर सकता है ।

अंदर निश्चित समय पर दूध, चाय या कॉफी, भोजन प्राप्त होता है । लेकिन भोजन देनेवाला और लेनेवाला एकदूसरे को देख न पाए इस तरह का इन्तज़ाम रहता है। स्नान, शौच आदि की व्यवस्था कमरे के अंदर ही रहती है। अखबार, डाक आदि बाह्यप्रवृत्ति से व्यक्ति मुक्त रहता है ।

अंदर पूज्य श्रीमोटा के सभी ग्रंथ होते हैं। अपनी स्वयं की रुचि के धार्मिक ग्रंथ ले जाने की भी अनुमति है। धार्मिक लिखाई-पढ़ाई पर रोक-टोक नहीं है। **अंदर किसी भी प्रकार का साधना का वैयक्तिक मार्गदर्शन व्यक्ति को दिया जाता नहीं है। फिर भी, अंदर रही हुई पूज्य श्रीमोटा की चेतनाशक्ति प्रेरणाएँ-शक्ति-मार्गदर्शन-स्फूर्ति इ. प्रदान करती हैं और साधना करा लेती हैं।**

अंदर नामस्मरण, भजन, प्रार्थना, आत्मनिवेदन, पारायण, अनुष्ठान, सद्ग्रंथ वाचन आदि किसी भी प्रकार से अपनी रुचिनुसार साधना कर सकते हैं ।

हरिः ॐ आश्रमों के पते :

सांप्रत दो आश्रम कार्यरत हैं ।

१. नडियाद में : हरिः ॐ आश्रम

पोस्ट बॉक्स नं. ७४, नडियाद-३८७ ००१, गुजरात

दूरभाष क्र. : ०२६८ ३२४६२८८

२. सुरत में : (पूज्य श्रीमोटा) हरि:ॐ आश्रम
कुरुक्षेत्र, महादेव मंदिर के पास, जहाँगीरपुरा,
सुरत–३९५००५ गुजरात.
दूरभाष : +९१ ८७५८०२६८११

मौनमंदिरों का अनुकरण :

इसी तरह और कई जगह पर मौनमंदिर स्थापित हुए हैं ।

१. श्रीहंसदेव आश्रम, नर्मदामैया का दक्षिण तट, रेलवे पुल के नज़दीक, बोरभाठाबेटगाँव, ता. अंकलेश्वर, जि. भरूच. **(मौनमंदिर में पंखे की सुविधा है ।)**

२. अहमदाबाद के पास 'सोला' में–श्री भागवत विद्यापीठ में ।

३. सौराष्ट्र में–सुरेन्द्रनगर में 'मानवमंदिर ट्रस्ट' द्वारा ।

४. नडियाद में–'संतराम मंदिर' में दो मौनमंदिर हैं ।

५. अहमदाबाद में 'वाडज' क्षेत्र में एक रणछोड़जी का मंदिर है, जिसका व्यवस्थापन स्त्रियाँ ही करती हैं ।

६. बनासकांठा जिले में 'अंबाजी' यह अंबामाता का सुप्रसिद्ध शक्तिस्थान है, वहाँ पू. हैड़ाखानवाले बाबा की प्रेरणा से स्थापित 'कैलास आश्रम' में भी मौनमंदिर हैं ।

७. पालावासणा–महेसाणा यहाँ 'ओशो कम्युन' द्वारा तीन मौनमंदिर हैं । वहाँ पचास रुपये प्रतिदिन देने पड़ते हैं ।

८. श्री योगेश्वरजी महाराज, जय शिव आश्रम, तापीमैया के तट पर, टूटे पुल के पास, मांडवी (जि. सुरत) फो. ०९९०९२ १०२७९ ८ मौनमंदिर है । **नि:शुल्क सेवा दी जाती है । (मौनमंदिर में पंखे की सुविधा है ।)**

९. सुरत और अहमदाबाद में पू. आसारामजी बापू के आश्रम में भी मौनमंदिरों का आयोजन है ।

१०. महाराष्ट्र में इगतपुरी में और अन्यत्र, वैसे ही विदेशों में अनेकों जगह श्री. सत्यनारायण गोइंका द्वारा स्थापित मौनमंदिरों की व्यवस्था है । यहाँ विपश्यना का सामूहिक और वैयक्तिक मार्गदर्शन भी दिया जाता है ।

इसी तरह और कई स्थानों पर मौनमंदिरों का होना संभव है ।

✤ ✤ ✤

॥ हरि:ॐ ॥

९. अमृतबिंदु

• प्रभुप्राप्ति का हेतु स्थूल या सूक्ष्म लाभ प्राप्त करना यह न हो । प्रभु के लिए ही प्रभु को प्राप्त करना है ।

• पूर्व में सीखा हुआ सब भूलना पड़ेगा ।

• अपने आग्रह, विचार, धारणाएँ, मत इत्यादि दूसरों पर न थोपो । प्रेमपूर्वक बताओ । हरएक को अपने–अपने ढँग से अपने वातावरण में ही स्वतंत्रता का विकास करने दो ।

• कोई भी भावना या ऊर्मि उठने पर उसका नामस्मरण की गति के लिए उपयोग कर लेने को नहीं भूलना ।

• समझपूर्वक, ज्ञानपूर्वक आगे जाना है, अंधश्रद्धा से नहीं ।

• मन की दृष्टि, वृत्ति और दिशा बहिर्मुख होते ही उसे फटकारना, समेट लेना और अंतर्मुख करना । लेकिन यह 'चैतन्यपूर्ण जागृति' के बिना संभव नहीं है और वह होने के लिए प्रखर और प्रचंड साधनायुक्त पुरुषार्थ आवश्यक है ।

• स्वयं में रही हुई दुर्बलता, दोष और विकृत प्रवृत्ति यह बड़ी बाधा है और यह जब तक चुभती नहीं, तब तक उससे मुक्त नहीं हो सकते हैं ।

• कर्मों के संस्कार चित्त पर पड़ते रहते ही हैं और पड़े रहते हैं । वे कब ऊपर आएँगे यह निश्चितरूप से कहा नहीं जाता है ।

' साधक ग़लतियाँ तो करनेवाला ही है, लेकिन अगर उसमें भी वह साधना की भावना को सतत जीवंत रखता होगा, तो उसे अपनी भूलें ख़्याल में आएँगी ही और उनसे वह पीछे मुड़ेगा ही।

● जीवन में संघर्ष के समय ही हृदयमंथन होता है और इस मंथन से ही नवनीत प्राप्त करने की कला अनिवार्य है । पुरुषार्थी साधक को वह अपनेआप सूझता है ।

● संसार को छोड़ देने से उसे छोड़ा नहीं जा सकता है। संसार हम से चिपका हुआ नहीं है, बल्कि हम ही संसार को चिपके हुए हैं, इसलिए केवल मन की स्थिति को ही पलटना है और उसके लिए ही साधना की आवश्यकता है ।

● हरएक मनुष्य में ईश्वर की ओर जाने की शक्ति है, इतना ही नहीं, वह ईश्वर भी हमें पुकार रहा होता है, हम ही उसकी ओर जाते नहीं हैं ।

● साधनामार्ग में सब प्रकार से और संपूर्णतः भिखारी होना पड़ेगा ।

● मन से जितना भटकते रहोगे, उतना ही अत्यधिक नुकसान है ।

● हरएक क्षण में किया जानेवाला कार्य अपने अंतर के आध्यात्मिक और दैवी चैतन्य को मददरूप हो रहा है या नहीं इसका ध्यान रखना, उसी का नाम 'जागृति' ।

● मन में कोई भी बात, अभिप्राय, धारणा, मत इत्यादि से बँध जाकर संग्रह न किए जाएँ । यह भी 'अपरिग्रह' का एक उत्तम अर्थ है ।

● जब हम खुद-स्वयं को ही पूर्णतः समझा नहीं सकते तो फिर 'दूसरा कोई अपना कहना मानेगा' यह भ्रम होना, यह मूर्खता है ।

● प्रभु में हम जब भावपूर्वक लीन हो जाएँगे, तभी संस्कारों का लय होगा ।

● जिस तरह लौहचुंबक उसकी हद में आनेवाले सारे लोहे को अपने स्वभावानुसार खींचता ही होता है, उसी तरह ईश्वर भी हमें खींचने के लिए तैयार है, लेकिन वह हमें खींच सके ऐसी हद तक जाना यह स्वयं पर निर्भर है ।

● निःसंग यानी आदमियों से दूर ऐसा नहीं, बल्कि वृत्ति, विचार, भावना, सुख, दुःख आदि किसी भी प्रकार की भावना से और आंतरिक मनादिकरणों की प्रवृत्तियों से अलिप्तता ।

● 'बाहिर' में एक-दृष्टि रहने के लिए 'भक्ति' की आवश्यकता है और अंतर में एक होने के लिए 'ध्यान' की आवश्यकता है।

● जीवन का रस संसार में नहीं है, बल्कि अंतर में है। व्यक्ति का ही विस्ताररूप यानी संसार है ।

● वृत्ति यह शक्तिस्वरूप है, अगर ज्ञानभक्तिपूर्वक उसका उपयोग होता हो, तो ।

● साधना का फल यानी प्रकृति और स्वभाव का रूपांतरण।

● सभी का मूल बीज अपनी स्वयं की प्रकृति है । दूसरे के दोष दिखायी देना या दूसरे को दोष देना यह अपनी पामरता और दुर्बलता है । हमें 'जागृत' रहने के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए और खुद-स्वयं के ही दोष दिखायी देने चाहिए ।

● जब तक हम से होनेवाले पुरुषार्थ में अपना हृदय संपूर्णतः डाला जाता नहीं है, तब तक वैसा पुरुषार्थ संपूर्णतः फलित हो सकता नहीं है ।

• प्रयत्नों के साथ ही भगवान की कृपा की—मदद की याचना सतत करनी चाहिए ।

• बुद्धि यह ज्ञान का साधन है और भावना-सहानुभूति यह भाव का साधन है । जीवनविकास के मार्ग में बुद्धि और भाव इन दोनों की आवश्यकता है ।

• मौन-एकांत का हेतु 'लगनी' निर्माण होना यह है और साधना में विशेष एकाग्रता, केंद्रितता निर्माण होने के लिए है ।

• स्वयं में जिस-जिस प्रकार के विचार, वृत्ति और प्रवृत्ति उद्‌भव होती है, उससे ही हमें अपनी कक्षा का ख़्याल होना चाहिए ।

• घृणा, दया, लज्जा, भय, शोक, निंदा, कुलाभिमान तथा शील, स्वभाव और जाति का अभिमान ये सभी एक प्रकार के संकोच हैं, उनसे मुक्त होना ही चाहिए ।

• शुरू-शुरू में साधक को दीर्घकाल तक स्वप्रयत्न अनिवार्य है । मूर्ख और अज्ञानी लोग 'सब कुछ गुरु ही कर देंगे' ऐसा मानकर कुछ भी किये बिना तमस की प्रेरणा से जैसे होंगे वैसे ही पड़े रहते हैं ।

• स्वप्रयत्न में अहंकार न आये इसका ध्यान रखना ।

• साधक का महत्त्व का एक लक्षण प्रसन्नचित्तता है ।

• अभ्यास बढ़ते-बढ़ते ही वैराग्य जागृत होनेवाला है ।

• किसीका भी हृदय जीतना यह संपूर्ण नम्रता प्रगट हुए बिना घट सकता नहीं है ।

• सच्चा स्वीकार वही है कि जब स्वीकार होने के बाद उससे कदम पीछे लिया जाया न हो ।

• साधना में निश्चिंतता, नियमितता और निरंतरता प्रगट करनी चाहिए, होनी चाहिए ।

• नम्रता प्रगट करना और निराग्रही, निरासक्त बनना अत्यंत आवश्यक है ।

• स्वधर्म के यथार्थ पालन से ही विशालता का जन्म होता है ।

• विशाल दृष्टि बिना की साधुता निरर्थक है, वह साधुता ही नहीं है ।

किसी भी प्रकार का पूर्वग्रह रखना यानी जीवन के विकास में बाधा निर्माण करना ।

• हरएक संतात्मा की जीवनसरणी अलग-अलग होती है, एकदूसरे से तुलना करना यह बिलकुल ठीक नहीं है ।

• कसौटी और मंथन जीवनविकास के लिए अत्यंत महत्त्व के अंग हैं, उनके बिना जीवन का सच्चा सार (सत्त्व) जाना-परखा जा सकता नहीं है ।

• प्रभुमय जीवन यानी पहले सात्त्विक जीवन का विकास ।

• हर बात में जुड़ जाने की—सहभाग लेने की इच्छा होती हो, तो जान लो कि वह अहंकार है ।

• मैले कपड़ों को रंग ठीक से लग सकता नहीं है । कपड़ों को रंगाने के लिए पहले उसका सब मैल निकाल देना पड़ता है, उसी तरह अंतःकरण की और आधार के सब '-करणों' की शुद्धि के बारे में जानना ।

• जीवन की समस्याओं का हल बुद्धि के निर्णय से करने के बजाय हृदय से प्राप्त करने के लिए साधक को अधिकाधिक अंतर्मुखता प्राप्त करनी चाहिए ।

• अंतर्मुखता संपूर्णतः प्राप्त किये बिना बुद्धि में समता प्रगट हो सकती ही नहीं है ।

• केवल पुरुषार्थ का उपयोग नहीं है और केवल कृपा भी उपयोगी नहीं है ।

• सद्‌गुरु को अपने हृदय में जीवंत करना है । सद्‌गुरु याने दिखायी देनेवाली उनकी शरीराकृति नहीं, बल्कि उनके (सद्‌गुरु के) हृदय में प्रगट ऐसी चैतन्यभावना, जिसकी मदद से ही हम ऊपर आ सकते हैं ।

• हृदय की सच्ची नम्रता भेड़ियों जैसी नहीं होती है, उसमें तो अग्नि का प्रचंड तेज और शक्ति भरी हुई होती है ।

• साधक को अपनी आदतें, धारणा, मान्यता, आग्रह, मत-मतांतर, दोष, बुरी आदतें, आशा, इच्छा, कामना, तृष्णा, काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह और मत्सर इत्यादि का स्वीकार करना है, लेकिन वह स्वीकार उनके पार होने के लिए है ।

• अनुभव के कथन के पीछे आत्मविश्वास का चैतन्य होता है ।

• जिस जीवात्मा का अहम् पिघल गया है, उसे कहीं भी विरोध होता नहीं, ना उसके लिए विरोध ऐसा कुछ बाकी ही रहता नहीं ।

• कर्म का महत्त्व भाव के कारण है ।

• ज्ञान आचरण में लाये बिना मोक्ष नहीं ।

• अमुक संपूर्णतः योग्य है और सर्वसमर्थ और सर्वश्रेष्ठ है ऐसा अध्यात्मिक क्षेत्र के जीवन में हो नहीं सकता है ।

• अपनी इस भव की प्रवृत्तियों की गति और दिशा जिस प्रकार की होगी, उस प्रकार का अपना पुनर्जन्म होता है ।

• जैसे लवणविहीन भोजन, वैसे ही भावविहीन साधना ।

• चर्चा से मताग्रह बढ़ता है और अहम् भी ।

• गुरु कर के अगर जीवन का विकास साध नहीं सके तो वैसा गुरु करना केवल व्यर्थ ही है ।

• 'लगनी' के बिना रस उत्पन्न हो सकता नहीं है और रस न हो तो मन स्थिर हो सकता नहीं है ।

• सब प्रकार के संकोच को और लज्जा को साधक को दूर-दूर फेंक देना चाहिए, लेकिन उसके हेतु का ज्ञानभान रखकर ही ।

• भूल होने के बाद उसकी चिंता करते रहना यह तो और भी बुरा है । यह तो उलटा अंधेरे में टक्कर देते रहने जैसा है ।

• जो जीव जागृत रहता होता है, वह गिरे तो भी खड़ा होनेवाला ही है ।

• जीवन को सर्वतोमुखी (विशाल) बनाना है, न कि कुएँ के मेंढक के जैसा ।

• नकारात्मक स्थिति का एहसास होने पर भी उसमें ही बहते रहना यह तो मात्र पामरता है ।

• सद्‌गुरु के प्रति हृदयपूर्वक प्रेमभक्ति हृदयांतरी प्रगट हुए बिना सद्‌गुरु भी अपने अंदर जीवनविकास की भावना का बीज बो नहीं सकते हैं ।

• मुफ्त ही कुछ हो सकता है यह मैं मानता नहीं, हरएक की क़ीमत देनी ही पड़ती है । जीवन में या जगत में या व्यवहार में कुछ भी ऐसे ही प्राप्त होता नहीं है ।

• आत्मनिवेदन यानी स्वयं को चैतन्य के भाव से जोड़ देनेवाली दिव्य शृंखला ।

• किसी ने अन्याय किया हो तो उसका स्मरण भी न रहे, इतना ही नहीं, बल्कि उस पर उपकार करने की भावना प्रत्यक्ष जीवंत रहे, इसकी ओर साधक का ध्यान होना चाहिए ।

• जो 'जीव' दुःख में सुख देखता है और सुख में दुःख जुड़ा हुआ देखता है, वह 'जीव' इन दोनों से अलिप्त रह सकता है ।

● सूक्ष्मभाव से देखा जाए तो गुरु की समीपता और दूरी होती ही नहीं है, क्योंकि गुरु तो भावरूप है ।

● किसी ने अपने दोष दिखाये, तो उसे सच्चा गुरु मानना । उस समय हृदय में भाव प्रगट हो, तो वह सच्चा साधक है ।

● जब तक आशा, तृष्णा, काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ, मत्सर, कामना, राग-द्वेष, अहंकार आदि को निकाल देने की या उन्हें क्षीण करने की व्याकुलतापूर्वक समझ अंतर में निर्माण होती नहीं है, तब तक ऐसे 'जीव' को उच्च गति देने को साक्षात् भगवान भी समर्थ नहीं है ।

● हमें दूसरा किसीका सामना करना नहीं है, सामना जो करना है, वह तो केवल अंतर में रही हुई आंतरिक वृत्तियों का।

● ज्ञानभक्तिपूर्वक आत्यंतिक संपूर्ण आत्मसमर्पण हुआ नहीं है, तब तक खुद-स्वयं के वैयक्तिक पुरुषार्थ की बहुत आवश्यकता है ।

● सद्‌गुरु की सच्ची पहचान बाह्य स्तर पर कदापि हो सकती नहीं है, वह तो, बाद में अंतर में 'अंतर्मुखता में ही' होती जाती है । इस तरह प्रगट हो गया हुआ अनुभव ही सच्चा अनुभव है।

● गरीबों पर 'दया' मत करो । दया करनेवाले हम कौन ? वह दया माँगता नहीं है, वह माँगता है 'न्याय' । दे सकते हो तो वह देना । दया की भावना में सूक्ष्म अहंकार छिपा हुआ है ।

● दुःख स्वयं को समझ लेने के लिए योग्य आईना है ।

● जीव और प्रकृति का चैतन्य में ज्ञानपूर्वक लय प्राप्त होना उसी का नाम 'मरके जन्म लेना ।'

● इच्छाशक्ति का बल यह वृत्ति, विचार या वासना से कई गुना ज़्यादा है ।

● हमें प्राप्त हो गया हुआ जग, शरीर, माता-पिता, रिश्तेदार, भाई-बंधु, पति-पत्नी, मिल्कियत, संयोग, परिस्थिति और इन सब के अलावा यह जीवन भी केवल साधना के उपयोग के लिए ही प्राप्त हुआ है ।

● जगत मिथ्या नहीं है, असत्य नहीं है, **बल्कि जगत को देखने की अपनी दृष्टि असत्य है । जब हम भावनामय बन जाते हैं, तब जगत यह 'जगत' रहता नहीं है, 'भगवान का व्यक्त स्वरूप है', इस प्रकार से वह हमें दिखायी देता है ।**

● ज्ञान का सच्चा अर्थ केवल समझ नहीं, बल्कि उस प्रकार का जीवन है ।

● प्रार्थना भी एक प्रकार का ध्यान है । प्रार्थना साकार है, ध्यान निराकार है ।

● दोषों का बार-बार विचार मत करो । उससे तो, 'भगवान की भक्ति में मन संलग्न रहना' यह अधिक उत्तम है ।

● शून्यता यह नम्रता का अंतिम नाप है । शून्यता यानी अहंकार का संपूर्ण नाश!

● अहंकार कभी-कभी नम्रता का स्वांग सजकर आता है ।

● अपना यह स्वभाव ही बन गया है कि जो अपना मत मानता नहीं, उसे हम विरोधी मानते हैं । यह असहिष्णुता का ही रूप है ।

● सत्कर्म का बदला सत्कर्म ही देता है, उसमें अपेक्षा को स्थान नहीं होता है ।

॥ मोटा ॥

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

१०. साधनामर्म

(१) मुख से या मन में जागृतिपूर्वक 'जप', उसी के साथ हृदयप्रदेश में 'ध्यान', और चैतन्य के चिंतन के साथ भावात्मक 'भाव का रटन' ।

(२) हरएक क्षण में सतत समर्पण-अच्छा एवं बुरा, दोनों का।

(३) साक्षीभाव, जागृति, विचारों की श्रृंखला निर्माण होने न दो ।

(४) हो सके उतना ज़्यादा-से-ज़्यादा वाचिक और मानसिक मौन रखो, प्राप्त करो, और जीवन में खूब-खूब शरणभाव चैतन्यपूर्वक की जागृति से विकसित करो ।

(५) प्रभुचिंतन के अलावा बाकी सब आग्रह छोड़ दो, नम्रता प्राप्त करो, शून्य होने का ध्येय रखो ।

(६) बहुत भावपूर्वक हृदयस्थ रहकर आर्द्र और आर्तभाव से प्रार्थना करो, भगवान को सब सुख-दुःख निवेदन करते रहो, उसके साथ-साथ ही आत्मनिवेदन द्वारा व्यक्तिगत गाढ़ संबंध प्रस्थापित करो, मन में कुछ भी भरा हुआ न रहे, उसे खाली रहने दो ।

(७) प्राप्त हो गये हुए कर्म प्रभु के समझना, थोड़ी-सी भी शिकायत किये बिना वे बहुत प्रेमपूर्वक करो । हरएक प्रसंग-घटना अपने कल्याणार्थ ही है और हरएक प्रवृत्ति 'अपने स्वयं के ही विकासार्थ' ही हो, इसके बारे में सजग रहना । हरएक प्रसंग के पीछे प्रभु का गूढ़, शुभ संकेत ही होता है ।

(८) आत्मलक्षी-अंतर्मुखी बनो, सिर्फ़ अपनी ही दुनिया में रहो । जानबूझकर, अकारण खुद को किसी में उलझा न देना ।

(९) पर (पराये की) सेवा प्रभु की सेवा मानो । सेवा लेनेवाला सेवा देनेवाले पर सेवा करने का मौका देकर उपकार करता है । राम ने दिया है और राम को ही देते हैं, वहाँ 'मेरा-मेरा' कहाँ रहा ? तेरा इस जगत में है भी क्या ?

(१०) हरएक कार्य, हरएक बातचीत, व्यवहार अपने खुद के ध्येय को गति दे इस लक्ष्य से, लक्ष्य का उद्देश्य जीवंत रखकर करो । लिखते-पढ़ते हुए और हरएक कर्म करते हुए क्षण-क्षण में भाव की स्मरणधारा का अभ्यास विकसित करो ।

(११) वृत्ति की जड़ खोजो, उसका पृथक्करण करो । उसमें बह न जाते हुए, उसका तटस्थतापूर्वक और स्वस्थतापूर्वक अवलोकन करो ।

(१२) प्रभु की हरएक कला, सौंदर्य, रम्यता, विशुद्धता आदि प्रसादी में रहे हुए भाव का, उस-उस के अनुरूप भाव का, अपने में तब अवतरण होने के लिए प्रार्थना करो ।

(१३) ऊर्मि, आवेश, भावना वैसे ही बह जाने न दो, वैसे ही उसमें बह भी न जाना । उसका साधना में उपयोग करो, तटस्थता विकसित करो ।

(१४) भोजन करते समय, पानी पीते समय जीवन में चैतन्यशक्ति के अवतरणभाव की प्रार्थना करो, मलमूत्रादि क्रिया करते समय विकार, दुर्बलता इत्यादि के विसर्जनभाव की प्रार्थना करो ।

(१५) स्थूल का ख़्याल छोड़कर सूक्ष्म-तत्त्व की ओर दृष्टि रखो । वृत्ति की शुद्धि करो । भाव की वृद्धि करो ।

(१६) प्रभु सचराचर है । 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की भावना विकसित करो ।

(१७) हरएक व्यक्ति और वस्तु के प्रकाशमान पहलू को देखो। किसी के भी क़ाज़ी मत बनो। किसी पर भी झटपट से अभिप्राय न दो, वाद-विवाद मत करो, अपना आग्रह मत रखो, दूसरों में शुभ हेतुओं का आरोपन करो, जीवन में मानसिक और सार्वत्रिक उदारता प्रगट होने दो, खूब-खूब प्रेमभाव विकसित करो, प्रकृति का रूपांतरण करना है, उसे ध्यान में रखकर प्रकृति के अधीन न होकर उसका अतिक्रमण करने के लिए ही कर्म करो, फल की आसक्ति छोड़ो, स्वयं पर होनेवाले अन्याय, आये हुए दुःख आदि की जड़ 'स्वयं में ही' है, यह दृढ़ करो। गुरु में प्रेमभक्तिभाव दृढ़तर करते रहो। अभीप्सा, इनकार और समर्पण के त्रिवेणीसंगम का उद्‌भव होने दो, सदैव प्रसन्नता रखो, कृपा और पुरुषार्थ के युगल को जीवन में उतारो, हरएक कर्म के आरंभ में, मध्य में और अंत में प्रभु की स्मृति प्रगट करो, मन निःस्पंद करो, राग-द्वेष निर्मूल करने के लिए जागृति रखो; प्राप्त हुए आध्यात्मिक अनुभव रोज़ के व्यवहार में प्रत्यक्ष जीवंत करो; कहीं भी किसी में से भागना नहीं, यदृच्छा जो कुछ प्राप्त हो, उसे प्रभुप्रसादी मानकर उसको स्वीकार करो। कहीं भी, किसीकी भी तुलना न करो; अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थिति यह मन का भ्रम है, जीवनसाधना करनेवाले को सब कुछ सानुकूल ही होता है; प्रभुमय—'उसका मूक यंत्र' बनने की एकमेव उत्तेजना अब जीवन में रखो।

(१८) कर्म में, कर्म का महत्त्व नहीं है, बल्कि जीवन के भाव का सतत एकसा, जीवंत चिंतन टिका रहना इसका सविशेषता से महत्त्व है। कर्म करते समय हरएक क्षण में वैसा जीवंत अभ्यास विकसित करो।

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

११. 'ॐ शरण चरण लेजो।'-आरती

पूज्य श्रीमोटा रचित आरती का भावार्थ :

ॐकार रूप हे प्रभु! मैं तेरी शरण में आया हूँ, मुझे अपने चरणों में ले ले, मैं पतित तेरे द्वार पर आया हूँ, मेरा उद्धार कर, मुझे बचा ले, मुझे तू अपने हाथों से उठाकर अपने हृदय से लगा ले ।।ध्रु ।।

हे प्रभु ! मेरे मन में और वाणी में भाव निर्माण होकर वह भाव मेरे कर्मों में प्रगट होने दे और मेरा मन, वाणी और हृदय इन तीनों को तू अपनी कृपा से एक कर। ...ॐ शरण चरण...(१)

हे प्रभु! मुझ से मिलने आनेवाले हरएक के प्रति मेरे हृदय में सद्‌भाव ही उत्पन्न होने दे, और जहाँ (जिनसे) अपमान हुआ हो, वहाँ भी (उनके प्रति भी) मेरे अंतर में भाव की ही वृद्धि होने दे। ...ॐ शरण चरण...(२)

मेरे अंतर में रही हुई निम्न प्रकार की वृत्तियों का ऊर्ध्वगमन करने के लिए, हे प्रभु, तेरी कृपाशक्ति के बल से ही मैं पुरुषार्थ कर के उसके द्वारा तेरे चरणों में शरणागति स्वीकार सकूँ ऐसा कर।
...ॐ शरण चरण...(३)

हे प्रभु! मेरे मन में रहे हुए सब विकार, प्राण में से बहनेवाली सब वृत्तियाँ और बुद्धि में निर्माण होनेवाली सब शंकाएँ तेरे चरणकमलों में गल जाएँ, ऐसा कर। ...ॐ शरण चरण...(४)

हे प्रभु! मैं 'जैसा हूँ वैसा' खुद-स्वयं को देखने के लिए, स्पष्ट रूप से परख लेने के लिए, मेरी बुद्धि खुली (रिक्त) कर।
...ॐ शरण चरण...(५)

हे प्रभु! मेरे हृदय में तू जो चैतन्यरूप में भरा हुआ है, उसकी प्राप्ति के लिए जीवन में आचरण हो, और चैतन्य से दूर ले

जानेवाला-निम्नगामी ऐसा आचरण मुझ से न हो, ऐसी बुद्धि तू मुझे देना । ...ॐ शरण चरण...(६)

हे प्रभु ! जहाँ-जहाँ 'गुण' और 'भाव' है, वहाँ-वहाँ मेरा हृदय स्थिर होने दे और उन गुणों के प्रति और उन भावों के प्रति मेरे हृदय में भक्ति का संचार होने दे । ...ॐ शरण चरण...(७)

हे प्रभु ! तेरे प्रति उत्पन्न हो गये हुए 'भाव' में मेरा मन, बुद्धि और प्राण, ये सब पिघल जाने दे और हृदय में तेरी ही भक्ति की बाढ़ आने दे । ...ॐ शरण चरण...(८)

- **मोटा**

✤ ✤ ✤

यह भावपूर्ण प्रार्थनारूप आरती पूज्य श्रीमोटा के हरएक भक्त को, आप्तजन को पूर्णतः सुपरिचित है । कईयों को वह कंठस्थ भी है ।

हरिः ॐ आश्रम के मौनमंदिर में प्रवेश करने से पहले सामूहिक नामस्मरण 'हरिः ॐ' महामंत्र का होता है । उसके बाद कुछ क्षणों के मौन विराम के बाद 'हरिने भजता हजी कोईनी लाज जतां नथी जाणी रे' (हरि को भजनेवाले किसी की भी आबरू गयी हो, ऐसा आज तक जाना नहीं ।) यह भजन गाकर अंत में पूज्य श्रीमोटा रचित ऊपरनिर्दिष्ट आरती गायी जाती है और बाद में हरएक साधक मौन में प्रवेश करता है ।

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

१२. सेवाकार्य और दानगंगा

हरिःॐ आश्रम द्वारा लोककल्याणार्थ जारी रहे हुए सभी कार्य किसी प्रकार का भी धर्म-संप्रदाय-जात-पात का भेदभाव न रखते हुए अखंड चल रहे हैं ।

हेतु :

उनकी दानप्रवृत्ति के पीछे एक-ही-एक हेतु है और वह है समाज में 'गुण' और 'भाव' इनका विकास । गुण और भाव के विकास बिना समाज आध्यात्मिक दृष्टि से पंगु ही रहनेवाला है, यह श्रीमोटा की धारणा है ।

उनके आश्रमों द्वारा कार्यरत दानप्रवृत्ति इतनी विशाल है कि उसके लिए एक स्वतंत्र पुस्तिका की जरूरत पड़ेगी, फिर भी संक्षेप में उनके बारे में जान लेना उचित होगा ।

भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में उत्कृष्ट संशोधन के पारितोषिकों के लिए ।

इसका लाभ मेडिकल काऊन्सिल ऑफ इंडिया, युनिवर्सिटी ग्रान्टस कमिशन, हुडको (देहली), असोसिएशन ऑफ सर्जन्स (मद्रास), गुजरात की सभी युनिवर्सिटियाँ आदि को प्राप्त हुआ है।

वनस्पति संरक्षण और संवर्धन, रसायनशास्त्र, समुद्रशास्त्र, पुरातत्त्वविद्या, समाजशास्त्र, फिजिक्स, बायोकेमिस्ट्री, जिओकेमिस्ट्री, ऊष्णकटिबंध की बीमारियाँ, इंजिनियरिंग और टेक्निकल के विषय, रंग और रंगों की निर्मिति, आयुर्वेद, बागायत, खेती विज्ञान- इन सब क्षेत्रों में संशोधन हेतु पारितोषिकों देने के लिए धनराशियाँ प्रदान की हैं ।

प्रतिभाशोध के लिए :

हिंदी, अंग्रेजी तथा विज्ञान की प्रतिभाशोध के लिए विविध युनिवर्सिटियों को दान दिया है ।

स्पर्धा :

समुंदर में और नदी में तैरने की स्पर्धा, नावस्पर्धा, इनके लिए। स्विमिंगपुल बाँधने के लिए ।

संस्कारपोषक, गुण-भाव विकासक साहित्य के प्रकाशनों के लिए :

कई संस्थाओं को इस हेतु दान दिया गया है ।

एनसायक्लोपीडया ब्रिटानिका जैसा गुजराती भाषा में ज्ञानसंग्रहकोश, ज्ञानगंगोत्री, किशोरभारती, बालभारती, शिशुभारती, सर्वधर्मतत्त्वज्ञान दर्शन, विज्ञान टेक्नॉलॉजी के संदर्भ ग्रंथ, अंग्रेजी और गुजरातीकोश, व्यायामकोश, विज्ञान श्रेणी, जीवनचरित्र ग्रंथश्रेणी, बालवार्ता ग्रंथश्रेणी, साहस-शौर्यकथा-इतनी और ऐसी कई किताबें-ग्रंथ-संदर्भग्रंथ-कोश-चरित्रों के लिए दानगंगा बहायी गयी है ।

व्याख्यानमालाएँ :

मेघाणी, नर्मद, श्रीअरविंद, प्रेमराय बापु, मणिभाई नभुभाई, बालाशंकर, गोवर्धनराम व्याख्यानमालाओं के लिए भी धनराशियाँ प्रदान की हैं ।

स्त्रीसाक्षरों की मौलिक कृतियों के लिए : वैसे ही बहनों की शौर्य-मर्दानगी की तालीम के लिए 'महाजन शक्तिदल ट्रस्ट' द्वारा ।

विद्यार्थियों के लिए : पर्यटन, पैदल सफ़र, साइकिलिंग स्पर्धा, दौड़ने की प्रतियोगिता, पर्वतारोहण, व्यायाम, बोटिंग, मर्दानगी के खेल ।

वेधशाला के लिए :

लोकभारती, गंगाजळा । आदि ग्रामविद्यापीठों के लिए।

दान की पद्धति :

दान की हुई मूल रकम कायम रखकर उसके सालाना ब्याज में से ये पारितोषिक, शिष्यवृत्तियाँ आदि दी जाती हैं। हरएक संस्था को इसका हिसाब-किताब रखना पड़ता है और सालाना वह हरि:ॐ आश्रम को भेजना पड़ता है ।

अगर तीन साल तक रकम बिना उपयोग के पड़ी रहे, तो ब्याज के साथ हरि:ॐ आश्रम को लौटानी पड़ती है ।

✤ ✤ ✤

प्राथमिक पाठशालाओं के लिए कमरे :

हरि:ॐ आश्रम की ओर से छोटे-छोटे गाँवों में प्राथमिक पाठशाला के एक-एक कमरे के लिए लोकनिधिरूप में ३१ मार्च १९९५ तक दान की हुई धनराशि :

कुल जिले : १८ से भी ज्यादा ।

नाम : अहमदाबाद, अमरेली, कच्छ, खेड़ा, गांधीनगर, जूनागढ़, जामनगर, पंचमहाल, बनासकांठा, भरूच, भावनगर, मेहसाणा, राजकोट, वडोदरा, वलसाड, सुरत, साबरकांठा, सुरेंद्रनगर ।

कुल कमरे : ८७३२

प्रदान की गयी रकम : रु. ३,९५,७९,७०६ (कुल रुपये तीन करोड़ पंचानबे लाख, उन्नासी हजार सातसौ छ केवल)

✤ ✤ ✤

दि. ३१ मार्च, १९९५ तक हरि:ॐ आश्रम की ओर से गुजरात को अर्पण की गयी रकम का विवरण इस तरह :

		रुपये
१.	हरि:ॐ आश्रम के प्रारंभ से १९७५ तक	८३,६३,५९८

२. गुजरात के १८ जिले में प्राथमिक पाठशालाओं के कमरे : ८७५२ — ३,९५,७९,७०६
३. अन्य ग्रामीण शैक्षणिक संस्थाओं के छात्रालय, विद्यालय इनके लिए — ४,२५,२१,१०३
४. अतिवृष्टि और अकाल के समय राहत कार्यो के लिए — ४३,२३,४१७

कुल रु. ९,४७,८७,८२४

(कुल रुपये नौ करोड़ सैंतालीस लाख, सतासी हजार, आठसौ चौबीस केवल)

✤ ✤ ✤

॥ हरिःॐ ॥

१३. पूज्य श्रीमोटा के जीवन की महत्त्वपूर्ण तिथियाँ

दि. ४ सितंबर १८९८ : पूज्य श्रीमोटा का जन्म

जन्मस्थान : सावली, जि. वडोदरा (गुजरात)

नाम : चुनीलाल

माता : सूरजबा पिता : आशाराम भगत*

१९१६ : पिता का स्वर्गवास ।

१९०५ से १९१८ : बीच-बीच में पढ़ाई और कड़ी मजदूरी।

१९१९ : मैट्रिक पास ।

१९१९-२० : वडोदरा कालिज में ।

१९२१ : छ अप्रैल-कालिज त्याग ।

१९२१ : 'गुजरात विद्यापीठ' में प्रवेश, विद्यापीठ का त्याग, हरिजन सेवा का आरंभ ।

* उपनाम (Surname) भावसार था, फिर भी पिताजी के और दादाजी के भजनानंदी स्वभाव के कारण 'भगत' यह उपनाम प्रचलित हुआ ।

१९२२ : फिट्स की बीमारी से ऊबकर गरुडेश्वर के पास नर्मदा में आत्मघात का प्रयत्न, दैवी बचाव, 'हरिःॐ' जप से रोग दूर करने का सफल प्रयास ।

१९२३ : 'तुज चरणे' और 'मन ने' की रचना, वसंतपंचमी को पू. बालयोगी महाराज द्वारा दीक्षा । धूनीवाले दादाजी-पूज्य श्री केशवानंदजी के दर्शन हेतु 'साँईखेडा'(ता. गाडरवाडा, जि. नरसिंहपुर, मध्यप्रदेश) गये, रात में स्मशान में साधना और दिनभर प्रभुप्रीत्यर्थ हरिजन सेवा ।

१९२६ : विवाह-हस्तमिलाप के समय भावसमाधि ।

१९२७ : 'हरिजन आश्रम' में 'बोदाल' में सर्पदंश, परिणाम स्वरूप 'हरिःॐ' जप अखंड हुआ ।

१९२८ : साकोरी के पू. उपासनीबाबा का नडियाद में आगमन। उनके आदेशानुसार साकोरी में जाना हुआ-वहाँ मलमूत्र के बिछौने में सात दिन, देहशुद्धि, समाधि ।

१९२९ : प्रथम हिमालय यात्रा ।

१९३० : मन की नीरवता का साक्षात्कार ।

१९३० से १९३२ तक : साबरमती, विसापुर, नाशिक, येरवडा, खेड़ा सबजेल में । हेतु-देशसेवा का नहीं, बल्कि साधना का । कठोर परिश्रम । और लाठीमार के समय प्रभुस्मरण, मौन । विद्यार्थियों को समझाने के लिए विसापुर ज़ेल में सरल गुजराती भाषा में श्रीमद् भगवद् गीता लिखी-'जीवनगीता' ।

१९३४ : सगुण ब्रह्म का साक्षात्कार ।

१९३४ से १९३९ तक : हिमालय में अघोरी बाबा के पास गये, 'धुआँधार' गुफा में साधना, चैत महीने में तप्त शिलाओं पर बैठकर तिरसठ धूनियों के बीच नग्न बैठकर कड़ी धूप में साधना, कराची में शिरडी के साँईबाबा का प्रत्यक्ष दर्शन-आदेश-मार्गदर्शन।

१९३९ : २९ मार्च १९३९-रामनवमी-संवत १९९५ में काशी में निर्गुण ब्रह्म का साक्षात्कार, 'हरिजन सेवक संघ' से त्यागपत्र।

१९३९ से १९७६ : साधकों को व्यक्तिगत मार्गदर्शन ।

१९४० : हवाई जहाज़ से अहमदाबाद से कराची जाने का गूढ़ हुक्म ।

१९४० : सूरजबा का स्वर्गवास ।

१९४२ : 'हरिजन सेवक संघ' से विभक्त थे, फिर भी 'हरिजन कन्या छात्रालय' के लिए बंबई में निधि जमा की । दो बार पुलिस द्वारा पाशवी मारपीट-देहातीत अवस्था का सबूत ।

१९४३ : फरवरी में गांधीजी के पेशाब के ज़हरीले कीटाणुओं का अपने पेशाब में दर्शन-नैमित्तिक तादात्म्य का अनुभव ।

१९४५ : हिमालय की तीसरी यात्रा-कई अद्भुत अनुभव ।

१९४६ : अहमदाबाद में हरिजन आश्रम में-मीराकुटिर में मौन-एकांत का आरंभ ।

१९५० : दक्षिण भारत में कुंभकोणम् में कावेरी नदी के किनारे पर हरि:ॐ आश्रम की स्थापना । (१९७६ में आश्रम बंद किया)

१९५४ : सुरत में जहाँगीरपुरा, कुरुक्षेत्र स्मशान भूमि में एक कमरे में मौन-एकांत का आरंभ ।

१९५५ : नडियाद में शेढ़ी नदी के किनारे पर हरि:ॐ आश्रम की स्थापना ।

१९५६ : सुरत में जहाँगीरपुरा, कुरुक्षेत्र में हरि:ॐ आश्रम की स्थापना ।

१९६२ : से हरि:ॐ आश्रम द्वारा लोककल्याण के कार्यों का आरंभ ।

१९६४ : निधिसंग्रह के निमित्त से उत्सव मनाने की अनुमति।

१९६८ से १९७५ : शरीर में कई रोग-सतत सफ़र और साथ-साथ ही सैंतीस आध्यात्मिक अनुभवग्रंथों का लेखन और प्रकाशन।

१९७६ : फाजलपुर-मही नदी के किनारे पर श्री रमणभाई अमीन के फार्महाऊस में दि. २३ जुलाई, १९७६ के रोज केवल छ व्यक्तियों की उपस्थिति में आनंदपूर्वक देहत्याग, ईंट-चूना का स्वयं का स्मारक न बनाने का आदेश और इस निमित्त प्राप्त होनेवाली रकम का उपयोग, गुजरात के अंतर्भाग में रहे हुए पिछड़े हुए गाँवों में प्राथमिक पाठशालाओं के कमरे बाँधने के लिए लोकनिधि में करने की सूचना ।

तीन उत्सव दिन :

१. जन्मदिन (भादों कृष्ण-पक्ष चौथ)

२. दीक्षादिन (वसंत-पंचमी)

३. साक्षात्कारदिन (रामनवमी)

॥ हरि:ॐ ॥

✤ ✤ ✤